थॉमस पेन के राजनैतिक निबंध

थॉमस पेन के राजनैतिक निबंध

(Common Sense and other Political Writings by *Thomas Paine*)

संपादक

नेल्सन एफ. एडकिन्स

अनुवादक

[illegible] दीक्षित

पर्ल पब्लिकेशन्स प्राइवेट लिमिटेड, बम्बई—१

मूल्य ५० नये पैसे

अनुक्रमणिका

परिचय

टॉम पेन मानव-समाज के हितों की रक्षा करने वाली उन महान आत्माओं में से एक था, जो अपने युग में अत्यधिक आलोक भर दिया करती हैं। अतएव उसके राजनैतिक और सामाजिक चिन्तनों का अध्ययन करते समय उसे मुख्यतः मानव-प्रेमी मानना चाहिए। मनुष्य के दुःखों को देखकर पेन के हृदय में स्वभावतः जीवन-भर विद्रोहात्मक भावनाएँ उत्पन्न होती रहीं। राज्य के कार्यों में अत्यधिक रुचि रखनेवाले अपने सक्रिय मस्तिष्क के सहारे पेन ने सायास इस बात का पता लगाया कि विश्व में अन्याय और अत्याचार के कारण क्या हैं। पेन अपने जीवन में कभी भी निराशावादी नहीं रहा; सर्वाधिक दुःखपूर्ण घड़ियों में भी वह अपने साथियों का कम-से-कम कुछ विश्वास अवश्य करता था। उसका अडिग विश्वास था कि यदि जनता को अच्छे प्रशासन के सिद्धान्तों से अवगत करा दिया जाय तो निश्चय ही उसके दुःखों को दूर किया जा सकता है। उसकी आँखों के सम्मुख यह स्पष्ट था कि "हम जिन्हें सभ्य देश कहते हैं, वहाँ के अधिकांश मानव निर्धनता और दयनीयता की स्थिति में हैं।" पेन ने मानवीय दयनीयता के इस क्षोभकारक चित्र के लिए अत्याचारी शासन को दोषी माना। वह पूछता है कि क्या कारण है कि निर्धनों के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति को कदाचित् ही प्राण-दण्ड दिया जाता है। जहाँ तक 'सरकार' का प्रश्न है, पेन की मान्यता थी कि राजतंत्र (Monarchy) मानवतावाद के विरुद्ध है; क्योंकि राजतंत्र सर्वदा कुछ सीमित व्यक्तियों के हितों के लिए कार्य करता है। सरकार और मानव-जाति की उन्नति में घनिष्ठ सम्बन्ध है, यह पेन का निश्चित मत था जिसकी अत्यन्त स्पष्ट घोषणा उसके इस कथन में है कि "किसी राष्ट्र की सच्ची महानता मानवता के सिद्धान्तों पर आधारित है।" पेन के कथनानुसार इन सिद्धान्तों को किस प्रकार उचित रूप से व्यवहार में लाया जा सकता है, उसके जीवन और कृतियों के आधार पर इसी विषय का संक्षिप्त अध्ययन इस 'परिचय' का लक्ष्य है।

यदि हम यह कहें कि पेन जैसे महान मानवतावादी व्यक्ति के गुण जन्म-जात अधिक रहे होंगे तो हमें उन अगणित तत्त्वों पर विचार करने से चूकना भी नहीं

चाहिए, जिन्होंने वास्तवमें उसकी मानवतावादी प्रकृति को स्थिर किया और उसे बल प्रदान किया। हमें सदैव यह स्मरण रखना चाहिए कि पेन को अठारहवीं शती में रहने का सुयोग प्राप्त था। तथापि उस युग की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमियों की समीक्षा करते समय प्रारम्भ ही में हमें यह समझ लेना चाहिए कि पेन न तो अधिक अध्ययनशील व्यक्ति रहा, और न अपने मित्र टॉम जेफर्सन के समान विद्वान ही था। उसने जो कुछ ज्ञानोपार्जन किया वह केवल अनुभव-जन्य था। परन्तु उसे उन महान विचारों की पूर्ण जानकारी थी, जिन्होंने अठारहवीं शती के उत्तरार्द्ध को राजनीति के मौलिक सिद्धान्तों और सुधारों के लिए अत्यंत उर्वर बना दिया था। इसके लिए पेन को अध्ययन की कोई आवश्यकता न पड़ी होगी। जैसा कि प्रोफेसर राबर्ट गिलबर्ट चिनार्ड ने संकेत किया है, "हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि कभी-कभी ऐसे अवसर आते हैं, जब कि विचार वायुमण्डल की वस्तु बन जाते हैं, जब कि वे जनसाधारण की सम्पत्ति समझे जाते हैं और जब यह कहना लगभग असम्भव हो जाता है कि अमुक विचार अमुक व्यक्ति के मौलिक चिन्तन की उपज हैं। अठारहवीं शती का समय, निस्सन्देह रूप से, ऐसा ही था।"

यदि हम पेन की समस्त कृतियों पर विचार करें तो यह जानकर हमें आश्चर्य होगा कि उनमें सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों के महान विचारकों का उल्लेख कदाचित् ही हुआ है। अधिभूतवादी (Physiocrat) क्वेस्ने और तुरगत तथा दार्शनिक मौन्टेस्का के नाम पेन की कृतियों में यत्र-तत्र मिलते हैं; परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उनके विचारों का प्रभाव पेन पर अत्यल्प पड़ा है। रुसो और एबेरेनल की रचनाओं के विषय में पेन का मत था कि "उनमें स्वतंत्रता के पक्ष में व्यक्त किया गया भाव-सौन्दर्य है, जो सम्मान को उत्तेजित करता है तथा मानव-शक्तियों को उन्नत करता है। वे पाठक का उत्साहवर्द्धन तो करती हैं; किन्तु वे उस उत्साह की क्रिया का निर्देशन नहीं करतीं। वे मस्तिष्क में एक वस्तु के प्रति प्रेम-भाव का उद्रेक कर देती हैं, किन्तु वे यह नहीं बतातीं कि उसकी प्राप्ति के साधन क्या हैं।" वास्तव में पेन की विचारधारा में ऐसा कोई तत्त्व नहीं है, जो रुसो के भाव-प्रवण आदर्शवाद की ओर संकेत करे; उसमें ऐसा कुछ नहीं है जिसे रुसो के अनुसार 'प्रकृति के पास लौटना' कहा जा सके। तत्त्वतः पेन का

सम्बन्ध सत्रहवीं शती के दो महान विचारकों, लाके और न्यूटन के साथ स्थापित करना अधिक उपयुक्त होगा जिनके सिद्धान्तों का अठारहवीं शती में गहरा प्रभाव पड़ा था। उसने कहीं-कहीं न्यूटन की जो विशेष चर्चा की है उसका उसकी राजनीति के सिद्धान्तों से सर्वाधिक सम्बन्ध है। मनुष्य के अधिकार, भाग दो में पेन लिखता है—"राजतंत्र की मूर्खता को न देखना विवेक की उपेक्षा करना अथवा बुद्धि को पतित करना है। प्रकृति का हर कार्य सुव्यवस्थित होता है। किन्तु यह एक ऐसी शासन-पद्धति है, जो प्रकृति के विपरीत कार्य करती है।"

'प्रकृति अपने सभी कार्यों में व्यवस्था रखती है,' इसे दृढ़तापूर्वक व्यक्त करके वास्तव में पेन ने न्यूटन की सृष्टि-सम्बन्धी व्यवस्था की ओर संकेत किया है। किन्तु यह स्पष्ट नहीं होता कि राजतंत्र न्यूटन की सृष्टि-विषयक व्यवस्था का विरोध किस प्रकार करता है। पेन का यह कथन भी अधिक काल्पनिक प्रतीत होता है कि 'विपत्ति का सम्पूर्ण भार उसी स्थिति में दूर किया जा सकता है जब कि केवल इन सिद्धान्तों के आधार पर सभ्यता की ऐसी व्यवस्था की जाय कि वह 'चरखी की पद्धति (System of Pulleys) के अनुसार कार्य कर सके।' यद्यपि हम सृष्टि-विषयक न्यूटन के सिद्धान्तों के प्रति पेन की कृतज्ञता को स्वीकार कर सकते हैं, तथापि राजनीति और सरकार के विषय में उसके द्वारा प्रयुक्त तर्क की इस प्रणाली से हम पूर्णतया सहमत नहीं हो पाते।

पेन अपनी रचनाओं में जॉन लॉके का अधिक उल्लेख नहीं करता है। जीवन के अन्तिम दिनों में उसने उस अंग्रेज विचारक की जो अत्यल्प चर्चाएँ की हैं, वे जेम्स चीथम के इस कथन का विरोध करती हैं कि 'सामान्य बुद्धि' तथा 'मनुष्य के अधिकार' लिखते समय पेन लॉके से बहुत अधिक प्रभावित था।

उसका कथन है—"मैंने लॉके अथवा अन्य किसी व्यक्ति से विचार ग्रहण नहीं किये। सन् १७७३ ई. के लगभग इंग्लैंड में जॉन बुल के मूर्खतापूर्ण कथन ने, सर्वप्रथम, मेरे मस्तिष्क को सरकारी पद्धतियों की ओर आकृष्ट किया। प्रशिया के तत्कालीन सम्राट् महान फ्रेडरिक के विषय में जॉन बुल ने लिखा कि 'सम्राट् के पद के लिए वे उपयुक्त व्यक्ति हैं; क्योंकि उनमें

आसुरी प्रवृत्ति की पर्याप्त मात्रा है।' इस कथन ने मुझे इस बात पर सोचने के लिए विवश कर दिया कि क्या ऐसी कोई शासन-व्यवस्था नहीं हो सकती, जिसके लिए आसुरी प्रवृत्ति की आवश्यकता न पड़े? किसी व्यक्ति की सहायता प्राप्त किए बिना ही मुझे इस दिशा में सफलता मिली।"

पेन के राजनैतिक विचारों में योग देनेवाले तत्त्व के रूप में एक और सिद्धान्त हमारा ध्यान आकर्षित करता है। पेन का पिता उन दिनों 'शान्ति-प्रचारक-दल' का सदस्य था। पेन भी उस संस्था के सिद्धान्तों का समय-समय पर समर्थन करता रहा। इसलिए मानक्यूर कानवे ने इस बात पर अत्यधिक बल दिया है कि पेन के प्रजातंत्रीय विचारों पर 'मित्र-संघ' (शान्ति-प्रचारक-दल) के सिद्धान्तों का प्रभाव पड़ा था। युद्ध के समय पेन्सिलवेनिया के उपर्युक्त दल के सदस्यों के प्रति पेन को तनिक भी भ्रम नहीं था। 'क्राइसिस' नामक अपने पत्रक के तीसरे अंक में तथा अन्य स्थलों पर भी, पेन ने उन सदस्यों के शान्ति-स्थापना-प्रवृत्ति की निस्संकोच निंदा की। तथापि युद्ध के बाद, विशेषतः सन् १८०२ ई० में, जब वह अमेरिका लौट आया, तब उसने उपर्युक्त संस्था के सदस्यों के लिए लिखा कि ये सदस्य अन्य संस्थाओं के सदस्यों की अपेक्षा अधिक चरित्रवान और नियमनिष्ठ हैं।

वास्तव में, यह स्मरण रखने के लिए वह विवश था कि वह उस संस्था के मत को माननेवाले एक कुल की सन्तान है; विशेषतः उस समय, जब वह समाज के गरीबों की देखभाल और उनके बच्चों की शिक्षा-व्यवस्था करने के लिए उन सदस्यों की प्रशंसा करता था। मृत्यु के पूर्व पेन ने अपनी अन्तिम इच्छा व्यक्त की कि 'मेरी कब्र उन सदस्यों के कब्रिस्तान में बनायी जाय, यदि वे इसके लिए अनुमति प्रदान करें कि उनके कब्रिस्तान में एक ऐसे व्यक्ति को दफनाया जाय, जो उनकी संस्था का सदस्य नहीं था।' अतः हमें मानना पड़ेगा कि इस संस्था के मानवतावादी एवं समानाधिकार सम्बन्धी महान सिद्धान्त प्रारम्भ में पेन के प्रजातंत्रीय विचारों के अनुकूल अवश्य रहे होंगे।

पेन के राजनैतिक सिद्धान्तों की पृष्ठभूमि की समीक्षा का उपसंहार करते हुए हमें उन तथ्यों को भी नहीं भूलना चाहिए, जिन्होंने उसके प्रारम्भिक जीवन में उसे चिन्तन की, मौलिक नहीं, उदार प्रणाली की ओर प्रोत्साहित किया। पेन

का जन्म ऐसे माँ-बाप के घर में हुआ था, जो बड़ी कठिनाइयों के साथ उसे स्कूल भेज सके। तेरह वर्ष की अवस्था में उसने अपने पिता के साथ काम करना प्रारम्भ किया। कई वर्षों तक अपनी परिस्थिति को सुधारने के लिए उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। २५ वर्ष की अवस्था में वह आबकारी-विभाग का एक कर्मचारी नियुक्त हुआ; किन्तु तीन वर्षों बाद ही इस पद से हटा दिये जाने पर उसने केनसिंगटन के एक स्कूल में अध्यापन-कार्य किया। सन् १७६८ ई० में पुनः वह आबकारी-विभाग में पदाधिकारी नियुक्त हुआ। वहाँ उसने यह अनुभव किया कि कर्मचारियों को उचित वेतन नहीं दिया जाता। अतः कई सहकारी पदाधिकारियों द्वारा उत्तेजित किए जाने पर उसने तत्कालीन संसद् के नाम 'आबकारी-विभाग के अधिकारियों की दशा' नामक पत्रक प्रकाशित किया, जिसमें उसने उस समय के आबकारी विभाग में काम करने वाले व्यक्तियों की हीन दशा का वर्णन किया है। इस पत्रक में व्यक्त विचारों से पेन के मानवतावादी दृष्टिकोण का पूर्वबोध होता है।

पेन ने संसद् के सदस्यों को व्यक्तिगत रूप से इस विषय में प्रभावित करना चाहा। परिणाम यह हुआ कि सरकार ने उस पर अशान्ति पैदा करने का आरोप लगाकर सन् १७७४ ई० में उसे नौकरी से अलग कर दिया। तत्पश्चात् पेन पर और भी कई कठिनाइयाँ आयीं और वह अत्यंत निर्धन बन गया। फ्रेंकलिन उन दिनों लंदन में थे। जब उन्हें पेन की दशा का ज्ञान हुआ तो उन्होंने उसकी बड़ी सहायता की। उसी वर्ष के अन्त में सैंतीस वर्षीय पेन अमेरिका पहुँचा, जहाँ उसके जीवन का नया अध्याय आरम्भ हुआ।

जैसा कि हमने देखा, पेन मानवता को शाश्वत रूप से पीड़ित करनेवाली बुराइयों को भली-भाँति जान चुका था। अमेरिका में प्राप्त अनुभवों द्वारा अपने जीवन-विषयक मानवतावादी तथा प्रजातंत्रीय सिद्धान्तों को तीव्र बनाने का कार्य पेन के लिए शेष था। यदि हम अमेरिका में लिखी गयी पेन की प्राथमिक रचना को पढ़ें और तत्पश्चात् उसकी अनुगामी कृतियों का क्रमिक अध्ययन करें तो हम उसके चिन्तन को बल प्रदान करनेवाली प्रमुख प्रेरणा का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

कदाचित् पूर्वकथित 'मित्र-संघ' के सिद्धान्तों ने पेन के अमेरिका पहुँचने के शीघ्र ही बाद हबशियों की दासता सम्बन्धी बुराइयों की ओर उसके ध्यान को

आकृष्ट किया। जो कुछ हो, अमेरिका में प्रकाशित प्रारम्भिक निबंधों में से एक का शीर्षक था—'अमेरिका में अफ्रीकियों की दासता।' इस संक्षिप्त रचना में ऐसा कुछ नहीं है, जो यह व्यक्त कर सके कि पेन को व्यक्तिगत रूप से दक्षिण के हबशियों के दुःखों का अनुभव था। किन्तु वह निबन्ध अमेरिकियों के नाम पर लिखा गया था और स्पष्टतः पेन के अधिकांश लेखों के मूल में निहित उद्देश्य से, अर्थात् मनुष्य जाति को प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धान्त से अवगत कराने के लिए, लिखा गया था।

वास्तव में उपनिवेशों के लिए अत्यंत राजनैतिक संकटकाल में पेन अमेरिका पहुँचा। नाटकीय परिस्थितियों के प्रति पेन की आँखें सदैव खुली रहती थीं। सन् १७६५ ई० के 'स्टैम्प एक्ट' के समय से ही अमेरिका को दासता में जकड़ने के लिए की गयीं करतूतें टोरियों के अलावा सब लोग अच्छी तरह जानते थे। पेन जिस वर्ष अमेरिका पहुँचा, उसके आरम्भ के दिनों में ही कई अधिनियम बने थे। अस्तु, वातावरण कुछ विचित्र तथा अशुभ बन चुका था। हर ओर उत्तेजना और क्रांति की आग सुलगने लगी थी। सन् १७७५ ई० में राज-घोषणा हुई कि 'राज-विद्रोह को दबाने के लिए हमारे सैनिक और असैनिक पदाधिकारी यथा-शक्ति प्रयत्न करने पर विवश हैं।' इस घोषणा से केवल उपनिवेशों में राज-नतिक तनाव और भी बढ़ गया। विद्रोह की इस बढ़ती हुई आग से प्रेरित हो कर पेन ने 'सामान्य-बुद्धि' (Common sense) की रचना की। यह लघु पत्रक सन् १७७६ ई० में प्रकाशित हुआ।

'सामान्य-बुद्धि' की सफलता ने कदाचित् पेन को भी आश्चर्यचकित कर दिया था। वास्तव में, पेन ने उस समय देशव्यापी क्रान्ति-भावना का दर्शन किया और उस भावना को उसने स्पष्ट एवं सशक्त जन-वाणी में साकार कर दिया। यद्यपि पेन किसी राजनैतिक दल से नियमतः सम्बद्ध नहीं था, फिर भी सन् १७८० ई० में उसने राज्यों के अधिकार के विरुद्ध संघीय दृष्टिकोण का समर्थन किया। पेन दृढ़तर संघीय सरकार की आवश्यकता पर निरन्तर जोर देता रहा।

'क्राइसिस' के एक विशेषांक में उसने अमेरिका के निवासियों के नाम सन् १७८३ ई. में लिखा कि, 'केवल संघगत होकर काम करने के द्वारा ही, विदेशी राष्ट्रों द्वारा किये गये व्यापार-स्वातंत्र्य के अपहरण को निष्फल बनाया जा

सकता है, और अमेरिका के वाणिज्य को सुरक्षा प्रदान की जा सकती है।'
सन् १७८२-८३ ई. में उसने रोड द्वीप (Rhode Island) के नाम छः
पत्र लिखे, जो 'प्रॉविडेन्स गज़ट' में प्रकाशित किये गये थे। उन पत्रों में उसने
इस बात पर बल दिया कि हमारी शक्ति 'संघ' में ही अवस्थित है। इस प्रयत्न
में, पेन नागरिकों का सम्बन्ध सर्वप्रथम उनके राज्यों से और तत्पश्चात् संयुक्त
राज्य से सिद्ध करने का प्रयत्न करता है।

'अमेरिका के प्रत्येक निवासी की नागरिकता दो प्रकार की है। वह जिस
राज्य में रहता है उसका नागरिक है, और संयुक्त राज्य का भी। यदि वह
औचित्य और सचाई के साथ इस द्वितीय नागरिकता का निर्वाह नहीं करता तो
अनिवार्यतः वह अपनी प्रथम नागरिकता को नष्ट कर देगा। प्रथम प्रकार की
नागरिकता के द्वारा वह अपने पड़ोसियों के बीच सुरक्षित रहता है और दूसरी
के द्वारा संसार के बीच।'

सन् १७७५ ई. और १७८७ ई. के बीच, जबकि उसने इंगलैण्ड के लिए
प्रस्थान किया, पेन ने अमेरिकी राजनीति में जो भाग लिया उसकी संक्षिप्त चर्चा
भी इस स्थल पर वांछनीय है। 'प्रतिरक्षात्मक युद्ध-विषयक विचार' और 'मित्र-
संघ' के सदस्यों के नाम लिखे गये पत्र' (जो 'सामान्य-बुद्धि' के नवीन संस्करण
में जोड़ दिये गये हैं) में पेन ने उन सदस्यों की शान्ति-स्थापना सम्बन्धी प्रवृत्ति
की निंदा की; क्योंकि वह उस प्रवृत्ति को युद्ध-निर्वाह के लिए बाधा समझता
था। सन् १७७६ई. में 'पेंसिल्वेनिया' के संविधान के समर्थन में लिखे गये पेन
के कई निबन्ध अत्यधिक ऐतिहासिक महत्त्व के हैं। औपनिवेशिक राजनीति में
सक्रिय भाग लेने के नाते सन् १७७३ ई. में कांग्रेस के द्वारा वह वैदेशिक कार्यों
के लिए नियुक्त समिति का सचिव चुना गया। पेन व्यवहार-कुशल नहीं था।
वह तुरत फ्रांस-स्थित अमेरिकी कमिश्नर 'सिलसडीने' (Silas Deane) के
साथ भयंकर वाद-विवाद में उलझ गया। पेन का कहना था कि सिलसडीने ने
फ्रांस की सरकार के साथ व्यवहार करने में आर्थिक लाभ किया है। निस्संदेह
पेन ने निष्कपट भाव से कांग्रेस को उस आर्थिक क्षति से बचाना चाहा जो,
उसके मत में, सिलसडीने के कारण हुई थी। किन्तु, वैदेशिक-समिति के सचिव
के रूप में उसे जिन लेखों को गुप्त रखना चाहिए था उनमें से भी उसने,
भावातिरेक के कारण, सूचनाएँ प्रकाशित कर दीं। सन् १७७८-७९ ई. के

'पेन्सिल्वेनिया पैकिट' में प्रकाशित पत्रों के द्वारा उसने डीने की बुराइयाँ प्रकट कीं। इस पद से हटाये जाने की वेदना मृत्यु के कुछ क्षण पूर्व तक उसके हृदय में कसकती रही। सन् १८०८ ई० में डीने के साथ हुए झगड़े में अपना बचाव प्रस्तुत करते हुए उसने अपने वेतन की मांग की, जो उसे उस समय उचित रूप से मिलना चाहिए था।

क्रान्ति के समय देश की आर्थिक समस्याओं के साथ पेन के राजनैतिक कार्यों की इतनी घनिष्ठता रही है कि हम राष्ट्र के आर्थिक कार्यों की पुनर्व्यवस्था करने में पेन के महत्त्व की उपेक्षा पूर्णतः नहीं कर सकते। सन् १७७९ ई. के अन्त में पेन 'पेन्सिलवेनिया' की सभा का क्लर्क नियुक्त हुआ और सन् १७८० ई. में उसने सभा में वाशिंगटन का पत्र पढ़ा, जिसमें वाशिंगटन ने बड़े प्रयत्न के साथ उन परिस्थितियों के जुटाव के विषय में अपना मत व्यक्त किया था जो सेना के धैर्य को समाप्त कर रही थीं। वाशिंगटन ने यह भी लिखा कि हम सेना में सर्वत्र विद्रोह तथा उत्तेजना के अत्यधिक भयानक लक्षण देख रहे हैं। 'क्राइसिस' के नवें संस्करण में वाशिंगटन द्वारा वर्णित परिस्थितियों से अपने देशवासियों को परिचित कराने के अभिप्राय से पेन ने लिखा कि 'फिलाडेल्फिया' के प्रमुख निवासियों और व्यापारियों की एक संस्था राज्य के नये नोट को सोने और चाँदी के मूल्य पर स्वीकार और भुगतान करने के लिए स्थापित हुई है। पेन ने स्वयं पाँच सौ डालर इस कार्य हेतु दिये और इस प्रकार वह अपने राजनैतिक प्रतिद्वन्द्वी 'राबर्ट मोरिस' के साथ, क्रान्ति की आर्थिक सहायता के स्पष्ट उद्देश्य से 'बैंक ऑफ नार्थ अमेरिका' की स्थापना में निमित्त बना। युद्ध के बाद सन् १७८६ ई. में जो लोग सिक्के के स्थान पर कागज के नोट का समर्थन करते थे, उन्होंने 'बैंक-नियम' (Bank-Charter) को भंग करना चाहा। उसी वर्ष सरकारी चर्चा; बैंक के कार्य और कागज के नोट' नामक पत्रक में जो कि अमेरिका छोड़ने के पूर्व पेन का अन्तिम पत्र था, पेन ने बैंक का बचाव-पक्ष प्रस्तुत किया। कागज के नोटों के विरुद्ध पेन की धारणा में उपर्युक्त बैंक की स्थापना-काल से कोई परिवर्तन नहीं हुआ। उसका कहना था कि कागज के नोट अधिक-से-अधिक पानी के बुलबुले हैं। जब उन्हें सम्पत्ति के रूप में मान लिया जाता है तो यह मानना निरा असंगत है कि विधान-सभा, जिसका अधिकार समय के साथ-साथ समाप्त हो जाता है, उन्हें सोने का मूल्य और

स्थिरता प्रदान कर सकती है।" स्पष्टतः, पेन धनियों का साथ दे रहा था। उसकी इस आर्थिक नीति के विषय में सार्वजनिक मत बिगड़ गया; कुछ लोगों का कहना था कि पेन सामान्य मनुष्य के हित को भूल गया। हमारी वर्तमान चर्चा के लिए यह प्रश्न अत्यन्त जटिल है। अस्तु, इतना कहना पर्याप्त है कि पेन ने इस विषय में, तत्कालीन आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करनी चाही। उसने स्पष्ट रूप से यह समझा कि केवल सोने और चाँदी के प्रामाणिक मूल्य को बनाये रखकर ही इकाई के रूप में नवीन राष्ट्र के उद्भव और विकास संभव हैं। यदि इसीको सामान्यजन के हित का परित्याग कहा जा सके, तो बात दूसरी है।

क्रान्ति की समाप्ति के साथ पेन ने अमेरिका में अपना काम समाप्त समझा। अपने 'क्राइसिस' पत्रक के उपसंहार में, पेन ने संकेत किया था कि 'इसके बाद चाहे मैं किसी भी देश में रहूँ।' हेनरी डी. थोरो (Henry D. Thoro) ने वाल्डन (welden) में प्राप्त अपने अनुभव को जीवन का केवल एक अभ्यास माना जिसने उसे कई अन्य जीवन जीने के लिए छोड़ दिया। उसी प्रकार पेन ने इस समय स्वतंत्रता के रक्षार्थ अन्य देशों में जाना चाहा। अमेरिका में उसके प्रथम प्रवास का परीक्षण मानवता-विषयक उसकी पूर्व मान्यताओं की निरन्तर बढ़ती हुई सीमाओं को प्रकट करता है। क्रान्ति की समाप्ति के एक वर्ष पूर्व उसने एबे रेयनल (Abbe Raynal) के नाम पत्र प्रकाशित किया, जो विश्वबंधुत्व तथा सहयोग—जिस पर पेन ने विचार करना आरम्भ कर दिया था—की ओर कुछ संकेत प्रस्तुत करता है। एबे ने अमेरिका की क्रान्ति के विषय मे जो कुछ लिखा था, उसकी त्रुटियों को दूर करने का स्पष्ट प्रयत्न करते हुए पेन ने विश्व को वाणिज्य और विज्ञान द्वारा एकता के सूत्र मे पिरोने की ओर संकेत किया।

क्रान्ति के बाद अपने अवकाश-काल में पेन कतिपय आविष्कारों की ओर प्रवृत्त हुआ जिनमें सर्वाधिक महत्त्व का था—स्तम्भविहीन लौह पुल। उस पुल के एक नमूने को अपने सन्दूक में रखकर पेन सन् १७८७ ई० के अप्रैल मास में फ्रांस के लिए चल पड़ा। यह सत्य है कि विदेश में उस पुल ने लोगों का ध्यान आकर्षित किया; किन्तु हमारे अध्ययन के लिए यह तथ्य

अधिक महत्त्वपूर्ण है कि पेन तुरत फ्रांस और इंग्लैण्ड की राजनीति में उलझ गया। फ्रांस की क्रान्ति के आरम्भ होने पर एडमण्डबर्क ने सन् १७९० ई० में 'फ्रांस के क्रान्ति विषयक विचार' प्रकाशित किया। इसके पूर्व पेन बर्क का मित्र था; परन्तु ब्रिटिश राजतंत्र के बचाव के साथ बर्क ने फ्रांस की क्रान्ति के ऊपर जो प्रहार किया, उसने पेन को क्षुब्ध कर दिया और सन् १७९१-९२ ई० में पेन ने 'मनुष्य के अधिकार' को दो भागों में प्रकाशित किया। बर्क के प्रति इस पांडित्यपूर्ण विरोध ने पेन के सभी राजनैतिक और सामाजिक चिन्तनों को एक ग्रंथ में, उसकी किसी अन्य कृति की अपेक्षा कदाचित् अधिक परिमाण में, व्यक्त किया। 'मनुष्य के अधिकार' मुख्यतः फ्रांस और इंग्लैण्ड की राजनीति से सम्बन्धित है। तो भी, आज का पाठक उसे पढ़ते समय यह अनुभव करता है कि यदि पेन को अमेरिका में राजनैतिक अनुभव के बारह वर्षों—जब कि उसने क्रान्ति के समय और उसके उपरान्त प्रस्तुत होनेवाले कतिपय आर्थिक एवं राजनैतिक संकटों में बड़ी लगन के साथ काम किया था—का बल न प्राप्त होता तो कदाचित् वह विश्व को ऐसी कृति न दे पाता। वास्तव में वह निर्माण-गत प्रजातंत्र के अन्तर्गत रह चुका था। अमेरिका-निवासी के रूप में राजतंत्र के बंधन में बद्ध इंग्लैण्ड के प्रति अपने विचारों को साधिकार व्यक्त करना वह अपना विशेषाधिकार समझता था। पेन के मतानुसार राजनैतिक विश्व में अमेरिका ही एक ऐसा देश था, जहाँ सार्वजनिक सुधार के सिद्धान्त उत्पन्न हो सकते थे। अमेरिका प्रजातंत्र का गौरवपूर्ण जन्मस्थल है। उसने वाशिंगटन जैसे महान व्यक्ति को उत्पन्न किया। वास्तव में 'मनुष्य के अधिकार' का प्रथम भाग संयुक्त राज्य अमेरिका के अध्यक्ष को समर्पित किया गया। उस समर्पण में पेन ने लिखा था—'आपके अनुकरणीय उदात्त गुणों ने स्वतंत्रता के जिन सिद्धान्तों की स्थापना में अत्यधिक गौरवपूर्ण सहयोग प्रदान किया, उनके समर्थन में मैं आपको यह लघु कृति समर्पित करता हूँ।'

कम-से-कम पेन के लिए अमेरिकी-क्रान्ति ने परंपरा के वातावरण को साफ करके विश्व में राजनैतिक सुधार के लिए मूल आधार की स्थापना की। पेन का विश्वास था कि राजतंत्र और कुलीनतन्त्र की सभी पद्धतियाँ निर्बल और अरक्षित आधार पर स्थित हैं। संक्षेप में, वे प्रकृति के सिद्धान्त का विरोध

करती हैं। मनुष्य के अधिकार प्राकृतिक अधिकार हैं। इसे समझने के लिए हमें पेन द्वारा स्थापित 'प्राकृतिक-अधिकार' और 'नागरिक-अधिकार' के अन्तर की परीक्षा करनी चाहिए। उसका कहना है कि प्राकृतिक अधिकार वे अधिकार हैं जिनका सम्बन्ध मनुष्य के अस्तित्व से है। सभी बौद्धिक अधिकार, मस्तिष्क के अधिकार तथा व्यक्तिगत रूप से अपने आनन्द एवं सुविधा के लिए कार्य करने के वे सभी अधिकार, जो दूसरों के प्राकृतिक अधिकार के लिए बाधक नहीं हैं—इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। दूसरी ओर नागरिक अधिकार वे अधिकार हैं, जो मनुष्य को समाज के सदस्य होने के नाते प्राप्त होते हैं। निर्विवाद रूप से प्रत्येक व्यक्ति को कुछ प्राकृतिक अधिकार प्राप्त हैं, उन्हें क्रियान्वित करने में अथवा उन्हें सफल बनाने में प्रायः वह व्यक्ति के रूप में शक्तिहीन रहता है। इसलिए दैनिक जीवन को संभव बनाने के लिए वह अन्य व्यक्तियों का साथ करता है। पेन के अनुसार प्रत्येक नागरिक अधिकार किसी प्राकृतिक अधिकार से उत्पन्न होता है। प्राकृतिक रूप से प्रत्येक व्यक्ति को अपने बचाव और अपनी सुरक्षा को संभव बनाने का पूर्णअधिकार है; परन्तु यदि वह अकेला है तो उसे इस बात का बोध हो सकता है कि प्रकृति और अधिकार के अनुसार जो कुछ उसका है उसे वह प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिए सामाजिक समझौते की, जो सामूहिक प्रयत्न द्वारा जीवन-निर्वाह को सम्भव बना सके, आवश्यकता उत्पन्न होती है। फिर भी, पेन की मान्यता थी कि इस सामाजिक समझौते को मनुष्य के वैयक्तिक अधिकारों पर आक्रमण नहीं करना चाहिए; क्योंकि 'समाज के सभी महान नियम प्रकृति के नियम हैं।'

पेन की मान्यता है कि किसी भी राष्ट्र को उस सुख से वंचित नहीं रखना चाहिए, जो एक 'राष्ट्रीय संघ' से प्राप्त होता है। 'जिस क्षण औपचारिक सरकार को समाप्त कर दिया जाता है, उसी क्षण समाज कार्य करना आरम्भ कर देता है। एक सामान्य संगठन उत्पन्न होता है, और सामान्य हितों के कारण सार्व-जनिक सुरक्षा बनी रहती है।'

पेन आनुवंशिक राजतन्त्र (Hereditary Monarchy) को अत्यंत घृणित इसलिए मानता था कि इस व्यवस्था के अनुसार शारीरिक और मानसिक रूप से निर्बल, एक बच्चा या एक वयस्क गद्दी का अधिकारी होता है। पेन ने लिखा है कि प्रेसीडेण्ट वाशिंगटन उन सभी व्यक्तियों को लज्जित करने में समर्थ हैं, जिन्हें

राजा कहा जाता है। अमेरिका ने वाशिंगटन को सर्व-सम्मति से अपना प्रसीडेण्ट चुना। अमेरिका का यह कार्य हालैण्ड अथवा जर्मनी से किसी व्यक्ति को बुला कर उसे राजा बनाने के कार्य से कितना भिन्न है। इस प्रकार प्रतिनिधि प्रजातन्त्र (Representative Democracy) की स्थापना पर विचार करते समय पेन ने अपने निजी निरीक्षणों और अनुभवों का अत्यधिक सहारा लिया है। पेन की मान्यता है कि राजतन्त्र के निर्वाह में जो धन व्यय होता रहा है उसका उपयोग निर्धनों को आर्थिक सहायता प्रदान करने में हो सकता है। उसने एक स्थल पर अपने मानवतावादी दृष्टिकोण से लिखा है कि "प्रतिष्ठा की सर्वाधिक सजग चेतना के साथ सार्वजनिक धन को छूना चाहिए। न केवल धनियों ने, अपितु निर्धनों ने अपने कठोर परिश्रम के बल पर इसका उत्पादन किया है। अभाव और दुःख की कटुता का भी इस सार्वजनिक धन के उत्पादन में योग होता है। गलियों में या सड़कों पर घूमने वाला अथवा मिटनेवाला ऐसा एक भी भिक्षुक नहीं है, जिसका अंश उस राशि में नहीं है।" निर्धनों को आर्थिक सहायता देने और उनको अपेक्षाकृत अधिक सुखी बनाने के उद्देश्य से पेन ने कई विशिष्ट प्रस्ताव भी प्रस्तुत किये हैं।

'मनुष्य के अधिकार' के दोनों भागों का अधिक प्रचार हुआ। उन्हें इंग्लैंड की स्वतन्त्रता को बढ़ाने के उद्देश्य से स्थापित संस्थाओं में विशेष प्रसिद्धि मिली। किन्तु कुछ अव्यवस्थित लोगों, अनुमानतः सरकार द्वारा उत्तेजित व्यक्तियों, ने 'टॉम पेन' की प्रतिमा जलायी और उसके विरुद्ध अन्य प्रदर्शन किये। जून सन् १७९२ ई० में पेन पर सरकार द्वारा राजविद्रोह का प्राविधिक अभियोग लगाया गया और मुकदमे की सुनवाई के लिए एक तिथि निश्चित की गयी। कहा जाता है कि अंग्रेज कवि विलियम ब्लेक (William Blake) ने उसे बता दिया था कि शीघ्र ही उसे गिरफ्तार किया जायगा। पेन तुरत फ्रांस भाग गया और वहाँ से अपने अभियोग के विरुद्ध तीक्ष्ण भर्त्सनापूर्ण लेख लिखने लगा। यदि 'मनुष्य के अधिकार' में राजविद्रोह के बीज थे तो इस लेख में प्रत्यक्ष राजविद्रोह था।

इसी लेख में 'पेन' ने इस आशय का भी एक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव किया है कि एक राष्ट्रीय परिषद् (National Convention) बुलायी जाय जो, उचित रूप से, राष्ट्र के प्रत्येक भाग के मत और बुद्धि को एकत्र कर सकेगी।

ब्रिटिश राजतन्त्र पर किये गये पेन के प्रहारों की चर्चा को समाप्त करते समय इतना समझ लेना आवश्यक है कि जन-मानस पर परंपरा का जो प्रभाव पड़ता है, उसे समझने में 'पेन' असफल रहा। वही नहीं, वरन् सामान्यत: प्राकृतिक अधिकारों में विश्वास रखनेवाले सभी सैद्धान्तिक इस बात को समझने में असफल रहते हैं। पेन प्राय: ऐसा महसूस करता था कि यदि मनुष्यों को राजनैतिक सिद्धांतों से पूर्ण अवगत करा दिया जाय तो वे तत्क्षण सरकार के अत्याचारात्मक स्वरूपों को अस्वीकार कर देंगे। अठारहवीं शती के कतिपय पूर्णतावादी (Perfectionist) व्यक्तियों के विपरीत—जो धैर्यपूर्वक एक सहस्र वर्षों के समय की प्रतीक्षा कर रहे थे—'पेन' शीघ्र ही फल-प्राप्ति का इच्छुक था और पूर्ण आशान्वित था।

पेन ने, जिसके राजनैतिक सिद्धांत ने अपने अत्यधिक सार्वजनिक मूल्यों का प्रदर्शन किया था, अपने युग की चिन्तनगत असंगति के साथ दृढ़तापूर्वक कहा कि 'मैं इस बात में विश्वास नहीं करता हूँ कि यूरोप के किसी भी जाग्रत देश में राजतन्त्रीय तथा कुलीनतन्त्रीय सरकार आज से सात वर्षों तक अस्तित्व में रह सकती है।'

सन् १७८७ ई० में पेन के फ्रांस जाने के समय से लेकर सन् १७९३ ई० में लक्सेम्बर्ग के कारागार में बन्द होने तक का समय उत्साह और आनन्द के क्षणों में बीता। इस अवधि में उसने फ्रांस और इंग्लैण्ड के बीच कई यात्राएँ कीं। फ्रांस में पेन को जेफर्सन (Jefferson) से, जो कि सन् १७८९ ई० तक प्रधान मन्त्री रहे, मिलने का पर्याप्त अवसर मिला। इसके शीघ्र ही बाद, 'पेन' ने फ्रांस की राज्य-क्रांति के प्रत्यक्ष दर्शन किये। लेफाइएत (Leffayette) के साथ उसकी मित्रता थी; लेफाइएत ने कारागार की चाबी वाशिंगटन को भेंट करने के लिए पेन को दी। कहा जाता है कि 'अधिकारों की घोषणा' की रूप-रेखा तैयार करने में उसने पर्याप्त सहयोग प्रदान किया था। पेन ने, जो कि भावी इतिहास के मध्य में अपने को रखना सदैव पसन्द करता रहा, फ्रांस की क्रांति में त्यक्ष भाग लिया। सन् १७९१ ई० की जून में लूइस के भागने के प्रयत्न के उपरांत 'पेन' ने, राजा के 'गद्दीत्याग' की निन्दा करते हुए जनता को निरन्तर विद्रोह की प्रेरणा देने के निमित्त 'एक जनतन्त्रीय घोषणा-पत्र', जो कागज के पन्ने के एक ओर ही लिखा गया था—प्रकाशित किया, जिसमें उसने

राजतन्त्र की समाप्ति के लिए अपना परिचित तर्क प्रस्तुत किया। कहा जाता है कि 'पेन' और डुशेटिलेट (Duchatelet) ने पेरिस के मकानों की दीवारों पर इस 'घोषणा-पत्र' को चिपकाया और सभा-भवन के द्वार पर भी उसकी एक प्रति लटका दी।

इंग्लैंड से बच निकलने के बाद, पेन के फ्रान्स की क्रान्ति में भाग लेने का दूसरा अध्याय सन् १७९२ ई. में आरम्भ होता है। उपर्युक्त वर्ष के आरम्भ में सभा ने 'पेन' को नागरिक की पदवी प्रदान की और बाद में वह राष्ट्रीय-परिषद् के लिए प्रतिनिधि निर्वाचित हुआ। अपने भाषण में पेन ने अपने प्रति प्रदर्शित किये गये इस सम्मान को कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार किया और अपने सह-नागरिकों को बताया कि 'एक क्रान्ति (अमेरिका की क्रान्ति) के आरम्भ और पूर्ण स्थापना में अपने कर्तव्य को पूरा करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है।' किन्तु, पेन को फ्रांस की भाषा और इससे भी बढ़कर फ्रांस के मस्तिष्क का अल्प ज्ञान था; अतः वहाँ की राजनीति को समझने में वह असफल रहा और परिणाम-स्वरूप संकट में पड़ गया। पेन का जीवन-चरित्र लिखनेवालों में से कुछ का विश्वास है कि पेन का सम्बन्ध मुख्यतः जिराण्डिस्टों (फ्रांस की क्रान्ति के समय नम्र जनतंत्रीय दल के सदस्यों) से था और वे 'जिराण्डिस्ट' पेन का उपयोग अपने राजनैतिक उद्देश्य की सिद्धि के साधन स्वरूप करते थे। पेन ने जिन परिवर्तन-विरोधी कार्यों का समर्थन किया उनमें से राजा को प्राणदान देने का समर्थन एक था। राबेस्पियर (Robespierre) और जेकोबिन्स (Jacobins) के अधिकार प्राप्त करने पर पेन का प्रभाव कम हो गया। अब वह राष्ट्रीय-परिषद् की बैठकों में प्रायः कम जाता था। सन् १७९ ई. के अन्त में वह गिरफ्तार कर लिया गया। अमेरिका के मंत्री गवर्नर मोरिस (Governer Morris) ने, जो कि पेन के कट्टर शत्रुओं में से थे, पेन को कारागार से छुड़ाने का कदाचित् कोई प्रयत्न नहीं किया। यद्यपि उन्होंने अमेरिकी सरकार को यह विश्वास दिलाया कि उन्होंने इस दिशा में कुछ उठा नहीं रखा। दस महीनों तक पेन कारागार में बन्द रहा और इस बीच में वह भयानक रोग से पीड़ित भी था। अन्त में नये राजदूत जेम्स मनरो (James Manaroe) ने, अत्यधिक राजनैतिक प्रयत्नों के बाद उसे कारागार से छुड़ाया।

अठारह महीनों तक मनरो के मकान में पेन स्वास्थ्य-लाभ करता रहा।

सन् १७६५ ई. में उसने फ्रांस की राष्ट्रीय परिषद् में, जो इस समय संविधान पर विचार कर रही थी, अपना स्थान प्राप्त करने का पुन: प्रयत्न किया। इस विचार से कि उपर्युक्त परिषद् में उसके नाम पर उसका भाषण पढ़ा जाय, पेन ने 'सरकार के प्राथमिक सिद्धान्तों की चर्चा' (Dissertation on first Principles of Government) नामक पुस्तिका सन् १७६५ ई. में प्रकाशित की और उसे सदस्यों में वितरित किया। इस कृति में पेन के राजनैतिक विचारों का सारतत्त्व उपलब्ध होता है। 'मनुष्य के अधिकार' नामक लेख में व्यक्त अपने सरकार-विषयक कुछ प्रधान विचारों के सार-स्वरूप, इस कृति में, पेन ने अधिकार-साम्य के सिद्धांत पर जोर दिया है। उसने लिखा कि 'प्रतिनिधि के लिए मत देने का अधिकार वह मौलिक अधिकार है, जिसके द्वारा अन्य अधिकारों की सुरक्षा होती है।' सन् १७६५ ई० में पेन परिषद् के सम्मुख खड़ा हुआ और एक सचीव (Secretary) ने फ्रेंच भाषा में उसका भाषण पढ़कर सुनाया। पेन ने अपने इस भाषण द्वारा यह स्पष्ट कर दिया कि मतदान पर प्रस्तावित (साम्पत्तिक) बन्धन 'अधिकार-घोषणा' का उल्लंघन करते हैं। किन्तु किसीने न तो पेन का समर्थन किया और न संविधान की अन्तिम स्वीकृति के समय उसके प्रस्ताव पर ध्यान ही दिया। उसके बाद पेन कभी भी परिषद् की बैठकों में सम्मिलित नहीं हुआ।

पेन जितने दिनों तक 'मनरो' के मकान में रहा, उतने समय तक उसका जीवन दु:खी रहा होगा। एक तो वह शारीरिक रोग से पीड़ित था, दूसरी ओर वह फ्रांस में जनतन्त्र की अपर्याप्त क्रियाशीलता के कारण स्पष्ट रूप से निराश भी था। किन्तु जब पेन ने यह सोचा कि फ्रांस के कुछ आवेशग्रस्त व्यक्तियों के कारण ही वह लक्सेम्बर्ग के कारागार में बन्द नहीं रहा, वरन् संकट के समय उसने जिसकी सहायता की थी और अपने प्रकाशित लेखों द्वारा जिसकी अत्यधिक प्रशंसा की थी, अमेरिका के उस व्यक्ति—जार्ज वाशिंगटन—की क्षुद्रता और कर्तव्य-विमुखता के कारण वह इतने दिनों तक जेल में बन्द रहा, तो उसकी निराशा विरक्ति और कटुता में बदल गयी। सन् १७९६ ई० में पेन ने जॉर्ज वाशिंगटन के नाम जो पत्र लिखा, उसे अमेरिका के निवासी प्रभावित हुए बिना कदाचित् नहीं पढ़ सकते। फिर भी, यदि हम लोग इस विषय पर निष्पक्ष रूप से विचार करें, तो यह स्पष्ट हो जायगा कि पेन के कारावास

की व्यक्तिगत जाँच न करके वाशिंगटन ने संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रेसिडेंट के कर्तव्यों की उपेक्षा की। गवर्नर मोरिस ने, जो कि अमेरिका के फ्रांस विषयक कार्यों के मंत्री थे, वाशिंगटन को यह बताया कि पेन को कारागार से मुक्त करने के लिए सब सम्भव प्रयत्न किये गये थे, किन्तु इससे वाशिंगटन दोष-मुक्त नहीं हो सकते थे; क्योंकि वे मोरिस और पेन की शत्रुता को जानते थे। फिर भी पेन का पत्र, जो कि अस्वास्थ्य के द्वारा उत्तेजित कटुता की मानसिक स्थिति में लिखा गया था, स्पष्ट रूप से अविवेकपूर्ण था। जिस समय यह पत्र लिखा गया था, उस समय तक अमेरिका दो तीव्र विरोधी राजनैतिक दलों में, संघीय (federalists) और जनतन्त्रीय (Republicans) दलों में विभक्त था। पेन ने दूसरे दल (जनतन्त्रीय दल) से सम्बन्ध स्थापित करना आवश्यक समझा। यद्यपि पेन संघीय संविधान (Federal Constitution) से कुछ विषयों में असहमत था। फिर भी, जैसा कि उसने अपने उस पत्र के आरम्भ में लिखा है: राज्यों का 'संघ-सरकार' में सम्मिलित होने का समर्थन करने के नाते वह संघवादियों में से था। इसलिए उसे 'संघविरोधी' नहीं कहा जा सकता था, और वह तथा वाशिंगटन, आवश्यक रूप से राजनीति के क्षेत्र में एक दूसरे के नितान्त विरोधी नहीं थे। पेन ने अपने पत्र में लिखा है—"मैंने अमेरिका की क्रान्ति में जो भाग लिया वह सर्वविदित है।" पेन का यह कथन नितान्त सत्य है। विदेशों में राजनैतिक लेख लिखते समय उसने अमेरिका को सदैव मस्तिष्क में रखा। उसने अमेरिका की कभी उपेक्षा नहीं की।

कदाचित् अठारहवीं शती के अन्त में 'पेन' ने यह समझ लिया था कि इंग्लैण्ड और फ्रांस की राजनैतिक प्रगति में उसे किसी प्रकार का योग प्रदान नहीं करना है। इसलिए उसने अमेरिका के बारे में पुनः सोचना आरम्भ किया। जिस समय जेफर्सन (Jefferson) का नाम प्रेसिडेन्ट के पद के लिए प्रस्तावित था, उस समय पेन ने राष्ट्रीय जहाज द्वारा अमेरिका जाने की अपनी इच्छा उन्हें पत्र लिख कर प्रकट की। निर्वाचित हो जाने के पश्चात् जेफर्सन ने अपने एक मैत्रीपूर्ण पत्र में लिखा कि आप 'मेरी लैण्ड' नामक युद्ध-पोत द्वारा सुरक्षित ढंग से अमेरिका आ सकते हैं। उसके अतिरिक्त उन्होंने पेन को यह भी लिखा कि मैं आशा करता हूँ कि जब आप यहाँ आयेंगे तो

आप देश के विचारों एवं भावों को पूर्व समय के अनुकूल पायेंगे। मेरी हार्दिक कामना है कि अपने उपयोगी प्रयत्नों को जारी रखने के लिए और पुरस्कार-स्वरूप राष्ट्र की कृतज्ञता प्राप्त करने के लिए आप अधिक दिनों तक जीवित रहें।

सन् १८०१ ई० में पेन ने जेफर्सन के प्रेसिडेन्ट चुने जाने पर धन्यवाद देते हुए लिखा कि 'मेरी लैण्ड' द्वारा अमेरिका आना मुझे इस समय अस्वीकार है। दूसरे वर्ष के सितम्बर महीने में पेन बैल्टिमोर (Baltimore) पहुँच गया। किन्तु वाशिंगटन के नाम लिखे गये अपने कुख्यात पत्र तथा 'बौद्धिक-युग' नामक लेख में विधिक धर्म पर प्रहार करने के कारण अमेरिका में पेन को अधिकांश रूप से उपेक्षा ही प्राप्त हो सकी। पेन को यह भी ज्ञात हुआ कि जेफर्सन भी उसे अपने से दूर रख रहे हैं। किन्तु राबर्ट फल्टन (Robert fulton) और जान वेस्ली (John Wesley), जिनके घर में पेन पाँच महीनों तक रहा, उसके सच्चे मित्र सिद्ध हुए।

अमेरिका लौट आने पर राजनैतिक दल से सम्बद्ध होने तथा उसके सिद्धान्तों के लिए संघर्ष करने के अतिरिक्त पेन के लिए अन्य कोई मार्ग नहीं था। जेफर्सन के शासन-काल में पेन की राजनैतिक कृतियों में से 'संयुक्त राज्य के नागरिकों के प्रति' (To the citizens of United states) लिखे गये आठ सार्वजनिक पत्रों का संग्रह सर्वाधिक महत्त्व का था। अपने अन्य कतिपय निबन्धों और पत्रों के द्वारा पेन ने जनतंत्रीय उद्देश्य के समर्थन का प्रयत्न किया। उनमें से 'अपने सिद्धान्तों को प्रकट करने के लिए संघवादियों को चुनौती' एक है। लक्सेमबर्ग में अपने कारावास और वाशिंगटन की निन्दा करने के बाद से, पेन की स्थिति पूर्ववत् नहीं रही। जो सदैव स्वाधीनता का उपयोग करने के लिए उत्पन्न हुआ था, उसका अन्त अत्यन्त अभाग्यपूर्ण रहा। अपनी वृद्धावस्था में वह एक देशहीन व्यक्ति के रूप में रह गया। जेफर्सन की दृढ़ मैत्री भी अपने देशवासियों की दृष्टि में 'पेन को उठा न सकी।' चिड़चिड़ापन और विरक्ति में पेन ने अपनी जीवन-लीला समाप्त की।

फिर भी 'टॉम-पेन' का यह अंतिम मूल्यांकन नहीं होना चाहिए। हमें यह आशा है कि हमने यह प्रदर्शित किया है कि प्रतिभा के साथ अनिवार्यत: रहने-वाली मानवीय दुर्बलताओं के बावजूद भी पेन उन महान आत्माओं में से एक था, जो अपने युग में अत्यधिक आलोक भर दिया करती हैं।

सामान्य बुद्धि

कुछ लेखकों ने 'समाज' और 'सरकार' को इस प्रकार मिला दिया है कि उनमें कोई भेद ही नहीं रह गया। किन्तु न केवल वे दोनों एक दूसरे से भिन्न हैं, वरन् उनके उद्गम भी भिन्न-भिन्न हैं। हमारी आवश्यकताएँ समाज को जन्म देती हैं, और सरकार को उत्पन्न करते हैं हमारे दुराचार। समाज हम में स्नेह-सम्बन्ध स्थापित करके हमारे आनन्द की वृद्धि करता है; और सरकार हमारे दुराचारों का निग्रह करके उस आनन्द-वृद्धि में योग देती है। समाज पारस्परिक मेल-जोल को प्रोत्साहन देता है, और सरकार भेद उत्पन्न करती है। 'समाज' संरक्षक है और 'सरकार' दण्ड-विधायक।

समाज अपनी प्रत्येक दशा में एक वरदान है। किन्तु सरकार अपनी सर्वोत्तम स्थिति में भी, एक आवश्यक बुराई मात्र है। अपनी निकृष्टतम दशा में तो वह असह्य है; क्योंकि यदि हम किसी सरकार के द्वारा अथवा उसके अंतर्गत उन आपत्तियों को झेलें, जिन्हें किसी सरकार-रहित देश में झेलने की आशा करते हैं, तो यह सोच कर हमारा दुःख और बढ़ जाता है कि हम स्वयं अपने दुःख का साधन प्रस्तुत करते हैं। वस्त्र के समान सरकार भी निर्दोषता के लुप्त हो जाने का प्रमाण-चिन्ह है। स्वर्गिक कुंजों के भग्नावशेषों पर प्रासादों का निर्माण होता है। यदि हमारे अन्तःकरण की प्रेरणाएँ स्पष्ट तथा समान होतीं, और अबाधित रूप से उनका पालन होता तो मानव को अन्य किसी नियम-विधायक की आवश्यकता न पड़ती। किन्तु ऐसा न होने पर, अपनी सम्पत्ति के कुछ अंश को देकर शेष की रक्षा का साधन जुटाना वह आवश्यक समझता है, और ऐसा वह उसी विवेक की प्रेरणा से करता है, जो उसे प्रत्येक दशा में, दो बुराइयों में से कम को स्वीकार कर लेने का परामर्श देता है। इस प्रकार, सरकार का लक्ष्य सुरक्षा होने के नाते, यह निर्विवाद है कि सरकार का वही स्वरूप श्रेष्ठतम है जिसके द्वारा कम से कम व्यय पर अधिक से अधिक लाभ के साथ सुरक्षा की सर्वाधिक संभावना प्रतीत हो।

सरकार के रूपांकन एवं लक्ष्य को समझने के लिए कल्पना कीजिए कि एक मानव-समूह पृथ्वी के किसी निर्जन प्रान्त में, शेष संसार से दूर, अपनी

बस्ती स्थापित करता है। ये मनुष्य संसार अथवा किसी प्रान्त के आदिवासियों के समान होंगे। प्राकृतिक स्वातन्त्र्य की इस दशा में, सबसे पहले, वे समाज के विषय में सोचेंगे। सहस्रों प्रवृत्तियाँ उन्हें उस दिशा की ओर अग्रसर होने का प्रोत्साहन देंगी। मनुष्य की शक्ति उसकी आवश्यकताओं के समक्ष इतनी न्यून पड़ती है तथा उसका मस्तिष्क निरन्तर एकान्तवास के लिए इतना अनुपयुक्त है कि शीघ्र ही वह अन्य मनुष्य की सहायता प्राप्त करने के लिए विवश हो जाता है; और वह दूसरा व्यक्ति भी इसी प्रकार की सहायता का इच्छुक होता है। चार या पाँच व्यक्ति सम्मिलित रूप से उस निर्जन प्रदेश में एक साधारण घर बनाने में समर्थ होंगे; किन्तु एक व्यक्ति अपने जीवन-पर्यंत परिश्रम करने पर भी कुछ पूरा नहीं कर सकेगा। मकान बनाने की लकड़ी काट लेने पर भी वह अकेला उसे उठाकर नहीं ले जा सकता, और यदि किसी प्रकार उठाकर ले भी जाय, तो अकेला घर नहीं बना सकता। इसी बीच में भूख के कारण वह काम से विरत होने को विवश होगा, और इसी प्रकार उसकी प्रत्येक आवश्यकता उसे भिन्न दिशा में ले जाना चाहेगी। रोग या आपत्तिमात्र से उसकी मृत्यु हो सकती है। इन दोनों में से चाहे एक भी प्राणघातक न हो, किन्तु उसके कारण वह जीवन-निर्वाह में असमर्थ होकर क्रमशः क्षीण होते-होते नष्ट हो जायगा।

अस्तु, आकर्षण-शक्ति के समान आवश्यकता हमारे इन नये निवासियों को समाज के रूप में बदल देगी। जब तक वे एक दूसरे के प्रति उचित रूप से व्यवहार करते रहेंगे, तब तक उनके पारस्परिक सम्बन्ध के वरदान, सरकार तथा कानूनों को व्यर्थ सिद्ध करते हुए उनके बन्धनों को अनावश्यक प्रमाणित कर देंगे। किन्तु स्वर्ग के अतिरिक्त दोष के लिए अगम्य कोई स्थल नहीं है। अतः अनिवार्य रूप से यह होगा कि वे व्यक्ति निवास-सम्बन्धी अपनी प्रथम कठिनाइयों पर, जिन्होंने उन सबोंको एक सूत्र में बाँध रखा था, जिस अनुपात में विजय प्राप्त करेंगे, उसी के अनुसार वे एक-दूसरे के प्रति अपने कर्त्तव्यों और सम्बन्धों के निर्वाह में शिथिल होने लगेंगे। उनकी यह शिथिलता एक ऐसी सरकार स्थापित करने की आवश्यकता निर्दिष्ट करेगी, जो उनके भौतिक गुणों की कमी की पूर्ति कर सके।

कोई सुविधाजनक वृक्ष उनका संसद्-भवन होगा। उसकी शाखाओं की

छाया में समूची बस्ती सार्वजनिक विषयों पर विचार करने के लिए एकत्रित होगी। यह भी सम्भव है कि उसके प्रथम कानून सामान्य नियमन मात्र हों और सामूहिक तिरस्कार के अतिरिक्त अन्य कोई दण्ड भी न हों। इस प्रथम संसद् में प्रत्येक व्यक्ति अपने प्राकृतिक अधिकार के बल पर स्थान प्राप्त करेगा।

बस्ती के आरम्भ में जन-संख्या कम होगी; घरों की संख्या कम रहेगी और मनुष्यों के सार्वजनिक काम बहुत थोड़े तथा साधारण होंगे। किन्तु बस्ती के बढ़ने के साथ-साथ उनके सार्वजनिक कार्य भी बढ़ेंगे, और पहले की अपेक्षा उनके निवास-स्थान दूर-दूर होंगे। अस्तु, अनेक अवसरों पर सब मनुष्यों का एक स्थान पर, पूर्ववत् एकत्रित होना अपेक्षाकृत अधिक असुविधाजनक होगा। परिणामतः सुविधा के लिए वे सम्पूर्ण बस्ती में से कुछ चुने हुए व्यक्तियों के ऊपर विधान बनाने का कार्य-भार छोड़ देने के लिए सहमत होंगे। ये चुने हुए व्यक्ति उसी प्रकार कार्य करेंगे जिस प्रकार बस्ती के सभी मनुष्य उपस्थित रहकर कार्य करते; क्योंकि जिन आवश्यक कार्यों के लिए ये व्यक्ति चुने गये हैं वे काम चुनने वालों के ही नहीं हैं, वरन् इनके भी हैं। यदि बस्ती इसी प्रकार बढ़ती गयी तो प्रतिनिधियों की संख्या में वृद्धि करनी पड़ेगी। बस्ती के प्रत्येक भाग के हितों पर ध्यान दिया जा सके, इस दृष्टि से सर्वोत्तम यह समझा जायेगा कि पूरी बस्ती को कई सुविधा-जनक भागों में बाँट दिया जाय और प्रत्येक भाग उचित संख्या में अपने प्रतिनिधियों को भेजे। इन निर्वाचित सदस्यों के हित निर्वाचकों के हितों से भिन्न न हों, अतः बुद्धि यह स्वीकार करेगी कि समय-समय पर निर्वाचन होना उचित है; क्योंकि इस प्रकार वे निर्वाचित सदस्य कुछ महीनों के बाद लौट कर साधारण जनता में मिल जायेंगे, और इस विवेक के साथ कि हम कहीं अपने लिए ही अहितकर विधान न बना बैठें, वे जनता के प्रति सच्चे बने रहेंगे। बार-बार होने वाले इन परिवर्तनों से समाज के सभी भागों में सामान्य हित की स्थापना होगी और वे स्वाभाविक रूप से एक-दूसरे की सहायता करेंगे। इसी पारस्परिक सहयोग पर सरकार की शक्ति और शासितों का आनन्द निर्भर है, न कि राजा के अर्थ-हीन नाम पर।

अस्तु, स्पष्ट है कि सरकार का मूल-स्रोत वह पद्धति है, जो विश्व का शासन करने में नैतिक गुणों की असमर्थता के कारण आवश्यक हुई। यहीं पर सरकार का लक्ष्य भी स्पष्ट है— अर्थात् स्वतन्त्रता और सुरक्षा। चाहे बाह्य प्रदर्शनों से हमारी आँखें चौंधिया जायँ, हमारे कान ध्वनि से छले जायँ, पूर्व

धारणाएँ हमारी इच्छाओं को मोड़ दें, स्वार्थ हमारी समझ को दूपित कर दें, फिर भी प्रकृति की सरल वाणी और बुद्धि इसे सत्य घोषित करेगी।

मैं सरकार के स्वरूप की कल्पना प्रकृति के एक ऐसे सिद्धान्त से प्राप्त करता हूँ जिसे कोई 'कौशल' गलत सिद्ध नहीं कर सकता। वह सिद्धान्त यह है कि कोई वस्तु जितनी अधिक सरल होती है, उतनी ही अल्प मात्रा में वह अव्यवस्थित हो सकती है; और यदि अव्यवस्थित हो भी गयी तो उतनी ही सुगमता से वह सुधारी जा सकती है। इस सिद्धान्त को सम्मुख रख कर मैं इंगलैण्ड के अति प्रशंसित संविधान की संक्षिप्त आलोचना प्रस्तुत कर रहा हूँ। इसमें संदेह नहीं कि इंगलैण्ड का विधान अज्ञानता और दासता के उस युग के लिए श्रेष्ठ था जिसमें उसका निर्माण हुआ। जिस समय विश्व अत्याचार से पीड़ित था, उस समय उस अत्याचार से थोड़ा बच जाना बहुत बड़ी मुक्ति थी। किन्तु अत्यन्त सुगमता के साथ यह सिद्ध हो जाता है कि इंगलैण्ड का संविधान अपूर्ण एवं सामाजिक और राजनैतिक विप्लवों के वशीभूत है। इससे जिस लक्ष्य की पूर्ति की आशा की जाती है उसके लिए यह सर्वथा अयोग्य है।

निरंकुश सरकारें, यद्यपि मानव-जीवन का तिरस्कार करती हैं, फिर भी वे सरल होती हैं। उनके द्वारा पीड़ित किये जाने पर लोग अपने दुःख के उद्गम-स्रोत को जानते है और उनका उपचार भी जानते हैं। वे नाना प्रकार के कारणों और उपचारों से व्याकुल नहीं होते। किन्तु इंगलैण्ड का विधान इतना अधिक जटिल है कि राष्ट्र वर्षों पीड़ित रहने पर भी यह न जान सकेगा कि शासन के किस अंश में दोष है। कुछ व्यक्ति उस दोष को किसी स्थल पर देखेंगे तथा अन्य, दूसरे स्थल पर; और प्रत्येक राजनैतिक वैद्य उस दोप को दूर करने के लिए एक नया उपचार प्रस्तुत करेगा।

मैं जानता हूँ कि स्थानीय अथवा चिरकालीन पूर्वधारणाओं पर विजय प्राप्त करना कठिन है। फिर भी यदि हम इंगलैण्ड के संविधान के भागों की परीक्षा करने का कष्ट करें तो हमें ज्ञात होगा कि वे प्राचीन अत्याचारों के अवशिष्ट आधार हैं; हाँ, इतना अवश्य है कि उनमें कुछ नवीन जनतंत्रीय तत्वों का समावेश हो गया है। वे भाग इस प्रकार हैं:—

(१) राजा के रूप में राजतंत्रीय अत्याचार के अवशेष।

(२) कुलीनों (Peers) के रूप में कुलीनतंत्रीय (Aristocratical)

अत्याचार के अवशेष।

(३) लोक सभा के सदस्यों (Commons) के रूप में नवीन जनतंत्रीय (Republican) तत्त्व जिस पर इंगलैण्ड की स्वतंत्रता निर्भर है।

उपर्युक्त तीनों भागों में से प्रथम दो आनुवंशिक (Hereditary) होने के नाते, जनता से पूर्ण स्वतंत्र हैं और इसलिए सांविधानिक अर्थ में वे राज्य की स्वतंत्रता में किसी प्रकार का योग नहीं देते।

यह कहना कि इंगलैण्ड का संविधान परस्पर एक दूसरे का निग्रह करने वाली तीन शक्तियों का संघ है, निरा हास्यास्पद है। या तो इन शब्दों का कोई अर्थ नहीं हैं अथवा ये पूर्ण विरोधात्मक हैं। इस कथन में कि लोक-सभा के सदस्य राजा पर नियंत्रण रखते हैं, निम्नांकित दो अभिप्राय अन्तर्निहित हैं। प्रथम, यह कि किसी नियंत्रण के बिना राजा का विश्वास नहीं करना चाहिए अथवा दूसरे शब्दों में, निरंकुश अधिकार की तृष्णा राजतंत्र की प्राकृतिक व्याधि है। दूसरा, यह कि राजा के नियंत्रण के लिए नियुक्त लोक-सभा के सदस्य राजा की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान और विश्वास के पात्र हैं।

किन्तु, जो संविधान लोक-सभा के सदस्यों को यह अधिकार देता है कि वे पूर्ति (supplies) को रोक कर राजा का नियंत्रण करें, वही राजा को यह अधिकार देता है कि वह लोक-सभा के उन सदस्यों के अन्य विधेयकों को अस्वीकृत करके उनका नियंत्रण करे। इस प्रकार यह संविधान यह भी स्वीकार करता है कि राजा उन लोक-सभा के सदस्यों से अधिक बुद्धिमान है, जिन्हें इसने राजा से अधिक बुद्धिमान माना है। यह क्या है? मूर्खता मात्र।

राजतंत्र (Monarchy) की रचना ही नितान्त हास्यास्पद है। एक ओर तो यह एक आदमी को सूचना-प्राप्ति के साधनों से दूर कर देती है और दूसरी ओर उसे उस स्थिति में काम करने का अधिकार प्रदान करती है, जहाँ सर्वोच्च न्याय की आवश्यकता होती है। राजा शेष जगत से अपरिचित रहता है, फिर भी उसे ऐसे कार्य करने पड़ते हैं जिनके लिए संसार का पूर्ण ज्ञान आवश्यक है। इस प्रकार ये भिन्न-भिन्न तत्त्व स्वाभाविक रूप से एक दूसरे का विरोध और विनाश करते हुए सम्पूर्ण चरित्र को मूर्खतापूर्ण एवं व्यर्थ प्रमाणित करते हैं।

कुछ लेखकों ने ब्रिटिश संविधान को अन्य प्रकार से समझाया है। उनका कहना है कि राजा राजतंत्र का एक पक्ष है और जनता दूसरा पक्ष। कुलीनों

(Peers) की सभा (House of lords) राजा-पक्ष में है और लोकसभा (House of Commons) जनता-पक्ष में है। किन्तु यह भेद एक ही सभा का अन्तर्विभाजन है, और यद्यपि उपर्युक्त कथन सुन्दर ढंग से कहा गया है, फिर भी परीक्षा करने पर वह अस्पष्ट ज्ञात होता है। प्रायः यह बात देखने में आयेगी कि शब्दों की सुन्दरतम रचना, यदि किसी ऐसी वस्तु का वर्णन करती है जिसका अस्तित्त्व या तो सम्भव नहीं है या जो अपनी दुर्बोधता के कारण वर्णन से बाहर है, तो वह निरर्थक होती है। उससे कानों को सुख मिल सकता है, किन्तु मस्तिष्क को किसी अर्थ का बोध नहीं होगा। उपर्युक्त व्याख्या के अन्तर्गत निम्नलिखित प्रश्न निहित है।

उस अधिकार को, जिसे लोग राजा को सौंपने से डरते हैं और जिसका निग्रह करने के लिए विवश होते हैं, राजा ने किस प्रकार प्राप्त किया? ऐसा अधिकार बुद्धिमान लोगों द्वारा दिया हुआ नहीं हो सकता और जिससे नियंत्रण में रहना पड़े ऐसा अधिकार ईश्वरप्रदत्त भी नहीं हो सकता है। फिर भी, संविधान की व्यवस्था इस प्रकार के अधिकार का अस्तित्त्व मानती है।

किन्तु संविधान की यह व्यवस्था अपूर्ण है। साधन या तो लक्ष्य की पूर्ति कर नहीं सकते, अथवा करेंगे नहीं। यह सारा कार्य-व्यापार एक प्रकार की आत्महत्या है। जिस प्रकार अधिक भार कम को प्रभावित करता है और जिस प्रकार यन्त्र-चक्र एक पुर्ज़े से परिचालित होते हैं, उसी प्रकार हमें यह देखना है कि संविधान में कौन-सी शक्ति गुरुतम है; क्योंकि यही शक्ति शासन करेगी। यद्यपि अन्य शक्तियों अथवा उनके किसी अंश के द्वारा उसके गति-वेग में बाधा स्तुत हो सकती है; किन्तु जब तक वे उसकी गति को पूर्णतः रोकने में समर्थ नहीं होते, तब तक उनके प्रयास प्रभावहीन होंगे। वह प्राथमिक गत्यात्मक शक्ति अन्त में विजयिनी होगी। उसके वेग की कमी की पूर्ति समय अपने आप कर देगा।

कहने की आवश्यकता नहीं कि राजा इंगलैण्ड के संविधान की सर्वोपरि सत्ता है। वह अकेला उच्च पदों तथा निवृत्ति-वेतनों (Pensions) को देकर अपना सम्पूर्ण प्रभाव प्राप्त करता है। इसलिए, यद्यपि निरंकुश शासन को अस्वीकार करके हमने बुद्धिमानी की है, किन्तु साथ-ही-साथ राजा को

प्रमुख पद देकर पर्याप्त मूर्खता भी की है।

इसमें सन्देह नहीं कि अन्य देशों की अपेक्षा इंगलैण्ड में व्यक्ति अधिक सुरक्षित है, किन्तु जिस प्रकार से फ्रांस में राजेच्छा नियम है उसी प्रकार से इंगलैण्ड में भी। अन्तर केवल इतना ही है कि वे नियम सीधे राजा के मुख से न निकल कर संसदीय विधान के अति भयंकर रूप में जनता को प्राप्त होते हैं। चार्ल्स प्रथम के भाग्य ने राजाओं को अधिक न्यायशील नहीं, वरन् अत्यधिक चतुर बना दिया है।

अस्तु, सरकार की पद्धति और स्वरूप के विषय में राष्ट्रीय अभिमान और पूर्व धारणाओं को किनारे रख कर इस स्पष्ट सत्य को स्वीकार कर लेना चाहिए कि इंग्लैण्ड में ब्रिटिश संविधान के राजा-पक्ष के कारण नहीं, वरन् लोक-पक्ष के कारण, राजा उतना अत्याचारी नहीं है, जितना तुर्किस्तान में।

इंग्लैण्ड में सरकार का जो स्वरूप है, उसके संविधान की त्रुटियों की परख इस स्थल पर नितान्त आवश्यक है। जिस प्रकार पक्षपात के प्रभाव से हम अन्यों के साथ न्याय नहीं कर सकते, उसी प्रकार यदि हम दुर्दम पूर्व-धारणा के बन्धन में बद्ध हैं, तो हम अपने प्रति भी न्याय नहीं कर सकते; और जिस प्रकार वेश्यागामी व्यक्ति पत्नी चुनने या उसका न्याय करने के लिए अनुपयुक्त होता है, उसी प्रकार सरकार के दूषित संविधान के पक्ष में जब तक कोई पूर्व मान्यता बनी रहेगी, तब तक हम लोग किसी अच्छे संविधान का निर्णय नहीं कर सकते।

राजतंत्र और आनुवंशिक उत्तराधिकार

सृष्टि की व्यवस्था के अनुसार सभी मानव मूलतः समान हैं। इसलिए उनकी यह समानता किसी उत्तरगामी परिस्थिति के द्वारा ही नष्ट हो सकती है। अत्याचार और लोभ जैसे अप्रिय शब्दों का नाम लिए बिना भी, धनी और निर्धन के भेद का कारण समझाया जा सकता है। अत्याचार धन-प्राप्ति का साधन कदाचित् ही होता है; प्रायः वह धन का परिणाम होता है। लोभ यद्यपि मनुष्य को अत्यन्त दरिद्र होने से बचा लेता है, किन्तु वह मनुष्य को इतना कायर बना देता है कि वह धनी नहीं हो सकता।

मनुष्यों में एक अन्य प्रकार का और इससे बड़ा भेद है जिसका कोई

प्राकृतिक या धार्मिक कारण निर्दिष्ट नहीं किया जा सकता। वह भेद है राजा और प्रजा। नर और नारी का भेद प्रकृतिजन्य है; अच्छा और बुरा स्वर्ग-निर्धारित भेद है। किन्तु यह परीक्षण का विषय है कि संसार में मनुष्यों का एक नवीन वर्ग शेष की अपेक्षा अधिक उन्नत किस प्रकार अवतरित हुआ, और इस वर्ग के मनुष्य मानव-जाति के आनन्द के साधन हैं अथवा दुःख के।

धर्म-ग्रन्थों के अनुसार, सृष्टि के पुरातन काल में राजा नहीं हुआ करते थे। परिणामतः कोई युद्ध नहीं होता था। राजाओं के अभिमान से ही मानव-जाति अव्यवस्थित होती है। राजा के न होने के कारण ही हालैण्ड ने यूरोप के राजतन्त्रीय देशों की अपेक्षा अधिक शान्ति का आनन्द प्राप्त किया है। प्राचीन युग के प्रमाण भी इस बात का समर्थन करते है। 'पितृ-सत्ता-काल' में मनुष्यों ने जिस शान्ति और ग्रामीण जीवन का आनन्द उठाया, वह उस समय लुप्त हो गया जिस समय यहूदियों ने राजत्व की स्थापना की।

मूर्तिपूजकों ने सर्वप्रथम राजतंत्र की स्थापना की। बाद में इज़राइल के निवासियों ने उनका अनुकरण किया। मूर्ति-पूजा को प्रोत्साहन देने के लिए यह महान दानवीय आविष्कार था। उन जंगली मनुष्यों ने मृत राजाओं को दिव्य सम्मान प्रदान किया। ईसाई-जगत ने अपने जीवित राजाओं के प्रति वैसा ही भाव प्रदर्शित करके उस दिशा में प्रगति की है। जो अपने समस्त वैभव के मध्य मिट्टी में लुढ़क रहा हो, उस प्राणी को 'महाराजाधिराज' की दिव्य पदवी से विभूषित करना कितना अपवित्र कार्य है।

एक व्यक्ति का शेष मानव-जाति से इतने ऊपर उठ जाना जिस प्रकार मनुष्यों के प्राकृतिक अधिकार-साम्य के आधार पर न्याय नहीं कहा जा सकता, उसी प्रकार धर्म-ग्रन्थों के आधार पर भी इसका औचित्य सिद्ध नहीं किया जा सकता। गिड्यान (Gideon) और सिद्ध सैम्युअल (Samual) के अनुसार सर्वशक्तिमान ईश्वर की इच्छा स्पष्ट रूप से राजतंत्र को अस्वीकार करती है। राजतंत्रीय देशों में धर्म-ग्रंथों के उन सभी अंशों की अनुकूल व्याख्या कर दी गयी है, जो राजतंत्र का विरोध करते हैं। किन्तु जिन देशों में सरकार का निर्माण अभी होने वाला है उन देशों को उन अंशों पर ध्यान देना चाहिए। 'सीजर की वस्तुएँ सीजर को दो।', यह राज-दरबारों में लिखा हुआ धर्म-ग्रंथ-सम्मत सिद्धांत

हैं।* फिर भी इस वाक्य से राजतंत्र का समर्थन नहीं होता; क्योंकि उस समय यहूदियों का कोई राजा नहीं था और वे रोम साम्राज्य के दासत्व में थे। 'मूसा' ने सृष्टि का जो वृत्तांत बताया है उसके अनुसार आरम्भ से लगभग तीन सहस्र वर्षों के अनन्तर, राष्ट्र-व्यापी मोह के कारण यहूदियों ने राजा के लिए प्रार्थना की। उस समय तक उनकी सरकार एक न्यायाध्यक्ष और जाति के वृद्धों द्वारा शासित एक प्रकार की जनतन्त्रीय सरकार थी। केवल असाधारण परिस्थितियों में कभी-कभी सर्वशक्तिमान ईश्वर हस्तक्षेप किया करता था। यहूदियों का कोई राजा नहीं था और ईश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी को राजा के नाम से स्वीकार करना पाप माना जाता था। राजाओं को, मूर्तियों के समान, जो दिव्य सम्मान प्राप्त होता है उस पर यदि कोई गम्भीरतापूर्वक विचार करे तो उसे इस बात पर थोड़ा भी आश्चर्य नहीं करना चाहिए कि वह सर्वशक्तिमान ईश्वर अपने दिव्य विशेषाधिकार पर अपवित्रतापूर्वक आक्रमण करने वाली राजतंत्रीय सरकार को अस्वीकार करता है।

धर्म-ग्रन्थों में राजतन्त्र यहूदियों के पापों में से एक पाप माना गया है और उसका अभिशाप उनके लिए सुरक्षित है। इस विषय की कथा सुनने योग्य है।

इज़राइल के निवासी जब मिडिएनाइटों से पीड़ित हुए तो गिड्यान एक छोटी-सी सेना के साथ उनके विरुद्ध लड़ने के लिए चला; और ईश्वर के हस्तक्षेप के कारण उसे विजय प्राप्त हुई। इस विजय से यहूदी बड़े प्रसन्न हुए और गिड्यान के सेनापतित्व को इस विजय का कारण मान कर उन्होंने उसे राजा बनाने का प्रस्ताव करते हुए कहा—'आप, आपके लड़के और आपके लड़के के लड़के, हम पर शासन करें।' इस अवसर पर एक राज्य का ही नहीं, वरन् आनुवंशिक राज्य का महान प्रलोभन प्रस्तुत था। किन्तु गिड्यान ने दयापूर्वक उत्तर दिया—'न तो मैं और न मेरे पुत्र ही आप लोगों पर शासन करेंगे। ईश्वर आप पर शासन करेगा।' भाव स्पष्ट है। गिड्यान उक्त सम्मान को अस्वीकार नहीं करता है, वरन् वह यहूदियों के सम्मान प्रदान करने के अधिकार को अस्वीकार करता है। वह उन्हें बदले में धन्यवाद भी नहीं देता, वरन् सिद्धों की निश्चयात्मक शैली में अननुरक्ति के साथ, वह उन्हें उनके वास्तविक स्वामी को सौंप देता है।

लगभग एक सौ तीस वर्षों के बाद यहूदियों ने पुनः वही गलती की। मूर्तिपूजकों की पूजा-पद्धति के अनुकरण-सम्बन्धी यहूदियों की उत्कण्ठा का

कारण अज्ञात है। किन्तु इतना निर्विवाद है कि उनमें ऐसी उत्कण्ठा थी। सैम्युअल के दो पुत्रों को कुछ लौकिक-कार्य सौंपे गये थे। उनके दुराचारों से अवगत होकर उन यहूदियों ने, एकाएक कोलाहल करते हुए, सैम्युअल के समीप आकर कहा—"आप वृद्ध हो गये हैं। आपके पुत्र आपका अनुसरण नहीं कर रहे हैं। कृपया हम लोगों के लिए एक राजा नियुक्त कीजिए, जो हमारा न्याय कर सके जैसा कि अन्य राष्ट्रों में होता है।" इस स्थल पर हम स्पष्ट देखते हैं कि यहूदियों का अभिप्राय बुरा नहीं था; क्योंकि वे अन्य राष्ट्रों अर्थात् जंगली मूर्तिपूजकों के समान होना चाहते थे, जबकि उनका गौरव उन मूर्तिपूजकों से, यथासम्भव, भिन्न बनने में था। किन्तु जब उन्होंने कहा कि हमारे लिए एक राजा नियुक्त कीजिए, तो सैम्युअल अप्रसन्न हो उठे और उन्होंने ईश्वर से प्रार्थना की। ईश्वर ने सैम्युअल से कहा—"वे लोग तुमसे जो कहते हैं, उसे सुनो; क्योंकि उन्होंने केवल तुम्हारी उपेक्षा नहीं की है। जिस दिन से मैंने उन्हें मिस्र से बाहर लाकर उनका पालन-पोषण किया, उस दिन से आज तक अपने सभी कार्यों के द्वारा उन्होंने मेरी उपेक्षा करके अन्य देवताओं की उपासना की है। वैसा ही व्यवहार वे तुम्हारे साथ कर रहे हैं। अस्तु, उनकी बात को सुनो। फिर भी गम्भीरतापूर्वक उनका विरोध करो और राजा किस प्रकार से उनका शासन करेगा, इसे उन्हें समझाओ।" यहाँ राजा विशेष से अभिप्राय नहीं है, वरन् पृथ्वी के जिन राजाओं के अनुकरण की उत्कण्ठा यहूदियों को थी, उन राजाओं के सामान्य व्यवहार से तात्पर्य है। समयगत दूरी और प्रकार-भेद के होते हुए भी वे सामान्य व्यवहार आज दिन तक अक्षुण्ण बने हैं। सैम्युअल ने ईश्वर का कथन लोगों को कह सुनाया और कहा कि जो राजा तुम्हारा शासन करेगा उसके व्यवहार इस प्रकार के होंगे—"वह तुम्हारे पुत्रों को अपने उपभोग के लिए सेवक, सारथी अथवा सईस बनायेगा। तुम्हारे कुछ लड़के उसके रथ के आगे-आगे दौड़ेंगे। (आजकल जनता से जो बेगार ली जाती है, वह इस व्यवहार से मेल खाती है।) वह किसी-किसी को सहस्रों अथवा पचासों का नायक नियुक्त करेगा। वह अपने खेतों को जोतने और फ़सलों को काटने के कामों में लोगों को लगायेगा। कुछ लोग उसकी रक्षा अथवा युद्ध के लिए सामान तैयार करेंगे। तुम्हारी लड़कियों से वह अपनी रसोई बनवायेगा। वह तुम्हारे खेतों को तथा सर्वोत्तम जैतून के बगीचों को लेकर

अपने सेवकों को देगा और तुम्हारे बीजों तथा अंगूरों का दशांश लेकर अपने कर्मचारियों और सेवकों को देगा। वह तुम्हारे सेवकों-सेविकाओं तथा सुन्दरतम गदहों के दशांश को लेकर उन्हें अपनी सेवा में नियुक्त करेगा। वह तुम्हारी भेड़ों का दशांश लेगा और तुम लोग उसके सेवक बनोगे। उस समय अपने चुने हुए राजा के कारण पीड़ित होकर तुम लोग त्राहि-त्राहि करोगे, किन्तु ईश्वर तुम्हारी पुकार नहीं सुनेगा।" इस प्रकार राजतन्त्र आरम्भ हुआ। उस समय से आज तक जो थोड़े-से अच्छे राजा हुए, उनके चरित्र राजतन्त्र के उद्गम सम्बन्धी पाप को न तो पवित्र बना सकते हैं और न नष्ट ही कर सकते हैं। डेविड की जो इतनी प्रशंसा की गयी है वह उसके राजा के पद के नाते नहीं वरन् ईश्वर की पसन्द का व्यक्ति होने के नाते। यहूदियों ने सैम्युअल की बात नहीं मानी और कहा—"नहीं, हम लोगों को एक राजा चाहिए जिससे हम भी अन्य राष्ट्रों के समान बन सकें और हमारा राजा हमारा न्याय करे तथा हमारे आगे-आगे चलकर हमारी लड़ाइयाँ लड़े।" सैम्युअल उन लोगों से तर्क करता रहा परन्तु कुछ लाभ न हुआ। उसने उन सबकी कृतघ्नता को स्पष्ट किया, किन्तु उन यहूदियों पर इसका भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा। यह देखकर कि वे अपनी मूर्खता पर अड़े हुए हैं, सैम्युअल ने कहा—"मैं ईश्वर से कहूँगा कि वे बिजली और वर्षा भेजें (गेहूँ की फ़सल के समय यह एक प्रकार का दण्ड था) जिससे तुम लोग देख लो कि राजा की माँग करके तुमने महान बुराई की है।" तत्पश्चात् सैम्युअल ने ईश्वर से प्रार्थना की और उस दिन बिजली और वर्षा का प्रकोप रहा। तब मनुष्यों ने अधिक भयभीत होकर सैम्युअल से प्रार्थना की—"आप अपने सेवकों के लिए प्रभु से प्रार्थना कीजिए, जिससे हम लोग मरें नहीं। हम लोगों ने राजा की माँग करके एक पाप और किया।" धर्मग्रंथ के ये अंश सरल और स्पष्ट हैं। इनमें किसी प्रकार की जटिलता नहीं है। यदि धर्मग्रंथ झूठा नहीं है, तो यह सत्य है कि प्रभु ने राजतंत्र का विरोध किया। इस बात को स्वीकार करने के पर्याप्त कारण हैं कि पोप-सम्बन्धी देशों में धर्मग्रंथों को जनता से दूर रखने में राजनीति पुरोहित-नीति के समान ही होती है, क्योंकि राजतंत्र प्रत्येक स्थिति में सरकार की महन्ती है।

राजतंत्र के दोषों में आनुवंशिक उत्तराधिकार का दोष और जोड़ दिया गया है। जिस प्रकार राजतंत्र हम लोगों के लिए अपमान है, उसी प्रकार

आनुवंशिक उत्तराधिकार पर स्थापित राजतंत्र हमारी सन्तति के लिए अपमान-जनक और ऊपर से लादी गयी वस्तु है। क्योंकि यतः सभी मनुष्य मूलतः समान हैं; अतः अन्य कुलों से अपने कुल को शाश्वत रूप से श्रेष्ठ मान लेने का जन्मजात अधिकार किसी एक व्यक्ति को नहीं है। सम्भव है कि कोई एक व्यक्ति अच्छे गुणों के कारण अपने सामयिकों के आदर का पात्र हो, किन्तु उसके उत्तराधिकारी उन गुणों के अभाव में आदर न प्राप्त कर सकें। राजाओं के आनुवंशिक अधिकार की मूर्खता को प्रमाणित करने के लिए सर्वाधिक सबल प्रमाणों में से एक यह है कि प्रकृति उसे अस्वीकार करती है। अन्यथा सिंह के स्थान पर प्रायः गीदड़ उत्पन्न करके वह इस आनुवंशिक अधिकार का उपहास न करती।

दूसरी बात यह है कि आरंभ में लोगों द्वारा प्रदत्त सम्मान के अतिरिक्त अन्य कोई सम्मान किसी व्यक्ति को प्राप्त न रहा होगा, और उस सम्मान को प्रदान करने वाले लोगों को अपनी सन्तति के अधिकारों को दे देने का कोई अधिकार नहीं था। यद्यपि उन्होंने किसी एक व्यक्ति से कहा होगा कि हम आपको अपना मुखिया चुनते हैं; किन्तु अपने उत्तराधिकारियों के प्रति स्पष्ट रूप से अन्याय किये बिना वे यह नहीं कह सकते थे कि आपके वंशज हमारे वंशजों पर सदैव शासन करें; क्योंकि यह सम्भव था कि इस प्रकार के मूर्खतापूर्ण, अन्याययुक्त तथा अप्राकृतिक समझौते के कारण उनके वंशज किसी दुष्ट अथवा मूर्ख के द्वारा शासित होते। अधिकांश बुद्धिमान पुरुषों ने अपने वैयक्तिक मत के अनुसार आनुवंशिक अधिकार के प्रति तिरस्कार का भाव प्रदर्शित किया है। फिर भी, यह उन बुराइयों में से है जो एक बार स्थापित हो जाने पर सुगमतापूर्वक दूर नहीं की जा सकती। कुछ मनुष्य तो भय के कारण और शेष अपेक्षाकृत अधिक बलशाली लोग राजा के साथ जनता को लूटते हैं।

राजाओं के आनुवंशिक उत्तराधिकार को मान लेना उनके उद्गम को सम्मानपूर्ण मान लेना हुआ, जबकि यह अधिक सम्भव है कि यदि हम प्राचीनता के घने आवरण को हटा कर राजाओं के उद्गम की झांकी प्राप्त करें, तो हमें ज्ञात होगा कि इनमें से सर्वप्रथम व्यक्ति आततायियों के किसी दल के उस मुखिया की अपेक्षा किसी भी रूप में अच्छा न रहा होगा, जिसने अपने अशिष्ट

व्यवहार या मर्मज्ञता में श्रेष्ठ होने के नाते, डाकुओं के प्रधान का पद प्राप्त कर लिया और जिसने अपनी बढ़ती हुई शक्ति और लूट के द्वारा, शान्त तथा असुरक्षित व्यक्तियों को भयभीत करके उन्हें प्रायः सुरक्षा-शुल्क देने को बाध्य किया। फिर भी, उसे अपना प्रधान चुनने वालों के मस्तिष्क में उसके वंशजों को आनुवंशिक अधिकार देने का विचार न रहा होगा। क्योंकि इस प्रकार शाश्वत रूप से अपने को अधिकार-वंचित रखना उनके उन स्वतंत्र और अनियन्त्रित सिद्धांतों के विपरीत था, जिन्हें उन्होंने अपने जीवन में स्वीकार किया था। इस कारण से राजतन्त्र के प्रारम्भिक युगों में आनुवंशिक उत्तराधिकार आकस्मिक अथवा रिक्त-पूर्ति की स्थिति के अतिरिक्त अधिकार के रूप में स्थापित नहीं हो सकता था। किन्तु चूँकि उन दिनों का कोई ज्ञात प्रमाण नहीं था और परंपरा-प्राप्त इतिहास कल्पित-कथाओं से भरा हुआ था, इसीलिए कई पीढ़ियों के बाद आनुवंशिक अधिकार के सिद्धांत को असभ्य व्यक्तियों के गले के नीचे उतारने के लिए सुविधा एवं समय के अनुकूल, अंधविश्वास की कहानियों को गढ़ लेना अत्यन्त सुगम कार्य था। लुटेरों के मध्य निर्वाचन अधिक व्यवस्थित नहीं हो सकता था। कदाचित् इसीलिए एक नेता की मृत्यु के उपरांत अन्य किसीको नेता चुनने के समय होने वाली भावी अव्यवस्था की आशंका ने पहले-पहल उनमें से बहुतों को उत्तराधिकार का आश्रय लेने की प्रेरणा दी होगी और उस समय जिसे सुविधा के नाते स्वीकार किया गया होगा, बाद में उसे अधिकार मान लिया गया।

इंगलैण्ड में 'विजय' के बाद से कुछ अच्छे राजा हुए। किन्तु संख्या में अपेक्षाकृत अधिक राजाओं से वह देश पीड़ित रहा। कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि विजयी विलियम (William The Conqueror) के नाम पर राजाओं को अत्यन्त सम्मानपूर्ण अधिकार प्राप्त था। कुछ सशस्त्र डाकुओं के साथ आकर इंगलैण्ड के निवासियों की इच्छा के विरुद्ध अपने को वहाँ का राजा घोषित करने वाली फ्रांस की एक जारज संतान स्पष्ट शब्दों में अत्यन्त क्षुद्र तथा दुष्टतापूर्ण मूल है। निश्चित रूप से इस मूल में कोई दिव्यता नहीं है। राजतन्त्रीय आनुवंशिक अधिकार की मूर्खता के विषय में अब और कुछ कहना व्यर्थ है। इतने पर भी यदि ऐसे निर्बल व्यक्ति हैं, जो इसमें विश्वास करते हैं तो वे गधे और सिंह की मिश्रित

उपासना तथा उनका स्वागत करें। मैं न तो उनकी दीनता का अनुकरण करूँगा, और न उनकी भक्ति में बाधा ही प्रस्तुत करूँगा।

फिर भी मैं उनसे इतना पूछूँगा कि उनकी मान्यता के अनुसार राजाओं का उद्भव किस प्रकार हुआ? इस प्रश्न के केवल तीन उत्तर हो सकते हैं—अर्थात् भाग्य से, निर्वाचन से अथवा अपहरण से। यदि पहला राजा भाग्य के बल पर नियुक्त हुआ तो यह एक ऐसा प्रमाण है, जिससे आनुवंशिक उत्तराधिकार का निषेध होता हैं। साउल (Saul) भाग्य से राजा बना, किन्तु उसके वंशज उसके उत्तराधिकारी नहीं हुए, और न तो उस समय के प्रबन्ध से यह पता चलता है कि उस समय लोगों में आनुवंशिक उत्तराधिकार की इच्छा थी। यदि किसी देश का पहला राजा निर्वाचित हुआ था, तो वह अन्यों के लिए भी उसी प्रकार का प्रमाण स्थापित करता है। प्रथम निर्वाचकों ने एक राजा नहीं, वरन् राजाओं के परिवार को चुनकर अपनी भावी पीढ़ियों का अधिकार सदा के लिए छीन लिया, यह कथन धर्म-ग्रंथों में उल्लिखित केवल उस प्रारंभिक पाप-विषयक सिद्धान्त के समान होगा, जिसके अनुसार सब मनुष्यों की स्वतंत्र इच्छा आदम (Adam) की स्वतन्त्र इच्छा के साथ-साथ नष्ट हो गयी। इसके अतिरिक्त इस प्रकार का अन्य कोई सिद्धान्त धर्म-ग्रंथों में नहीं मिलता। यह भी सत्य है कि इस समानता के होते हुए भी आनुवंशिक उत्तराधिकार को कोई गौरव नहीं प्राप्त हो सकता। आदम का पाप सब का पाप माना गया और प्रथम निर्वाचकों का मत सब का मत मान लिया गया। एक के अनुसार मानव-जाति शैतान के वशीभूत हुई और दूसरे के अनुसार राजा के। पहली दशा में हमारी निर्दोषता नष्ट हो गयी और दूसरी स्थिति में हमारे अधिकार नष्ट हो गये। इस प्रकार दोनों सिद्धान्त हम लोगों को अपनी पूर्व दशा एवं पूर्व अधिकारों को पुनः प्राप्त करने से रोकते हैं। अतः यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि प्रारम्भिक पाप और आनुवंशिक उत्तराधिकार के सिद्धान्त समान हैं। आनुवंशिक उत्तराधिकार की यह उपमा यद्यपि अपमानपूर्ण एवं लज्जास्पद है, किन्तु कोई भी व्यक्ति इससे अधिक उपयुक्त उपमा प्रस्तुत नहीं कर सकता।

जहाँ तक अपहरण का प्रश्न है, कोई भी व्यक्ति उसका समर्थन नहीं करेगा; और यह निर्विरोध सत्य है कि विजयी विलियम ने अपहरण किया था। सच्ची बात यह है कि इंगलैण्ड के राजतन्त्र का इतिहास अच्छा नहीं रहा है।

मानव-जाति का सम्बन्ध इस आनुवंशिक उत्तराधिकार की मूर्खता से अधिक उसके दोषों से है। इसका द्वार मूर्खों, दुष्टों और अयोग्यों के लिए भी खुला हुआ है। इसलिए इसकी प्रकृति अत्याचारात्मक है। जो व्यक्ति यह समझते हैं कि वे शासन करने के लिए और अन्य मनुष्य शासित होने के लिए उत्पन्न हुए हैं, वे शीघ्र ही उद्धत हो जाते हैं। शेष मानव-जाति से उत्कृष्ट इन व्यक्तियों के मस्तिष्क महत्त्व से विषाक्त हो जाते हैं, और इनका संसार शेष जगत से वस्तुतः इतना भिन्न होता है कि उन्हें इसके वास्तविक हितों से अवगत होने का अवसर कम प्राप्त होता है। जब वे गद्दी पर बैठते हैं तो राज्य भर में प्रायः, सर्वाधिक अज्ञानी और अयोग्य सिद्ध होते हैं।

आनुवंशिक उत्तराधिकार का दूसरा दोष यह है कि इसके अनुसार किसी भी आयु का अवयस्क गद्दी का अधिकारी हो जाता है, और राज-प्रतिनिधि उसके वयस्क होने के काल तक राजा के नाम पर सारा काम करता है। विश्वासघात करने के लिए उसके सम्मुख सभी प्रकार के अवसर और प्रलोभन रहते हैं। इसी प्रकार की राष्ट्रीय आपत्ति उस समय उपस्थित होती है जब कि एक राजा मानवीय निर्बलता की अन्तिम दशा को प्राप्त होता है। उपर्युक्त दोनों दशाओं में जनता एक ऐसे दुरात्मा का शिकार होती है, जो वृद्धावस्था अथवा शैशव की मूर्खता को सफलतापूर्वक दूषित कर सकता है।

आनुवंशिक उत्तराधिकार के बचाव-पक्ष में दिये गये तर्कों में सब से अधिक सत्य प्रतीत होनेवाला तर्क यह प्रस्तुत किया जाता है कि यह राष्ट्र को गृह-युद्ध से बचाता है। यदि यह तर्क सत्य होता तो निश्चित रूप से प्रभावशाली होता। किन्तु वास्तविकता यह है कि यह सफ़ेद झूठ है। इंगलैण्ड का सम्पूर्ण इतिहास इसे अस्वीकार करता है। तीस वयस्क राजाओं और दो अवयस्कों ने इंगलैण्ड का शासन किया है। इस बीच, सन् १६८८ की क्रान्ति को मिलाकर, कम-से-कम आठ गृह-युद्ध और उन्नीस विप्लव हुए। इसलिए आनुवंशिक उत्तराधिकार को शान्ति-स्थापना के जिस आधार पर उचित कहा जाता है, वह उलटे उस आधार का ही विनाश करते हुए अपने को शान्ति के लिए अनुपयुक्त सिद्ध करता है। यार्क और लंकाशायर के घरानों के राजगद्दी और उत्तराधिकार-सम्बन्धी संघर्ष ने इंगलैण्ड में कई वर्षों तक रक्तपात का दृश्य प्रस्तुत किया। साधारण युद्धों तथा घेरों के अतिरिक्त हेनरी और एडवर्ड

के बीच बारह घमासान लड़ाइयाँ हुईं। दो बार हेनरी एडवर्ड का और फिर एडवर्ड हेनरी का बन्दी बना। जब झगड़े का आधार केवल वैयक्तिक स्वार्थ होता है, तो युद्ध की गति और राष्ट्र की प्रकृति अत्यन्त अनिश्चित होती है। हेनरी विजयी होकर कारागार से प्रासाद में लाया गया और एडवर्ड प्रासाद से विदेश भाग जाने को विवश हुआ। किन्तु प्रकृति के सहसा परिवर्तन कदाचित् ही स्थायी होते हैं। हेनरी भी गद्दी से उतारा गया और उसके स्थान पर एडवर्ड राजा बना। संसद् बराबर अपेक्षाकृत अधिक शक्तिशाली का पक्ष लेती रही।

यह झगड़ा हेनरी षष्टम के राजत्व-काल में आरंभ हुआ और तब तक पूर्ण रूप से समाप्त नहीं हुआ, जब तक दोनों वंशों से सम्बन्धित हेनरी सप्तम् गद्दीपर न बैठा। इस प्रकार यह झगड़ा सन् १४२२ से सन् १४८६ ई० तक चलता रहा।

राजतन्त्र और उत्तराधिकार ने केवल किसी एक देश में नहीं, वरन् समस्त विश्व में विनाश की लीला प्रस्तुत की है। ईश्वरीय कथन इस प्रकार की सरकार के प्रतिकूल है। इसके द्वारा सदैव रक्तपात होता ही रहेगा।

यदि हम राजा के कार्यों की परीक्षा करें तो हमें विदित होगा कि कुछ देशों में राजाओं को कुछ नहीं करना पड़ता है। उनके द्वारा न तो उन्हें स्वयं कोई आनन्द प्राप्त होता है और न संसार को। इस प्रकार व्यर्थ जीवन बिता कर वे एक दिन इस लोक से विदा हो जाते हैं और अपने उत्तराधिकारियों को अपने उसी निष्क्रिय-पथ पर चलने को छोड़ जाते हैं। निरंकुश राजतन्त्र में असैनिक अथवा सैनिक सभी कार्यों का सम्पूर्ण भार राजा पर ही होता है। इजराइल के निवासियों ने जब राजा के लिए प्रार्थना की, तब उन्होंने यही कहा था कि हमें ऐसा राजा दीजिए, जो हमारा न्याय करे और हमारा अग्रणी हो कर लड़ाइयाँ लड़े। किन्तु इंगलैण्ड के समान जिन देशों में वह न तो न्यायाधीश है और न सेनापति वहाँ उसके क्या काम है, इसे हम नहीं समझ पाते।

कोई सरकार जनतन्त्र के जितने निकट पहुँचती है, राजा के काम उतने ही कम होते हैं। इंगलैण्ड की सरकार को कोई उपयुक्त नाम देना कुछ कठिन है। सर विलियम मेरिडिथ इसे जनतन्त्र कहते हैं। किन्तु अपनी वर्तमान स्थिति में वह 'जनतन्त्र' नाम के उपयुक्त नहीं है। उस पर राजा का भ्रष्ट प्रभाव है।

लोगों को पद देने का अधिकार राजा को है। इसके बल पर उसने इतनी प्रभावात्मक शक्ति प्राप्त कर ली है, और इंगलैण्ड के संविधान के जनतन्त्रीय अंश को—लोक-सभा के गुणों को—उसने इस प्रकार नष्ट कर दिया है कि इंगलैण्ड में ठीक उसी प्रकार का राजतन्त्र है, जिस प्रकार का फ्रांस या स्पेन में।

इंगलैण्ड के सभी निवासी संविधान के राजतंत्रीय अंश की नहीं, वरन् उसके जनतन्त्रीय अंश—अर्थात् अपने मध्य से लोक-सभा के लिए सदस्यों को चुनने की स्वतन्त्रता की प्रशंसा करते हैं। यह स्पष्ट है कि जब इस जनतन्त्रीय अंश के गुण नष्ट हो जाते हैं, तब दासता आरम्भ होती है। इंगलैण्ड का संविधान इसीलिए दोषपूर्ण है कि 'राजतन्त्र' ने 'जनतन्त्र' को विषाक्त कर दिया है। राजा ने लोक-सभा के सदस्यों को अपने प्रभाव के अन्तर्गत कर लिया है।

इंगलैण्ड में लड़ाई करने और पद देने के—जो स्पष्ट शब्दों में राष्ट्र को निर्धन बनाना और अपने इच्छानुसार उसकी व्यवस्था करना हुआ—अतिरिक्त राजा और कुछ नहीं करता है। आठ लाख स्टर्लिंग प्रतिवर्ष प्राप्त करने और साथ-साथ पूजित होने वाले व्यक्ति के लिए ये काम वास्तव में अत्यधिक सुन्दर हैं। ईश्वर की दृष्टि में और समाज के लिए, इंगलैण्ड के सभी लुटेरे राजाओं की अपेक्षा एक सच्चे मनुष्य का महत्त्व अधिक है।

अमेरिका की वर्तमान कार्य-स्थिति की विवेचना

अगले पृष्ठों में मैं जो कुछ कहूँगा वह सरल तथ्यों, स्पष्ट तर्कों और सामान्य बुद्धि के अतिरिक्त और कुछ न होगा। आरम्भ ही में पाठकों से मुझे केवल इतना कहना है कि वे पक्षपात और पूर्वधारणाओं से मुक्त हो जायँ; अपनी बुद्धि और अनुभूतियों को स्वनिर्णय के लिए छोड़ देने का कष्ट करें; मनुष्य के वास्तविक चरित्र को स्वीकार करें और वर्तमान युग की परिधि से बाहर आकर उदारतापूर्वक अपने मत का विस्तार करें।

इंगलैण्ड और अमेरिका के युद्ध के विषय में कई ग्रंथ लिखे जा चुके हैं। सभी श्रेणियों के मनुष्यों ने विभिन्न प्रेरणाओं और अभिप्रायों से इस वाद-विवादों में भाग लिया है। किन्तु सब कुछ प्रभावहीन रहा और विवाद का समय समाप्त हो गया। झगड़े का निर्णय करने के लिए अन्त में शस्त्रों का सहारा लेना पड़ा। इंगलैण्ड के राजा ने हम लोगों के लिए शस्त्र उठाने के

अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग छोड़ नहीं रखा था। अतः इस महाद्वीप ने उसकी चुनौती स्वीकार की।

कहा जाता है कि जब लोक-सभा में स्वर्गीय पेल्हम का (Mr. Pelham), जो योग्य मंत्री होते हुए भी दोषों से मुक्त नहीं थे, विरोध इस आधार पर किया गया कि उनकी कार्रवाइयाँ अस्थायी हैं तो उन्होंने उत्तर दिया कि मेरे समय तक वे स्थायी रहेंगी। यदि इस प्रकार का प्राण-घातक और निर्बल विचार वर्तमान संघर्ष के युग में उपनिवेशों में रहा तो आगामी पीढ़ियाँ अपने पूर्वजों को घृणापूर्वक याद करेंगी।

विश्व में इससे अधिक गौरवपूर्ण अवसर कभी भी प्रस्तुत नहीं हुआ था। यह एक नगर, एक प्रान्त अथवा एक राज्य का प्रश्न नहीं है, वरन् इसका सम्बन्ध निवास-योग्य पृथ्वी के अष्टमांश एक महाद्वीप से है। यह एक दिन, एक वर्ष या एक युग का कार्य नहीं है, वरन् भावी पीढ़ियाँ इस संघर्ष से सम्बन्धित हैं, और उन पर आज के कार्यों का प्रभाव अल्प या अधिक मात्रा में, अनन्त काल तक पड़ेगा। महाद्वीपीय एकता, विश्वास और सम्मान के बीज-बपन का यही अवसर है। जिस प्रकार सिन्दूर वृक्ष के शैशव में उसकी कोमल छाल पर सुई की नोंक से लिखा हुआ शब्द उसकी वृद्धि के साथ-साथ बढ़ता जाता है, उसी प्रकार इस समय की अल्प क्षति को भावी पीढ़ियाँ विशाल रूप में देखेंगी।

निर्णय के लिए, तर्क को छोड़कर शस्त्र का आश्रय लेने के कारण राजनीति का नवीन युग आरम्भ हो गया है। सोचने की एक नूतन पद्धति चल पड़ी है। उन्नीस अप्रैल के पूर्व की सभी योजनाएँ एवं प्रस्ताव आदि गत वर्ष के पंचांग के समान हैं, जो उस समय के लिए उपयुक्त होते हुए भी आज के लिए व्यर्थ है। अमेरिका और इंगलैण्ड के सम्बन्ध-विषयक प्रश्न के उभय पक्षों में से प्रत्येक के समर्थकों द्वारा जो कुछ प्रस्तुत किया गया, उन सबका पर्यवसान एक ही बिन्दु पर हुआ, और वह बिन्दु था—ग्रेट ब्रिटेन के साथ सम्बन्ध स्थापित करना। उन उभय पक्षों में यदि कोई भेद था तो उस सम्बन्ध को कार्यान्वित करने की पद्धति के विषय में था। एक बल-प्रयोग का और दूसरा मित्रता का प्रस्ताव कर रहा था। पर अब तक हुआ यह कि पहला पक्ष असफल हो गया और दूसरे ने अपना प्रभाव उठा लिया।

समझौते के लाभ के बारे में बहुत कुछ कहा जा चुका है और वह मनोरम स्वप्न के समान अदृश्य होकर हम लोगों को अपनी पूर्वस्थिति में ही छोड़ गया। अब तर्क के दूसरे पक्ष की परीक्षा करनी चाहिए। ग्रेट ब्रिटेन से सम्बन्धित तथा उस पर निर्भर रहने से उपनिवेशों की जितनी भौतिक क्षतियाँ हुई हैं तथा सदैव होती रहेंगी, उनकी जाँच करना नितांत उपयुक्त है। हमें उस सम्बन्ध और आधीनता की परीक्षा प्राकृतिक सिद्धांतों और सामान्य बुद्धि के आधार पर करनी है। हमें देखना है कि यदि हम इंगलैण्ड से स्वतन्त्र रहते हैं, तो हमें किसका विश्वास करना है, और यदि उसके आधीन रहेंगे तो हमें क्या आशा करनी चाहिए।

मैंने कुछ लोगों को यह कहते हुए सुना है कि अमेरिका ने ग्रेट ब्रिटेन के साथ अपने पूर्व-सम्बन्ध के अंतर्गत उन्नति की है; इसलिए उसके भावी सुख के लिए वही सम्बन्ध आवश्यक है। इससे अधिक दोषपूर्ण तर्क दूसरा नहीं हो सकता। इस तर्क के अनुसार तो यह कहा जा सकता है कि क्योंकि एक शिशु दूध पर जीवित रहा है, इसलिए उसे माँस या अन्न कभी नहीं खाना चाहिए। अथवा हमारे जीवन के प्रथम बीस वर्ष अनुगामी बीस वर्षों के लिए प्रमाण स्वरूप हैं। किन्तु इतना भी मान लेना वास्तविकता से अधिक मान लेना है। मैं स्पष्ट रूप से इस तर्क का उत्तर दे रहा हूँ। यदि यूरोप की किसी भी शक्ति का सम्बन्ध अमेरिका से न रहा होता तो वह इतना ही नहीं, वरन् इससे अधिक उन्नत होता। जिस वाणिज्य ने उसे सम्पन्न बनाया है वह जीवन के लिए आवश्यक है, और जब तक यूरोप को भोजन की आवश्यकता है, तब तक अमेरिका का बाजार बना रहेगा।

कुछ लोगों का कहना है कि इंगलैण्ड ने हमारी रक्षा की है। मैं इसे स्वीकार करता हूँ कि इंगलैण्ड ने हमें अपने भीतर खपा लिया है, और उसने हमारे व्यय पर हमारी रक्षा की है। मैं यह भी मानता हूँ कि उसी निमित्त से अर्थात् व्यापार और साम्राज्य के लिए, वह तुर्किस्तान की रक्षा किए होता।

दुःख है कि हम लोगों ने प्राचीन पूर्वधारणाओं का अनुसरण बहुत दूर तक किया और अंध विश्वास के लिए बहुत बड़ा बलिदान किया। हमने ग्रेट ब्रिटेन द्वारा की गयी अमेरिका की सुरक्षा को गौरव प्रदान किया; किन्तु यह न सोचा कि इंगलैण्ड ने अमेरिका की सुरक्षा अपने हित की दृष्टि से की न कि अमेरिका के प्रति स्नेह-भाव के कारण। उसने हमारे शत्रुओं से, हमारे लिए, हमें नहीं

बचाया, वरन् अपने शत्रुओं से और अपने लिए, हमें बचाया। उसने हमें उन लोगों से बचाया जिनका हमसे किसी प्रकार का झगड़ा न था और जो उसी कारण सदैव हमारे शत्रु बने रहेंगे। ब्रिटेन इस महाद्वीप पर से अपना अधिकार हटा ले या यह महाद्वीप अपनी परतंत्रता की बेड़ी तोड़ फेंके तो फ्रांस और स्पेन तथा अमेरिका के बीच शान्ति रहेगी, भले ही ब्रिटेन से उसकी लड़ाई चलती रहे। हनोवर (Hanover) की अंतिम लड़ाई से हम लोगों को सम्बन्धों के विरुद्ध शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

हाल ही में, संसद् में यह दृढ़तापूर्वक स्वीकार किया गया है कि पितृ-देश (ग्रेट ब्रिटेन) के माध्यम के अतिरिक्त उपनिवेशों के बीच कोई पारस्परिक सम्बन्ध नहीं है; अर्थात् पेन्सिलवेनिया (Pensylvania), जर्सीज (Jerseys) और इसी प्रकार शेष सभी उपनिवेश इंगलैण्ड के माध्यम से ही सम्बन्धित है। निश्चित रूप से सम्बन्ध सिद्ध करने का यह प्रकार द्राविड़ प्राणायाम से कम नहीं है। किन्तु मेरा मत है कि शत्रुता सिद्ध करने का यह संक्षिप्त और सच्चा ढंग है। फ्रांस और स्पेन अमेरिका-निवासियों के न कभी शत्रु थे और न कदाचित् कभी रहें। हमसे उनकी शत्रुता केवल ग्रेट ब्रिटेन की प्रजा होने के नाते है।

किन्तु, कुछ लोग कहते हैं कि ब्रिटेन हमारा 'मातृ या पितृ-देश' है। यदि ऐसी बात है तो ब्रिटेन का चरित्र अधिक लज्जास्पद है। पशु भी अपनी सन्तानों को नहीं खाते; जंगली एवं असभ्य लोग भी अपने परिवार के साथ युद्ध नहीं करते। इसलिए यदि उपर्युक्त सम्बन्ध सत्य है तो वह ब्रिटेन के लिए लज्जा की बात है। किन्तु या तो यह सत्य नहीं है, और सत्य भी है तो अंशतः। राजा तथा उनके चाटुकारों ने, पोप के समान, मानवी मस्तिष्क की श्रद्धात्मक निर्बलता पर अनुचित प्रभाव डालने के अभिप्राय से 'मातृ-देश' अथवा 'मातृ-पितृ-देश' जैसे शब्दों को छलपूर्वक गढ़ लिया है। इंगलैण्ड नहीं, वरन् यूरोप अमेरिका का पितृ-देश है। यह नयी दुनिया यूरोप के प्रत्येक अंश से आने वाले नागरिक एवं धार्मिक स्वतन्त्रता के पीड़ित प्रेमियों के लिए प्रश्रय रही है। वे माँ की कोमल गोद में से नहीं, वरन् राक्षस के अत्याचार से पीड़ित होकर यहाँ भागकर आये हैं, और इंगलैण्ड के बारे में यहाँ तक सत्य है कि जिन अत्याचारों ने, सर्वप्रथम कुछ लोगों को देश छोड़कर

विदेश में जाकर बसने के लिए विवश किया, वे अभी भी उनके वंशजों का पीछा कर रहे हैं।

पृथ्वी के इस विशाल कक्ष में, हम तीन सौ साठ मिल की विस्तार-सीमा (अर्थात् इंगलैण्ड की विस्तार-सीमा) को भूल जाते हैं, और अपेक्षाकृत बड़े परिमाण में मैत्री स्थापित करते हैं। हम यूरोप के प्रत्येक ईसाई के साथ बन्धुत्व स्वीकार करते हैं और भावों की उदारता में गौरव का अनुभव करते हैं।

यह जान लेना बड़ा मनोरंजक है कि विश्व के साथ जब हमारा परिचय बढ़ता है, तब हम किस नियमित क्रम में स्थानीय पक्षपातों या पूर्व धारणाओं की प्रभाव-सीमा से बाहर निकलते हैं। मुहल्लों में विभक्त इंगलैण्ड के किसी नगर में उत्पन्न व्यक्ति स्वभावतः अन्य टोलों के मनुष्यों के साथ सम्पर्क स्थापित करेगा; क्योंकि कई स्थितियों में उनके हित समान होंगे; और वह उन्हें पड़ोसी कहेगा। यदि वह उस नगर से कुछ ही मील दूर ऐसे किसी पड़ोसी से मिलता है, तो सड़क या गली के संकीर्ण विचार को छोड़कर वह उसे अपने नगर का व्यक्ति कहेगा और उसका अभिवादन करेगा। यदि वह अपने प्रान्त के अतिरिक्त अन्य किसी प्रान्त में उससे मिलता है, तो वह 'नगर' या 'सड़क' के क्षुद्र अन्तर को भूलकर उसे अपने प्रान्त का निवासी या देशवासी कहकर पुकारेगा। किन्तु यदि वे फ्रांस या यूरोप के किसी अन्य भाग में मिलें तो उनके स्थानगत भेद लुप्त हो जायँगे, और वे एक दूसरे को इंगलैण्ड-निवासी के रूप में देखेंगे। ठीक इसी प्रकार अमेरिका में आकर मिलने वाले सभी यूरोप के अथवा पृथ्वी के अन्य किसी अंश के निवासी एक देश के रहने वाले हैं। जिस प्रकार छोटे परिमाण में सड़क, नगर एवं प्रान्त आदि के भेद हैं उसी प्रकार बृहद् परिमाण में सम्पूर्ण के समक्ष इंगलैण्ड, हालैण्ड, जर्मनी और स्वेडेन आदि का स्थान है। यह भेद महाद्वीपीय मस्तिष्क के लिए अधिक संकीर्ण है। अमेरिका की सम्पूर्ण जनसंख्या का, और इस पेंसिलवेनिया प्रान्त की आबादी का भी, तृतीयांश इंगलैण्ड की संतान नहीं है। इसलिए केवल ब्रिटेन को 'मातृ-देश या पितृ-देश' कहना झूठा, स्वार्थपूर्ण, संकीर्ण एवं अनुदार कथन है और मैं इसे अस्वीकार करता हूँ।

किन्तु, यदि यह मान लिया जाय कि हम सब इंगलैण्ड की संतान हैं तो

इसका क्या अर्थ हुआ ? कुछ नहीं। इस समय हमारा शत्रु होने के कारण ब्रिटेन ने अपने सभी 'नाम और पद' नष्ट कर दिये हैं, और यह कहना नितान्त हास्यास्पद है कि समझौता कर लेना हमारा कर्तव्य है। इंगलैण्ड के राजाओं की वर्तमान परम्परा का प्रथम राजा (विजयी विलियम) एक फ्रांसीसी था, और इंगलैण्ड के आधे कुलीन उसी देश के वंशज हैं। अस्तु, तर्क की उसी पद्धति के अनुसार इंगलैण्ड को फ्रांस के द्वारा शासित होना चाहिए।

इंगलैण्ड और उपनिवेशों की संयुक्त शक्ति के बारे में बहुत कुछ कहा जा चुका है; यहाँ तक कहा गया कि सम्मिलित रूप से वे सारे विश्व को युद्ध की चुनौती दे सकते हैं। किन्तु यह अनुमान मात्र है। युद्ध का परिणाम अनिश्चित होता है। ऐसे उद्गारों का कोई अर्थ भी नहीं होता। क्योंकि एशिया, अफ्रीका या यूरोप में ब्रिटिश सेना की सहायता के लिए अपने निवासियों का नाश करना अमेरिका नहीं चाहेगा।

हमें विश्व को चुनौती देने की आवश्यकता भी क्या है ? हमारा काम वाणिज्य है, और यदि उसका सम्यक् निर्वाह हो सका तो इसके द्वारा हमें समस्त यूरोप की मैत्री और शान्ति प्राप्त हो सकेगी; क्योंकि अमेरिका के साथ स्वतंत्र व्यापार करने में यूरोप के सभी देशों को लाभ है। अमेरिका का व्यापार ही उसकी सुरक्षा है और सोने तथा चाँदी का न होना आक्रमणकारियों से बचाव हैं।

समझौते के कट्टर समर्थकों को मेरी चुनौती है कि वे ग्रेट-ब्रिटेन से सम्बन्धित होने पर इस महाद्वीप को होने वाले एक भी लाभ को बतावें। मैं अपनी चुनौती को दुहराता हूँ। समझौते से एक भी लाभ नहीं प्राप्त होगा। यूरोप के किसी भी बाजार में हमारे गल्ले बिकेंगे और हम चाहे जहाँ से माल मँगावें, हम उसका मूल्य दे सकेंगे।

किन्तु इंगलैण्ड के साथ उस सम्बन्ध के द्वारा हमारी जितनी क्षतियाँ हुई हैं, वे असंख्य हैं। सामान्य रूप से मानव-जाति के प्रति तथा विशिष्ट रूप से अपने प्रति, हमारा जो कर्तव्य है वह हमें उस सम्बन्ध को त्याग देने की शिक्षा देता है; क्योंकि ब्रिटेन के किसी प्रकार के आधिपत्य को स्वीकार करना प्रत्यक्ष रूप से इस महाद्वीप को यूरोप के लड़ाई-झगड़ों में फँसा देने की ओर प्रवृत्त कराना है। हमारा यह कार्य हमें उन राष्ट्रों के विरोध में खड़ा कर देगा, जो अन्य

स्थिति में हमारी मित्रता के इच्छुक रहते और जिनके प्रति हमें न क्रोध है, न कोई शिकायत। हमारे वाणिज्य के लिए सारा यूरोप बाजार है। अतः इसके अंश-विशेष के साथ हमें कोई पक्षपातपूर्ण सम्बन्ध नहीं स्थापित करना चाहिए। यूरोपीय झगड़ों से मुक्त होकर अपना मार्ग निर्धारित करने में अमेरिका का वास्तविक हित है; और जब तक ब्रिटेन पर अपनी निर्भरता के कारण अमेरिका ब्रिटिश राजनीति की तुला पर सन्तुलन-शक्ति के रूप में है, तब तक ऐसा करना उसके लिए सम्भव नहीं है।

यूरोप इतना घना है कि उसके राज्य अधिक समय तक शान्तिपूर्वक नहीं रह सकते। जब कभी इंगलैण्ड और अन्य किसी विदेशी शक्ति के बीच युद्ध छिड़ता है तो ब्रिटेन के सम्बन्ध के कारण अमेरिका का व्यापार नष्ट हो जाता है। सम्भव है कि दूसरा युद्ध पहले युद्ध के समान न हो; उस स्थिति में समझौते के समर्थक अलग हो जाने के लिए इच्छुक होंगे। क्योंकि उस दशा में तटस्थ नीति जहाज़ी बेड़े से अधिक सुरक्षात्मक होगी। मृतकों के रक्त और प्रकृति के करुण स्वर पुकार-पुकार कर कह रहे हैं कि यह विच्छेद का समय है। सर्वशक्तिमान ईश्वर ने अमेरिका को इंगलैण्ड से जितनी दूरी पर स्थित किया है, वह भी इस बात का प्राकृतिक प्रमाण है कि ऐसा करने में प्रभु की इच्छा यह नहीं थी कि एक देश दूसरे पर शासन करे। इसी प्रकार इस महाद्वीप का अन्वेषण-काल उपर्युक्त तर्क को बल प्रदान करता है, और जिस प्रकार यह महाद्वीप आबाद हुआ उससे भी इसी का समर्थन होता है। धार्मिक-सुधार के पूर्व अमेरिका का पता लगा; मानों प्रभु ने कृपा करके उन पीड़ित लोगों के लिए आश्रय प्रस्तुत कर दिया, जिनको अपना घर न तो मैत्रीपूर्ण रहा और न सुरक्षात्मक।

इस महाद्वीप के ऊपर ग्रेट ब्रिटेन का प्रभुत्व एक ऐसी सरकार के रूप में है जिसका अन्त एक-न-एक दिन अवश्यम्भावी है। एक विचारशील एवं गम्भीर मस्तिष्क यह जानकर कोई आनन्द नहीं प्राप्त कर सकता कि दुःखद एवं निश्चित विश्वास के साथ जिसे वह वर्तमान संविधान कहता है, वह केवल अस्थायी है। हम यह जानते हैं कि यह सरकार इतने पर्याप्त समय तक रहने वाली नहीं है कि उसके द्वारा हमें ऐसा कुछ प्राप्त हो सके जिसे हम अपनी सन्तानों के लिए छोड़ जायं। अतः माता-पिता के रूप में हमें कोई आनन्द

नहीं मिल सकता। साधारण-सी बात है कि यदि हम भावी पीढ़ी के ऊपर ऋण का भार लाद रहे हैं तो हमें उनके योग्य काम भी करना चाहिए, अन्यथा हम उनके साथ क्षुद्र एवं दयनीय व्यवहार कर रहे हैं। अपने कर्तव्य-मार्ग को ठीक-ठीक निर्धारित करने के लिए हमें अपनी सन्तानों के हित का विचार करना चाहिए, और जीवन में अपने कार्य-काल को अपेक्षाकृत कुछ और वर्षों तक बढ़ा देना चाहिए। ऐसा करने से हमें उस लक्ष्य का स्पष्ट दर्शन होगा जिसे कुछ वर्तमान भय और पूर्वधारणाओं ने छिपा रखा है।

यद्यपि मैं अनावश्यक दोषारोपण करना नहीं चाहता हूँ, फिर भी मुझे विश्वास हो चला है कि समझौते के सिद्धान्त को स्वीकार करने वाले सभी व्यक्ति चार प्रकार के हो सकते है। प्रथम वे स्वार्थी व्यक्ति, जिन पर विश्वास नहीं किया जा सकता ; दूसरे वे निर्बल मनुष्य, जो कुछ सोच-समझ नहीं सकते; तीसरे वे व्यक्ति, जो अपनी पूर्वधारणाओं के कारण विचार ही नहीं करेंगे और चौथे, वे नम्र और मध्यम मार्ग का अवलम्बन करने वाले व्यक्ति हैं, जो यूरोप के बारे में, आवश्यकता से अधिक सोचते हैं। ये अंतिम प्रकार के व्यक्ति अपने अविवेक के कारण इस महाद्वीप के लिए उपर्युक्त अन्य प्रकार के व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक अनिष्टकर सिद्ध होंगे।

बहुतों के लिए यह भाग्य की बात है कि वे दुःखपूर्ण दृश्यों से दूर हैं। उन्हें इस बात का अनुभव नहीं हो सकता कि अमेरिका की सम्पूर्ण सम्पत्ति किस अनिश्चित एवं संकटपूर्ण स्थिति में है। किन्तु बोस्टन (Bostan) के बारे में विचार कीजिए। उसकी दुर्गति हमें शिक्षा देगी कि हम उस सरकार का परित्याग कर दें जिस पर हमें कोई विश्वास नहीं है। उस अभागे नगर के नागरिक कुछ मास पूर्व शान्ति और समृद्धि का उपभोग कर रहे थे, किन्तु इस समय घर बैठ कर भूखों मरने अथवा बाहर जाकर भीख माँगने के अतिरिक्त उनके लिए कोई चारा नहीं है। यदि वे नगर में रहते हैं तो उनके लिए मित्रों के क्रोध का संकट है और यदि वे नगर को छोड़ते हैं तो सैनिकों द्वारा लूट लिये जाते हैं। अपनी वर्तमान स्थिति में वे ऐसे बन्दी है, जिनके उद्धार की कोई आशा नहीं है। उनकी मुक्ति के लिए किये गये सार्वजनिक आक्रमण के समय, वे दोनों सेनाओं के तीव्र कोप के पात्र होंगे।

कुछ सहिष्णु प्रकृति के व्यक्ति ग्रेट ब्रिटेन के अपराधों पर हलके ढंग से

विचार करते हैं और भविष्य में उससे अच्छे व्यवहारों की आशा करते हैं। ये व्यक्ति तत्परतापूर्वक कहते हैं कि हम लोग पुनः मित्र के रूप में रहेंगे। किन्तु मानव-जाति के भावों और अनुभूतियों की परीक्षा कीजिए; समझौते के सिद्धान्त को प्रकृति की कसौटी पर रखिए; और फिर यह बतलाइए कि क्या आप, भविष्य में उस शक्ति को प्यार करेंगे और सम्मान देंगे अथवा विश्वास-पूर्वक उसकी सेवा करेंगे, जिसने आपके देश में विनाश का दृश्य प्रस्तुत किया है ? यदि आप यह सब नहीं कर सकते तो आप अपने को धोखा दे रहे हैं, और विलम्ब करके अपनी संतानों का विनाश कर रहे है। जिसे आप न प्यार करते हैं न सम्मान देते हैं, उस ब्रिटेन के साथ आपका भावी सम्बन्ध बलपूर्वक थोपा हुआ तथा अप्राकृतिक होगा। केवल वर्तमान सुविधा पर आधारित होने के कारण, थोड़े ही समय में, वह अपेक्षाकृत अधिक बुरी स्थिति को प्राप्त होगा। किन्तु यदि आप फिर भी कहें कि मैं सम्बन्ध विच्छेद नहीं करूँगा, तो मैं पूछता हूँ कि क्या आपका घर जलाया गया है ? क्या आपके सम्मुख आपकी सम्पत्ति नष्ट की गयी है ? क्या आपके बाल-बच्चे दाने-दाने को तरसने के लिए विवश किये गये हैं ? क्या आपके माता-पिता या बच्चे उन लोगों के द्वारा मारे गये हैं और इस प्रकार विनष्ट एवं आपदग्रस्त केवल आप बच गये हैं ? यदि आप कहते हैं कि 'नहीं' तो आप उन लोगों के न्यायकर्ता नहीं हैं जिनके ऊपर विपत्ति के बादल फटे हैं। यदि आपका उत्तर स्वीकारात्मक है, और फिर भी आप हत्यारों के साथ मिलने के लिए तत्पर हैं, तो आप पति, पिता, मित्र या प्रेमी होने के योग्य नहीं हैं; जीवन में आप चाहे किसी पद पर अथवा किसी वर्ग के हों, आपका हृदय कायर का है और आपकी आत्मा चाटुकारों की है।

इस प्रकार की बातें करके मैं न तो विषय को उत्तेजना प्रदान कर रहा हूँ, और न उसका वास्तविकता से अधिक वर्णन कर रहा हूँ; किन्तु उन अनुभूतियों और स्नेह-सम्बन्धों के आधार पर उसकी परीक्षा कर रहा हूँ, जिन्हें प्रकृति उपयुक्त ठहराती है, और जिसके बिना हम सामाजिक जीवन के कर्तव्यों के पालन अथवा उसके आनन्द के उपभोग के लिए सर्वथा अयोग्य हैं। प्रतिक्रिया को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से भय प्रदर्शित करना मेरा अभिप्राय नहीं है। मैं चाहता हूँ कि हम सब प्राणघातक और पौरुषहीन निद्रा से जाग जायें

और दृढ़तापूर्वक किसी निश्चित उद्देश्य की ओर अग्रसर हों। यदि अमेरिका अपनी भीरुता और दीर्घसूत्रता से स्वयं को न जीते, तो उसे जीतना ब्रिटेन या यूरोप के वश की बात नहीं है। वर्तमान जाड़े के समय का यदि ठीक उपयोग किया जाय तो यही उपयुक्त अवसर है, और यदि इसे खो दिया गया या इसकी उपेक्षा की गयी तो सम्पूर्ण महाद्वीप दुर्भाग्य का भागी होगा। यदि कोई व्यक्ति इतने बहुमूल्य और उपयोगी समय को नष्ट करने का साधन बनता है, तो चाहे वह कोई भी हो, किसी भी पद पर हो अथवा कहीं भी हो, उसे जो कुछ दण्ड दिया जायगा वह थोड़ा होगा।

यह महाद्वीप अधिक दिनों तक किसी विदेशी शक्ति के आधीन रहेगा, यह मान लेना तर्क, सृष्टि की वस्तु-व्यवस्था तथा पूर्व युगों के सभी उदाहरणों के विरुद्ध होगा। ब्रिटेन के सर्वाधिक आशावादी व्यक्ति भी ऐसा नहीं सोचते। मानव का सम्पूर्ण बुद्धिवैभव सम्बन्ध-विच्छेद के अतिरिक्त अन्य कोई ऐसी योजना नहीं प्रस्तुत कर सकता, जो वर्ष पर्यन्त भी इस महाद्वीप की सुरक्षा का विश्वास दिला सके। समझौता, वर्तमान स्थिति में, एक भ्रान्त स्वप्न है। प्रकृति ने उस सम्बन्ध को त्याग दिया है। कला प्रकृति का स्थान नहीं ले सकती। मिल्टन ने बुद्धिमत्तापूर्वक कहा है कि जहाँ घृणा के प्राणनाशक घाव अधिक गहरे हों, वहाँ वास्तविक समझौता स्थापित नहीं हो सकता।

शान्ति-स्थापना के सभी शान्त उपाय व्यर्थ सिद्ध हो चुके हैं। हमारी प्रार्थनाएँ घृणा के साथ ठुकरा दी गयी हैं और उन्होंने हमें यह मानने के लिए विवश किया है कि बार-बार की गयी प्रार्थनाओं के समान और कोई भी कार्य राजाओं के मिथ्याभिमान को प्रसन्न और उनके हठ को दृढ़ नहीं करता। हमारी बार-बार की प्रार्थनाओं ने यूरोप के राजाओं को जितना निरंकुश बनाया है उतना हमारे अन्य किसी कार्य ने नहीं। डेनमार्क और स्वेडेन को देखिए। इस समय युद्ध के अरिरिक्त और कोई उपाय काम नहीं करेगा। अतः हम लोग अंतिम रूप से सम्बन्ध-विच्छेद कर लें और 'माता-पिता' तथा 'संतति' के भ्रष्ट एवं अर्थ-हीन नामों के अन्तर्गत अपना गला घोंटने के लिए भावी पीढ़ी को न छोड़ें।

यह कहना कि भावी पीढ़ियाँ सम्बन्ध-विच्छेद का प्रयत्न नहीं करेंगी, व्यर्थ और काल्पनिक है। स्टैम्प अधिनियम (Stamp Act) के भंग होने के

अवसर पर हमने कुछ इसी प्रकार की बात सोची थी, किन्तु एक या दो वर्षों में वह धोखा प्रकट हो गया। क्या हम यह स्वीकार कर सकते हैं कि एक बार का विजित राष्ट्र फिर कभी युद्ध नहीं करेगा ?

जहाँ तक सरकार के कार्यों का प्रश्न है, ब्रिटेन के वश की बात नहीं है कि वह अमेरिका के साथ न्याय करे। अमेरिका के कार्य शीघ्र ही इतने भारी और जटिल होंगे कि हमसे इतनी दूरी पर स्थित एवं हमसे अपरिचित लोगों द्वारा, सामान्य रूप से भी, हमारे कामों का प्रबन्ध नहीं हो सकेगा। जिस प्रकार वे हमें जीत नहीं सकते, उसी प्रकार वे हम पर शासन भी नहीं कर सकते। एक संवाद या प्रार्थना-पत्र लेकर तीन या चार सहस्त्र मील बराबर दौड़ना, उत्तर के लिए चार या पाँच महीनों तक प्रतीक्षा करना, और उत्तर प्राप्त होने पर भी पांच या छः महीनों तक उसका स्पष्टीकरण होना, आदि कार्य कुछ ही वर्षों में मूर्खतापूर्ण माने जायेंगे। एक समय था जबकि यह सब उचित था। अब इसके समाप्त हो जाने का अवसर आ गया है।

बड़े-बड़े साम्राज्यों के अंतर्गत, उचित रूप से, वे ही द्वीप सम्मिलित किये जाने चाहिए, जो छोटे हैं और अपनी सुरक्षा करने में असमर्थ हैं। किन्तु एक महाद्वीप पर एक द्वीप का शाश्वत शासन मान लेना महान मूर्खता है। प्रकृति ने किसी भी स्थिति में, अपने मूलग्रहों की अपेक्षा उपग्रहों को बड़ा नहीं बनाया है। जहाँ तक आपस के सम्बन्धों का प्रश्न है, इंगलैण्ड और अमेरिका ने प्रकृति के इस सामान्य क्रम को उलटा कर दिया है। यह स्पष्ट है कि वे भिन्न-भिन्न पद्धतियों के हैं। इंगलैण्ड का सम्बन्ध यूरोप से है और अमेरिका का सम्बन्ध स्वयं से।

विच्छेद और स्वतन्त्रता के सिद्धान्त को स्वीकार करने में मैं किसी अभिमान, दल अथवा क्रोध के द्वारा प्रेरित नहीं हूँ। मेरा अन्तःकरण स्पष्ट एवं निश्चित रूप से यह विश्वास करता है कि इसी में इस महाद्वीप का सच्चा हित है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी कार्य फटे वस्त्रों को सिलाई द्वारा जोड़ देने के काम के समान ही होगा। उसके द्वारा कोई स्थायी आनन्द नहीं प्राप्त हो सकता। इस प्रकार हम अपने बच्चों के हाथ में तलवार उठाने का कार्य छोड़ रहे हैं, और हम उस समय पीछे हट रहे हैं जबकि हमारा थोड़ा-सा प्रयत्न इस महाद्वीप को पृथ्वी पर गौरव प्रदान कर देता।

ब्रिटेन ने समझौते के लिए स्पष्ट रूप से थोड़ी भी इच्छा व्यक्त नहीं की है। इसलिए यह निश्चित है कि समझौते की शर्तें इस महाद्वीप के स्वीकार करने योग्य नहीं होंगी अथवा हमारे जन और धन की जो क्षति हुई है, उसके अनुरूप हमें इस समझौते के द्वारा कुछ नहीं प्राप्त हो सकता।

लक्ष्य और उसकी प्राप्ति के लिए किये गये व्यय के बीच उचित अनुपात होना चाहिए। हमने जो लाखों का व्यय किया है उसके सामने 'नार्थ' (North) अथवा उसके सम्पूर्ण घृणास्पद गुट को हटा देने का मूल्य कुछ नहीं है। कुछ अवांछनीय अधिनियमों (Acts) को भंग करना ही लक्ष्य रहा होता तो उसके लिए केवल व्यापार को अस्थायी रूप से बन्द कर देना पर्याप्त था; किन्तु केवल घृणास्पद मंत्रिमण्डल के विरुद्ध सारे महाद्वीप का शस्त्र उठा लेना, प्रत्येक व्यक्ति का सेनानी बन जाना, कदाचित् ही उचित कहा जाय। यदि हमने अब तक जो संघर्ष किया है, वह केवल कुछ अधिनियमों को भंग करने के लिए ही, तो निश्चित रूप से यह सौदा महँगा है। जिस प्रकार मैंने यह बराबर सोचा है कि इस महाद्वीप का स्वतन्त्र होना एक ऐसी घटना है जो निकट या दूर भविष्य में होकर ही रहेगी, उसी प्रकार मैं यह भी मानता हूँ कि अमेरिका इस तीव्र गति के साथ परिपक्वता की ओर अग्रसर हो रहा है कि वह घटना दूर नहीं हो सकती। इसलिए शत्रुता के आरम्भ-काल में उस विषय पर झगड़ा करना उपयुक्त नहीं था, जिसे अन्त में समय स्वयं ठीक कर देता। जो काम स्वयं होने वाला है उसके लिए इतना बड़ा संघर्ष करना बुद्धिमानी की बात नहीं है। १९ अप्रैल १७७५ ई. के पूर्व तक मुझसे अधिक कोई व्यक्ति समझौते के लिए इच्छुक नहीं था। किन्तु, जिस क्षण उस प्राणघातक दिन की घटना प्रकाश में आयी, मैंने उस कठोर तथा हठी प्रकृति वाले इंगलैण्ड के राजा को सदा के लिए अस्वीकार कर दिया। मैं उस दुष्ट का तिरस्कार करता हूँ, जो प्रजा के पिता की छलपूर्ण पदवी के साथ जनता की हत्याओं को निर्दयता से सुन लेता है और उसके रक्त से अपनी आत्मा को संतुष्ट करके शान्तिपूर्वक सो सकता है।

किन्तु मान लीजिए समझौता हो गया, फिर क्या होगा ? उत्तर मैं देता हूँ—महाद्वीप का विनाश। निम्नांकित कारणों के बल पर मैं ऐसा कह रहा हूँ।

शासन के अधिकार राजा के हाथ में रहेंगे और उसे इस महाद्वीप के विधान-

मण्डलें के ऊपर निषेधाधिकार प्राप्त होगा। आज उसने अपने को स्वतंत्रता का चिर-शत्रु सिद्ध किया है और निरंकुश अधिकार की अत्यधिक लिप्सा का प्रदर्शन किया है। तो क्या आप समझते हैं कि वह उपनिवेशों से यह नहीं कह सकता कि तुम लोग कोई ऐसा कानून नहीं बना सकते, जिसे मैं स्वीकार न करूँ ?

क्या अमेरिका का कोई निवासी ऐसा है, जो इतना भी नहीं जानता कि जिसे हम वर्तमान संविधान कहते हैं उसके अनुसार यह महाद्वीप राजा की स्वीकृति के बिना कोई नियम नहीं बना सकता ? अथवा क्या कोई व्यक्ति इतना मूर्ख है कि यहाँ अब तक जो कुछ हुआ है उसे ध्यान में रखते हुए वह इतना भी नहीं समझ सकता कि राजा ऐसे किसी नियम को नहीं बनाने देगा जिससे उसका अभिप्राय न सधे। अमेरिका में नियमों के अभाव के कारण हम जितनी सफलता के साथ दास बनाये जा सकते हैं, इंगलैण्ड में बने हुए नियमों को स्वीकार करके भी हम उसी रूप में दास बनाये जा सकते हैं। समझौता हो जाने के बाद क्या इस बात में शंका है कि राजा अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ इस महाद्वीप को यथासम्भव क्षुद्र और दीन बनाने में प्रयत्नशील न होगा ? उन्नति के बदले हमारी अवनति होगी। हम बराबर झगड़ा करते रहेंगे अथवा प्रार्थना करते रहेगे। राजा हम लोगों को जितना बड़ा बनाने की इच्छा करता है, हम लोग उससे बड़े हैं। क्या अब से, वह हम लोगों को छोटा बनाने का प्रयत्न नहीं करेगा ? सौ बात की एक बात, जिसे हमारी उन्नति से ईर्ष्या है उस शक्ति को क्या हम पर शासन करना चाहिए ? इस प्रश्न के उत्तर में जो कहता है—'नहीं', वह वास्तव में स्वतन्त्र है; क्योंकि स्वतन्त्रता का अर्थ इससे अधिक क्या हो सकता है कि अपने नियम हम स्वयं बनावें, न कि इस महाद्वीप का सबसे बड़ा शत्रु-राजा हम लोगों से कहे कि मेरी इच्छा के अतिरिक्त दूसरा कोई नियम नहीं होगा। कहा जा सकता है कि इंगलैण्ड में भी राजा को निषेधाधिकार प्राप्त है। वहाँ की जनता उसकी स्वीकृति के बिना नियम नहीं बना सकती। अधिकार और व्यवस्था के सम्बन्ध में यह नितान्त हास्यास्पद है कि इक्कीस वर्षीय युवक अपने से बुद्धिमान और वयोवृद्ध लाखों मनुष्यों से कहे (ऐसा कई बार हुआ भी है) कि तुम अमुक नियम नहीं बना सकते। यद्यपि मैं इसकी मूर्खता का प्रकाशन निरन्तर करता रहूँगा; किन्तु इस स्थल पर मैं इस प्रकार का उत्तर न देकर केवल इतना कहना

चाहता हूँ कि इंगलैण्ड तो राजा की निवास-भूमि है पर अमेरिका नहीं। अतः दोनों की स्थितियाँ भिन्न-भिन्न हैं। राजा के निषेधाधिकार इंगलैण्ड की अपेक्षा अमेरिका के लिए दस गुने भयानक और प्राणघातक है; क्योंकि वह किसी ऐसे विधेयक (Bill) को अस्वीकृत नहीं करेगा जिसके कारण, सुरक्षा की दृष्टि से, इंगलैण्ड की स्थिति अपेक्षाकृत अधिक पुष्ट हो। अमेरिका में इस प्रकार के प्रस्ताव को वह स्वीकार नहीं करेगा।

ब्रिटेन की राजनैतिक व्यवस्था में अमेरिका का स्थान केवल गौण है। इंगलैण्ड इस देश का हित उतना ही सोचता है जितने से उसका अभिप्राय सिद्ध होता है। इसलिए जहाँ कहीं हमारी प्रगति से उसके हितों की वृद्धि नहीं होती, अथवा जहाँ कहीं हमारी प्रगति उसकी स्वार्थ-सिद्धि में थोड़ी भी बाधा पहुँचाती है, वहाँ उसका स्वार्थ उसे हमारी उन्नति को रोकने के लिए प्रेरित करता है। अब तक जो कुछ हुआ है उससे यह स्पष्ट है कि इस प्राचीन सरकार के अंतर्गत शीघ्र ही यह देश एक साधारण राज्य बन जायगा। नाम-परिवर्तन से शत्रु मित्र नहीं बन जाते। यह बताने के लिए कि इस समय समझौते का सिद्धान्त कितना भयानक है, मैं पूर्ण निश्चय के साथ कहता हूँ कि अमेरिका के इन प्रान्तों के शासन में अपने को पुनः स्थापित करने तथा शक्ति एवं हिंसा के द्वारा थोड़े-से समय में जो कार्य वह नहीं कर सकता, उसे सूक्ष्म बुद्धि द्वारा पूरा करने के लिए कुछ नियमों को भंग कर देना राजा की नीति होगी। समझौता और विनाश प्रायः परस्पर सम्बद्ध हैं।

इस समय समझौते द्वारा जो कुछ सुन्दरतम फल प्राप्त होगा, वह मात्र अस्थायी योजना होगी अथवा संरक्षक के रूप में एक ऐसी सरकार होगी, जो उपनिवेशों के प्रौढ़ होने तक ही टिकेगी। इसलिए, इस कालावधि में वस्तुओं की स्थितियाँ और स्वरूप सामान्यतः अनिश्चित एवं अनुज्ज्वल रहेंगे। विदेश से आने वाले सम्पन्न व्यक्ति ऐसे किसी देश में बसना नहीं चाहेंगे जिसकी सरकार का स्वरूप अनिश्चित है तथा जो प्रत्येक दिन विप्लव एवं अव्यवस्था की ओर झुकता जा रहा है। दूसरी ओर, यहाँ के वर्तमान निवासी इस अवसर का उपयोग अपनी सम्पत्ति को बेचने तथा इस महाद्वीप को छोड़ने में करेंगे।

किन्तु सबसे अधिक ठोस तर्क यह है कि केवल स्वातंत्र्य, अर्थात् सरकार का महाद्वीपीय स्वरूप, ही शान्ति स्थापित कर सकता है और गृह-युद्धों से

इसका रक्षा कर सकता है। मैं इस समय ब्रिटेन के साथ समझौते से डरता हूँ; क्योंकि इस बात की अधिक सम्भावना है कि समझौते के बाद, कहीं-न-कहीं, ऐसा विद्रोह होगा जिसके परिणाम ब्रिटेन के द्वेष की अपेक्षा कहीं अधिक प्राण-घातक होंगे।

ब्रिटेन की क्रूरता से सहस्रों नष्ट हो चुके हैं (और इसी प्रकार कदाचित् सहस्रों नष्ट होंगे)। उनकी अनुभूतियाँ हमारी अनुभूतियों से भिन्न हैं, क्योंकि हम लोग उनके समान पीड़ित नहीं हुए हैं। इस समय उनके पास सम्पत्ति के रूप में यदि कुछ है तो वह स्वतंत्रता है। पहले उनके पास जो कुछ था, वह उसी स्वतंत्रता की सेवा में चढ़ गया। अब, खोने के लिए उनके पास कुछ नहीं है। अतः वे आधीनता का तिरस्कार करते हैं। इसके अतिरिक्त, ब्रिटिश सरकार के प्रति उपनिवेशों की सामान्य प्रकृति ठीक उस युवक की प्रकृति के समान होगी, जो प्रायः अपने युग के अनुकूल नहीं है। वे इंगलैण्ड की बहुत कम परवाह करेंगे। जो सरकार शान्ति-रक्षा नहीं कर सकती, वह वस्तुतः सरकार नहीं है, और उस स्थिति में हम उसका भार-वहन व्यर्थ ही करते हैं। ब्रिटेन की शक्ति पूर्णतः कागजों पर निर्भर है। अतः, यदि समझौते के दूसरे दिन ही देश में विप्लव मच जाए, तो ब्रिटेन क्या कर सकता है? बिना सोचे-विचारे कुछ व्यक्ति कहते हैं कि स्वतन्त्र हो जाने पर गृह-युद्ध की सम्भावना है, इसलिए स्वतन्त्रता भयकारक है। हमारे प्रथम विचार कदाचित् ही सही होते हैं। इन व्यक्तियों के विषय में भी यही बात चरितार्थ होती है। स्वतन्त्रता की अपेक्षा समझौते से दसगुना भय है। मैं पीड़ितों की स्थिति को अपनी स्थिति मानता हूँ, और दृढ़ता के साथ कहता हूँ कि यदि मुझे घर से निकाल दिया गया होता तो घावों का अनुभव करने वाला मनुष्य होने के नाते, मैं समझौते के सिद्धान्त को कदापि नहीं चाहता और अपने को उससे बँधा हुआ नहीं मानता।

उपनिवेशों ने महाद्वीपीय सरकार के प्रति आज्ञाकारिता और सुन्दर व्यवस्था की भावना का ऐसा प्रदर्शन किया है कि प्रत्येक विचारशील व्यक्ति को उसके कारण प्रसन्नता होगी। इसलिए यदि कोई व्यक्ति स्वतन्त्रता से भयभीत होने का अन्य कारण निर्दिष्ट करता है, अर्थात् यह कहता है कि स्वतन्त्रता की प्राप्ति पर एक उपनिवेश दूसरे से श्रेष्ठ होने का प्रयत्न करेगा, तो यह उसका केवल बचपना होगा। जहाँ कोई भेद नहीं है, वहाँ कोई श्रेष्ठता नहीं हो सकती।

पूर्ण समानता किसी प्रकार का प्रलोभन नहीं उत्पन्न करती। यूरोप के जनतंत्रीय देश शांतिपूर्वक हैं और रहेंगे। हालैण्ड और स्वीट्ज़रलैण्ड, गृह तथा विदेशी, सब प्रकार के युद्धों से मुक्त हैं। राजतन्त्रीय देश अधिक दिनों तक शान्तिपूर्वक नहीं रह सकते। स्वयं राजमुकुट देश के साहसी लुटेरों के लिए एक प्रलोभन है। राजाओं के चिर सहचर अभिमान तथा हठ धीरे-धीरे इतने बढ़ जाते हैं कि विदेशी-शक्तियों के साथ उनका सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है; किन्तु यदि उनके स्थान पर, उनकी अपेक्षा अधिक प्राकृतिक सिद्धान्तों पर स्थापित, जनतन्त्रीय सरकारें हों तो वे उस भूल को सुधार लेती हैं।

यदि स्वतन्त्रता से डरने का कोई वास्तविक कारण है तो वह यह है कि अब तक कोई योजना निर्धारित नहीं हो सकी है। मनुष्यों को अपना मार्ग ज्ञात नहीं है। अस्तु, उस दिशा में प्रारंभिक प्रयत्न-स्वरूप में निम्नांकित संकेत प्रस्तुत कर रहा हूँ; और इसी समय, बड़ी नम्रता के साथ इतना कह देना चाहता हूँ कि इन संकेतों के बारे में स्वयं मेरा यही मत है कि वे किसी सुन्दरतम योजना को जन्म देने के लिए साधन मात्र हैं, इससे अधिक कुछ नहीं। यदि सभी व्यक्तियों के अव्यवस्थित विचारों का संकलन किया जाय तो बुद्धिमान और योग्य व्यक्ति उन्हें सुधार कर लाभप्रद बना सकते हैं।

वर्ष में एक बार, केवल एक प्रेसीडेण्ट की अध्यक्षता में सभाएँ हों। प्रतिनिधित्व अपेक्षाकृत अधिक समान रूप से हों और उन सभाओं के कार्य पूर्णतः घरेलू तथा महाद्वीपीय कांग्रेस के आधीन हों।

प्रत्येक उपनिवेश को छः, आठ या दस सुविधाजनक जिलों में विभक्त कर दिया जाय। प्रत्येक जिला प्रतिनिधियों की उचित संख्या कांग्रेस में भेजे, जिससे प्रत्येक उपनिवेश कम-से-कम तीस प्रतिनिधि भेजे। कांग्रेस के सदस्यों की पूरी संखया कम-से-कम ३९० होगी। प्रत्येक कांग्रेस बैठकर अपना प्रेसीडेण्ट निम्नलिखित पद्धति से चुने। जब सब प्रतिनिधि मिलें, तो चिट्ठी डालकर सम्पूर्ण तेरह उपनिवेशों में से एक को चुन लें। इसके बाद सब उपनिवेश गुप्त मतदान द्वारा उस निर्वाचित उपनिवेश के प्रतिनिधियों में से एक प्रेसीडेण्ट चुनें। दूसरी कांग्रेस में, पहली बार जिस उपनिवेश से प्रेसीडेण्ट चुना गया था उसे छोड़कर शेष बारह में से चिट्ठी डालकर एक को चुना जाय, और फिर यह क्रम तब तक चलता रहे, जब तक तेरहों उपनिवेशों की बारी समाप्त

न हो जाय। इसलिए कि कोई ऐसा नियम न बने जो साधारणतः उचित न हो, कांग्रेस के तीन पंचमांश को बहुमत माना जाय। इस प्रकार की समानता पर प्रतिष्ठित सरकार के अन्तर्गत जो कोई कलह को प्रोत्साहन देगा उसके समान दुष्ट व्यक्ति अन्य कोई न होगा।

किन्तु किसके द्वारा और किस प्रकार इसका आरम्भ हो, यह प्रश्न थोड़ा टेढ़ा है। सर्वाधिक मान्य और संगत बात यह है कि शासन करने वालों और शासित होने वालों, अर्थात् कांग्रेस और जनता के बीच मध्यस्थ के रूप में किसी सभा द्वारा इस कार्य का सम्पादन हो। इसलिए एक महाद्वीपीय परिषद् निम्नांकित पद्धति और अभिप्राय से बुलायी जाय।

उपर्युक्त सम्मेलन में कांग्रेस के छब्बीस सदस्यों की समिति (अर्थात् प्रत्येक उपनिवेश से दो सदस्य), प्रान्तीय सभा या प्रान्तीय परिषद् से दो सदस्य तथा शेष साधारण जनता से पाँच प्रतिनिधि भाग लें, जिनका निर्वाचन प्रत्येक प्रान्त की राजधानी या उसके किसी नगर में, प्रान्त के लिए या उसकी ओर से, चुनाव-कार्य के निमित्त प्रान्त भर के सभी भागों से यथासम्भव संख्या में आये हुए योग्य निर्वाचकों के द्वारा हों। यदि अधिक सुविधा हो तो उस प्रान्त के सर्वाधिक जनसंख्या वाले भागों से ये प्रतिनिधि निर्वाचित हों। इस सम्मेलन में कार्य के दो बड़े सिद्धान्तों अर्थात् ज्ञान और शक्ति का समन्वय होगा। कांग्रेस और प्रान्तीय सभा के सदस्यों को राष्ट्रीय कामों का अनुभव प्राप्त होगा, इसलिए वे योग्य एवं उपयोगी परामर्श दे सकेंगे। सम्पूर्ण सम्मेलन को जनता शक्ति प्रदान करेगी, अतः उसे वास्तविक एवं वैध अधिकार प्राप्त होंगे।

परिषद् के ये सदस्य एक महाद्वीपीय अथवा संयुक्त उपनिवेशों का शासन-पत्र तैयार करें। उस शासन-पत्र के द्वारा, वे कांग्रेस तथा प्रान्तीय सभा के सदस्यों की संख्या और उनके निर्वाचन की पद्धति तथा उसके कार्यारम्भ की तिथि निर्धारित करें; और उनके कार्यों तथा अधिकारों की मर्यादा स्पष्ट करें। वे इस बात का बराबर ध्यान रखें कि हमारी शक्ति महाद्वीपीय है, न कि प्रान्तीय। वे सभी की स्वाधीनता एवं सम्पत्ति की सुरक्षा, और सबसे बढ़कर अन्तःकरण की प्रेरणा के अनुसार धर्मपालन-विषयक स्वतन्त्रता की सुरक्षा की व्यवस्था करें। इन उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त उस शासन-पत्र में और जो आवश्यक समझा जाय, उस सबका समावेश हो। इसके शीघ्र

बाद उपर्युक्त परिषद् भंग कर दी जाय। इस शासन-पत्र के अनुसार चुने गये लोग कुछ काल के लिए इस महाद्वीप के विधायक और शासक होंगे। ईश्वर इस प्रकार की व्यवस्थावाले महाद्वीप की शान्ति और उसके आनन्द की रक्षा करे। तथास्तु।

भविष्य में इस तथा ऐसे कामों के लिए जितने लोग प्रतिनिधि स्वरूप निर्वाचित होंगे, उनके लिए मैं राजनीतिवेत्ता ड्रैगोनेट (Dragonetti) के निम्नांकित विचार प्रस्तुत कर रहा हूँ। 'राजनीतिज्ञों का विज्ञान सुख और स्वतन्त्रता की वास्तविक स्थिति निश्चित करने में है। जो व्यक्ति सरकार की ऐसी पद्धति सोच निकाले, जिससे न्यूनतम राष्ट्रीय व्यय पर सर्वाधिक वैयक्तिक आनन्द की प्राप्ति हो सके, वे युगों की कृतज्ञता के पात्र होंगे।'

कुछ लोग कहते हैं कि अमेरिका में राजा कहाँ है ? मैं कहता हूँ कि वह स्वर्ग से शासन करता है और ब्रिटेन के निर्दयी राजा के समान मानव-जाति का विनाश नहीं करता। फिर भी लौकिक सम्मान में भी हम लोग कम न रहें, इसलिए उस शासन-पत्र की घोषणा के लिए एक पवित्र दिन निश्चित कर लें। उस दिन दैवी नियम पर आधारित उस शासन-पत्र को लाया जाय और उस पर एक मुकुट रखा जाय ताकि सारा विश्व यह जान ले कि जहाँ तक राजतन्त्र-विषयक हमारी मान्यता है, अमेरिका में नियम राजा है। निरंकुश राजतन्त्र में राजा नियम होता है, इसलिए स्वतंत्र देशों में नियम को राजा होना चाहिए। वहाँ किसी दूसरे राजा की आवश्यकता नहीं है। किन्तु, इस विचार से कि भविष्य में उस मुकुट का किसी प्रकार का दुरुपयोग न होने लगे, उत्सव के अन्त में मुकुट को तोड़कर उस जनता में बिखेर दिया जाय जिसके प्रभुत्व का वह प्रतीक है।

हमारी निजी सरकार हमारा प्राकृतिक अधिकार है। यदि कोई मनुष्य मानवीय व्यवहारों की अनिश्चितता पर गम्भीरतापूर्वक विचार करे, तो वह इस बात को अवश्य स्वीकार करेगा कि ऐसे महत्त्वपूर्ण कार्य को समय और अवसर के हाथों न छोड़कर, यदि हम उसे सम्पन्न कर सकते हैं तो शांत और विचारपूर्ण पद्धति से अपना संविधान बना लेना अत्यधिक बुद्धिमत्तापूर्ण एवं सुरक्षित कार्य होगा। यदि हम इस समय इस कार्य को छोड़ देंगे, तो सम्भव है कि बाद में कोई मैसेनेलो (Massanello) सामान्य अशान्ति से लाभ

उठाकर कुछ निराश तथा असंतुष्ट व्यक्तियों को एकत्रित कर ले, और शासन-सूत्र अपने हाथों में लेते हुए बाढ़ के समान महाद्वीप की स्वतन्त्रता को बहा ले जाय। (टाम अनेलो (Anello) या मैसेनेलो (Massenello) नेपुल्स का एक मछुवा था। उस समय नेपुल्स स्पेन के आधीन था। उसने स्पेन के अत्याचारों के विरुद्ध अपने देश की जनता को नगर-चौराहे पर उत्तजना देकर विद्रोह करने के लिए प्रोत्साहित किया और एक दिन में वह स्वयं राजा बन बैठा।) यदि अमेरिका पुनः ब्रिटेन के आधीन रहे, तो उसकी डाँवाडोल स्थिति, एक अति साहसी व्यक्ति को अपना भाग्य आजमाने का प्रलोभन होगी। ऐसी स्थिति में ब्रिटेन क्या सहायता कर सकता है? इसके पूर्व कि वह इस समाचार से अवगत हो, सारा प्राणघातक कार्य सम्पन्न हो जायगा और हम लोग उसी प्रकार पीड़ित होंगे जिस प्रकार ब्रिटेन के दीन निवासी विजयी विलियम के अत्याचार से पीड़ित थे। जो लोग, इस समय स्वतन्त्रता का विरोध करते हैं, वे यह नहीं जानते कि हम क्या कर रहे हैं। सरकार के स्थान को रिक्त रखकर वे लोग शाश्वत अत्याचार को मार्ग दे रहे हैं। लाखों-करोड़ों व्यक्ति यह सोचते हैं कि इस बर्बर और नारकीय शक्ति को इस महाद्वीप से समाप्त कर देना गौरवास्पद है, जिसने रेड इण्डियनों तथा हबशियों को हमारे विनाश के लिए उत्तेजित किया है।

हमारी बुद्धि जिनपर श्रद्धा करने से हमें रोकती है और सहस्त्रों घावों से क्षत-विक्षत हमारे स्नेह जिनका तिरस्कार करने की शिक्षा देते हैं, उनके साथ मत्री करने की बात पागलपन और मूर्खता नहीं तो और क्या है? प्रत्येक दिन हमारे और उनके शेष सम्बन्धों को जीर्ण बनाता जा रहा है, तो क्या इस आशा का कोई कारण हो सकता है कि क्योंकि हमारे सम्बन्ध समाप्त हो रहे हैं इसलिए स्नेह बढ़ेगा या जब हमारे पास झगड़े के कई गुने अधिक कारण रहेंगे, तो हमसे पहले की अपेक्षा अधिक सुन्दर समझौता हो सकेगा!

फिर भी जो लोग अनुरूपता और समझौते की बात करते हैं, क्या वे लोग अतीत को लौटा सकते हैं? क्या वे लोग वेश्या-जीवन को उसकी पूर्व-निर्दोषता लौटा सकते है? नहीं, बस; उसी प्रकार, वे लोग इंगलण्ड और अमेरिका में समझौता भी नहीं करा सकते। अंतिम सम्बन्ध-सूत्र भी इस बार टूट गया है। इंगलैण्ड के लोग हम लोगों के विरुद्ध व्याख्यान दे रहे हैं। कुछ घाव ऐसे होते हैं

जिन्हें प्रकृति क्षमा नहीं कर सकती। यदि वह क्षमा कर दे तो फिर वह प्रकृति नहीं रह जायगी। क्या प्रेमी अपनी प्रेमिका के साथ बलात्कार करने वाले व्यक्ति को क्षमा कर सकता है? उसी प्रकार क्या अमेरिका अपने हत्यारे को क्षमा कर दे? उस सर्वशक्तिमान ने सदुदेश्य के निमित्त हमारे भीतर अक्षम्य अनुभूतियों का कोश निहित कर रखा है। अनुभूतियाँ उस प्रभु की प्रतिमा का संरक्षण करती हैं; वे हमें सामान्य जीव की कोटि से अलग करती हैं। यदि हम इतने कठोर होते कि हम पर स्नेह-स्पर्शों का प्रभाव न पड़ता, तो हमारे सम्बन्ध टूट जाते और न्याय पृथ्वी पर से समूल नष्ट हो जाता अथवा उसका अस्तित्त्व आकस्मिक होता। हमारी प्रकृति के घाव यदि न्याय करने के लिए हमें उत्तेजित न करें तो लुटेरे और हत्यारे प्राण-दण्ड से बच जायँ।

जो लोग मानव-जाति को प्यार करते हैं, जो न केवल अत्याचार वरन् अत्याचारी का साहसपूर्वक विरोध करते हैं, वे लोग तैयार हो जायँ। प्राचीन विश्व का प्रत्येक स्थल अत्याचार से पीड़ित है। वसुधा के वक्ष पर सर्वत्र स्वतंत्रता का पीछा हुआ है। एशिया और अफ्रीका ने बहुत पहले उसे बहिष्कृत कर दिया है। यूरोप उसके साथ अपरिचितों–जैसा व्यवहार कर रहा है और इंगलण्ड ने उसे चले जाने के लिए आदेश दिया है। आप लोग उस शरणार्थी का स्वागत कीजिए और उपयुक्त अवसर पर मानवता के लिए प्रश्रय का निर्माण कीजिए।

अमेरिका की वर्तमान योग्यता तथा कुछ विविध विचार

इंगलैण्ड और अमेरिका में मुझे कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिला, जिसने यह स्वीकार न किया हो कि इन देशों का सम्बन्ध-विच्छेद एक-न-एक दिन अवश्य होगा। स्वतंत्रता के लिए अमेरिका की उपयुक्तता और प्रौढ़ता का निरूपण करने के प्रयत्न में हम जितने कम न्यायशील रहे हैं, उतने किसी अन्य अवसर पर नही रहें।

सभी मनुष्य सम्बन्ध-विच्छेद को स्वीकार करते हैं, और केवल समय के विषय में उनके मत भिन्न हैं। अतः भ्रम-निवारण के निमित्त हम विषय का सामान्य निरीक्षण करें; और यदि हो सके तो उपयुक्त समय का निश्चय करें। किन्तु हमें अधिक दूर जाने की आवश्यकता नहीं; निरीक्षण तुरत समाप्त हो

गया ; क्योंकि वह उपयुक्त समय स्वयं हमारे पास आ गया है। सार्वजनिक एकता एवं सब वस्तुओं के गौरवपूर्ण योग से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उपयुक्त समय आ गया है।

हमारी महान शक्ति संख्या में नहीं, वरन् 'ऐक्य' में निहित है। फिर भी हमारी वर्तमान संख्या सारे विश्व की शक्ति को पीछे हटा देने के लिए पर्याप्त है। इस समय इस महाद्वीप के पास सशस्त्र और अनुशासित मनुष्यों की ऐसी सेना है, जो संसार में सबसे बड़ी है। वह सेना अभी-अभी शक्ति के उस शिखर पर पहुँच गयी है कि कोई एक उपनिवेश उसका भार वहन नहीं कर सकता; संयुक्त रूप से समस्त महाद्वीप ही उस कार्य को पूरा कर सकता है। इससे अधिक या न्यून होने पर यह शक्ति, परिणाम की दृष्टि से प्राणघातक हो सकती है। हमारी स्थल-शक्ति पर्याप्त है ही; और जहाँ तक समुद्री-शक्ति का प्रश्न है, क्या हम यह नहीं समझ सकते कि जब तक यह महाद्वीप इंगलैण्ड के आधीन है तब तक इंगलैण्ड, अमेरिका के जहाज़ी बेड़े का निर्माण कदापि नहीं करेगा। इसलिए आगामी सौ वर्ष तक, वर्तमान की अपेक्षा, इस दिशा में हम कुछ भी अधिक प्रगति नहीं कर सकते। सत्य तो यह है कि हमारी अवनति होगी। क्योंकि इस देश की लकड़ी दिन-प्रति-दिन समाप्त होती जा रही है और अन्त में जो कुछ शेष रहेंगी, वे समुद्र-तट से इतनी दूरी पर होंगी कि उन्हें प्राप्त करना कठिन होगा।

यदि इस महाद्वीप की जन-संख्या बहुत अधिक होती, तो वर्तमान स्थिति में, उसकी विपत्तियाँ असह्य हो जातीं। बन्दरगाह के रूप में जितने अधिक नगर होते, उतने अधिक को बचाना और खोना पड़ता। हमारी वर्तमान जन-संख्या भाग्य से, हमारी आवश्यकताओं के इस अनुपात में है कि किसी मनुष्य को बेकार रहने का अवसर नहीं है। व्यापार की कमी सेना को जन्म देती है, और सेना की आवश्यकताएँ नवीन व्यापार की सृष्टि करती हैं।

हम पर कोई ऋण नहीं है और इस कार्य के लिए हम जो ऋण लेंगे वह हमारे सद्गुणों का महिमामय स्मारक होगा। यदि हम अपनी भावी पीढ़ी के लिए सरकार का कोई निश्चित स्वरूप तथा निजी स्वतन्त्र संविधान छोड़ सकें, तो किसी भी मूल्य पर किया गया सौदा सस्ता होगा। किन्तु केवल कुछ अधिनियमों (Acts) को भंग करने और वर्तमान मंत्रिमण्डल का विघटन करने के लिए,

यदि हम लाखों व्यय करें तो यह अनुपयुक्त है। इस प्रकार हम आगामी पीढ़ी के साथ निर्दयता का व्यवहार करेंगे; क्योंकि हम इस महान कार्य को उनके लिए छोड़ देंगे और उनके सर पर ऋण का एक ऐसा भार लाद देंगे, जिससे उनका कोई हित न होगा। ऐसा विचार किसी संभ्रान्त व्यक्ति के अनुपयुक्त है; वास्तव में यह संकीर्ण हृदय वाले और तुच्छ राजनीतिज्ञों का लक्षण है।

किसी राष्ट्र को बिना ऋण के नहीं रहना चाहिए। राष्ट्रीय ऋण राष्ट्रीय बन्धन है, और यदि बिना सूद का है तो, वह किसी भी रूप में कष्ट का कारण नहीं हो सकता। ब्रिटेन पर १४,००,००,००० स्टर्लिंग ऋण हैं जिसके लिए उसे चार लाख से अधिक सूद देना पड़ता है। उस ऋण की क्षति-पूर्ति के रूप में उसके पास शक्तिशाली जहाजी बेड़ा है। अमेरिका पर कोई ऋण नहीं है और न उसके पास कोई जहाजी बेड़ा है। किन्तु इंगलैण्ड के राष्ट्रीय ऋण के बीसवें भाग के द्वारा वह उसके जैसा ही जहाजी बेड़ा निर्मित कर सकता है। इंगलैण्ड का जहाजी बेड़ा तीन लाख स्टर्लिंग से अधिक मूल्य का नहीं है।

इस पत्रक के प्रथम और द्वितीय संस्करणों में निम्नांकित विवरण नहीं प्रकाशित हुआ था, किन्तु यह सिद्ध करने के लिए कि जहाजी बेड़े के मूल्य के विषय में मेरा अनुमान सत्य है—मैं इसे प्रकाशित कर रहा हूँ। (देखिए, 'एन्टिक' द्वारा लिखित "जहाजी बेड़े का इतिहास")

जहाजी बेड़े के सचिव श्री बर्से (Burchelt) के अनुसार प्रत्येक प्रकार के जहाज का निर्माण-व्यय, उसके मस्तूल, पालदण्ड, पाल, पटसन आदि से सुसज्जित करने तथा नाविकों एवं बढ़इयों के लिए आठ महीनों के सामान के व्यय का विवरण

१०० तोपों का जहाज		३५,५५३ पौंड
९०	"	२९,८८६
८०	"	२३,६३८
७०	"	१७,७८५
६०	"	१४,१९७
५०	"	१०,६०६
४०	"	७,५५८
३०	"	५,८४६
२०	"	३,७१०

निम्नांकित जहाज और तोपों से बना हुआ, सन् १७५७ ई० का ब्रिटिश जहाज़ी बेड़ा अपनी उन्नततम दशा में था। ऊपर के विवरण के अनुसार अब हम सुगमतापूर्वक उस जहाज़ी बेड़े के मूल्य या व्यय की गणना कर सकते हैं।

जहाज	तोपें	एक का व्यय	कुल व्यय
६	१००	३५,५५३ पौंड	२१३,३१८ पौंड
१२	९०	२९,८८६ ,,	३५८,६३२ ,,
१२	८०	२३,६३८ ,,	२८३,६५६ ,,
४३	७०	१७,७८५ ,,	७६४,७५५ ,,
३५	६०	१४,१९७ ,,	४९६,८९५ ,,
४०	५०	१०,६०६ ,,	४२४,२४० ,,
४५	४०	७,५५८ ,,	३४०,११० ,,
५८	२०	३,७१० ,,	२१५,१८० ,,
८५ एक मस्तूल का छोटा जहाज, बम और तोपयुक्त जहाज (Fire (ship		२,००० ,,	१७०,००० ,,
		व्यय	३,२६६,७८६ पौंड
		तोपों के लिए शेष	२३३,२१४ ,,
		कुल व्यय	३,५००,००० पौंड

समुद्री बेड़े के निर्माण-कार्य के लिए अमेरिका के समान विश्व का कोई भी देश समर्थ नहीं है। राल, लकड़ी, पटसन और लोहा आदि अमेरिका की प्राकृतिक उपज है। हमें किसी वस्तु के लिए बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है, जब कि स्पेन और पुर्तगाल को अपने लड़ाकू जहाज़ों को किराये पर देकर अधिक लाभ उठाने वाले हालैण्ड के निवासियों को अधिकतर सामग्री बाहर से मँगानी पड़ती है। हमें जहाज़ी बेड़े को व्यापार की वस्तु के रूप में देखना चाहिए; क्योंकि यह देश उसका प्राकृतिक निर्माण-स्थल है। इस कार्य में हम जितना धन लगायें उतना अच्छा है। निर्मित हो जाने पर जहाज़ी बेड़े का मूल्य उसकी लागत से अधिक होता है। वाणिज्य और सुरक्षा का गठबन्धन सर्वोत्तम राष्ट्रीय नीति है। यदि हमें उन निर्मित जहाज़ी बेड़ों की आवश्यकता

नहीं है, तो हम उन्हें बेच सकते हैं और इस प्रकार कागज़ के नोटों को सोना और चाँदी से बदल सकते हैं।

जहाज़ी बेड़े को सेना से भरने में लोग प्रायः एक भूल कर बैठते हैं। यह कोई आवश्यक नहीं है कि बेड़े में चतुर्थांश नाविक हों। गत युद्ध में वैयक्तिक सशस्त्र जहाज़ "कैप्टेन डेथ" ने बड़े भयंकर संघर्ष का सामना किया, किन्तु उसमें केवल बीस नाविक थे, यद्यपि मनुष्यों की सब संख्या दो सौ से ऊपर थी। शीघ्र ही कुछ योग्य और समाजसेवी नाविक हमारी स्थल-सेना के सैनिकों को, पर्याप्त संख्या में, जहाज़ के साधारण काम सिखा देंगे। इस समय हमें लकड़ियाँ सुलभ हैं, मछली मारने का धंधा बन्द है और जहाज़ बनाने वाले व्यक्ति तथा नाविक बेकार हैं। अतः समुद्र-सम्बन्धी कार्यों को करने के लिए जितने योग्य हम इस समय हैं, उतने और किसी समय न होंगे। न्यू इंगलैण्ड में चालीस वर्ष पूर्व सत्तर और अस्सी तोपों वाले लड़ाकू जहाज़ बनते थे। इस समय वे क्यों नहीं बनते ? "जहाज-निर्माण" अमेरिका का सर्वोत्तम गौरव है और इस दिशा में शीघ्र ही वह सारे विश्व से बढ़ जायगा। पूर्व के बड़े-बड़े साम्राज्य समुद्र से दूर है, और परिणामतः अमेरिका की बराबरी करने में सर्वथा अक्षम है। अफ्रीका असभ्यावस्था में है और यूरोप के किसी देश में न तो इतना लम्बा समुद्री किनारा है और न तो आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन ही। प्रकृति ने यदि किसी देश को एक वरदान दिया है तो दूसरा रोक रखा है। केवल अमेरिका को उसने उदारतापूर्वक दोनों वरदान दिये हैं। रूस का इतना विस्तृत साम्राज्य, प्रायः, समुद्र-तट से दूर है, जिससे उसके राल और लोहा आदि वस्तुएँ केवल व्यापार की सामग्रियाँ हैं।

सुरक्षा के विचार से क्या हमें बिना जहाज़ी बेड़े के रहना चाहिए ? ६० वर्ष पूर्व हम जो थे, इस समय हम वही नहीं हैं। उस समय हम अपनी सम्पत्ति सड़क पर अथवा मैदानों में विश्वासपूर्वक छोड़ सकते थे; और द्वारों तथा खिड़कियों को बन्द किये बिना ही सुरक्षापूर्वक सो सकते थे। परिस्थितियाँ बदल गयी हैं। हमारी सम्पत्तिगत वृद्धि के साथ-साथ हमारी सुरक्षा-पद्धति भी उन्नत होनी चाहिए। बारह मास पूर्व एक साधारण समुद्री-डाकू डेलवेयर (Delaware) नदी के किनारे आकर फिलाडेल्फिया के नगर से इच्छानुसार धन ले सकता था, और यही बात और नगरों में भी सम्भव थी। इतना ही

क्यों, चौदह या सोलह तोपों से युक्त दो मस्तूलों वाले जहाज के द्वारा कोई भी साहसी व्यक्ति सम्पूर्ण महाद्वीप को लूटकर अत्यधिक धन ले गया होता। ये स्थितियाँ हमारे ध्यान को आकर्षित करती हैं और समुद्री-सुरक्षा की आवश्यकता प्रकट करती हैं।

कुछ लोग कदाचित् यह कहेंगे कि समझौते के बाद ब्रिटेन सुरक्षा-कार्य करेगा। क्या लोग इतने मूर्ख हैं कि वे यह मान लेते हैं कि ब्रिटेन हमारी सुरक्षा के लिए हमारे बन्दरगाहों पर जहाजी बेड़ा रखेगा? जिसके पास केवल साधारण बुद्धि होगी वह भी इस बात को समझ लेगा कि जिस शक्ति ने हमें दबाने का प्रयत्न किया है, वह हमारी रक्षा के लिए सब से अनुपयुक्त शक्ति है। मैत्री के बहाने विजय पूरी की जायेगी, और इतने दिनों के साहसपूर्ण विरोध के उपरान्त हम लोग छलपूर्वक दास बनाये जायेंगे। मैं पूछता हूँ कि यदि, ब्रिटेन के जहाज़ हमारे बन्दरगाहों तक नहीं आने पायेंगे, तो वह हमारी रक्षा किस प्रकार करेगा? तीन या चार सहस्त्र मील दूर स्थित जहाज़ी बेड़ा अमेरिका के लिए बहुत कम उपयोगी होगा; आकस्मिक संकट में तो वह किसी प्रकार की सहायता नहीं कर पायगा। अतः, यदि भविष्य में, हमें ही अपने को बचाना है, तो हम इसे दूसरों के लिए क्यों करें? अपने लिए क्यों न करें?

ब्रिटेन के युद्ध-पोतों की सूची बड़ी लम्बी और भयानक है; किन्तु उसका दशमांश भी किसी एक अवसर पर काम के लिए उपयुक्त नहीं रहता है। उनमें कतिपय का अस्तित्त्व होता ही नहीं। फिर भी, यदि जहाज़ों के तख्ते भी बच रहे हैं तो उनके नाम बड़ी शान के साथ उस सूची में बने रहते हैं। जो जहाज़ कार्य-योग्य हैं, उनका पंचमांश भी एक साथ एक स्थान से कार्य-मुक्त नहीं किया जा सकता। ईस्ट और वेस्ट इण्डीज, भूमध्य सागर, अफ्रीका तथा संसार के अन्य स्थल, जहाँ ब्रिटेन का आधिपत्य है, उसके समुद्री बेड़े को निरन्तर कार्य-रत रखते हैं। पक्षपात और असावधानी के कारण इंगलैण्ड के समुद्री बेड़े के विषय में हमने ग़लत धारणा बना रखी है, और इस प्रकार की चर्चा की है मानो उस सम्पूर्ण बेड़े से हमें एक साथ लड़ना होगा। यह कार्य वर्तमान समय में अव्यावहारिक है। अतः गुप्त टोरियों ने इस तर्क का सहारा लेकर हमें प्रारम्भ ही में निरुत्साहित करना चाहा है। ब्रिटेन के

समुद्री बेड़े को बहुत बड़ा मानना, सत्य से बहुत दूर की बात होगी। यदि ब्रिटेन की समुद्री-शक्ति का बीसवाँ भाग भी अमेरिका को प्राप्त हो जाय तो वह, शक्ति में ब्रिटेन से बढ़ जायगा। क्योंकि किसी विदेशी राज्य पर न तो हमारा आधिपत्य है और न हम उसे चाहते ही हैं। इसलिए हमारी सारी शक्ति हमारे समुद्री-तट पर कार्य-रत रहेगी। कुछ ही दिनों में हमारी समुद्री-शक्ति से हमें उनकी अपेक्षा दूना लाभ होगा, जिन्हें हम पर आक्रमण करने के लिए तीन या चार सहस्र मील की दूरी तय करनी पड़ेगी और नवीन शक्ति प्राप्त करने के लिए पुनः उतनी ही दूरी तक लौटना पड़ेगा। अपने समुद्री बेड़े के कारण ब्रिटेन हमारे यूरोपीय व्यापार पर नियंत्रण रखता है, तो हम भी ब्रिटेन के वेस्ट इन्डीज सम्बन्धी व्यापार पर उसी मात्रा में नियंत्रण रखते हैं; क्योंकि वेस्ट इण्डीज इस महाद्वीप के पड़ोस में होने के नाते पूर्णतः इसीकी कृपा पर निर्भर है।

यदि हम समुद्री बेड़े के व्यय-भार को सदा वहन करना आवश्यक न समझें, तो शान्ति के क्षणों में उसे वहन करने की कोई पद्धति निकाली जा सकती है। बीस, तीस, चालीस या पचास तोपों वाले जहाजों को बनाकर उनका निजी उपयोग करने के लिए व्यापारियों को कुछ अग्रिम-धन देना चाहिए। यह अग्रिम-धन व्यापारियों द्वारा जहाज़-निर्माण-कार्य में लगायी गयी पूंजी के अनुसार होना चाहिए। उन व्यापारिक जहाज़ों में से पचास या साठ जहाज, कुछ रक्षा-पोतों के साथ, पर्याप्त रूप से समुद्री शक्ति बनाये रखेंगे; और हम पर उनका कोई भार भी न रहेगा। इंगलैण्ड में शान्ति के समय जहाज़ बन्दरगाह पर बेकार रहकर धीरे-धीरे नष्ट होते रहते हैं। वहाँ के निवासी इससे अधिक दुःखी रहते हैं। हम उस बुराई से बचे रहेंगे। वाणिज्य और सुरक्षा का गठबन्धन श्रेष्ठ नीति है; क्योंकि जब हमारी शक्ति और सम्पत्ति साथ-साथ हों तो हमें किसी बाह्य शत्रु से डरने की आवश्यकता नहीं है।

सुरक्षा की प्रत्येक सामग्री का प्रायः हमारे यहाँ आधिक्य है। पटसन इतना अधिक होता है कि हमें रस्से का अभाव नहीं पड़ सकता। हमारा लोहा अन्य देशों के लोहे से अच्छा है। तोपों का निर्माण हम यथेष्ट कर सकते हैं। हम प्रतिदिन सज्जी खार और बारुद पैदा कर रहे हैं। प्रतिक्षण हमारा ज्ञान बढ़ रहा है। चित्त की दृढ़ता हमारी स्वाभाविक विशेषता है, और साहस ने कभी

हमारा साथ नहीं छोड़ा। हमें किसका अभाव है ? हम संकोच क्यों कर रहे हैं ? ब्रिटेन से विनाश के अतिरिक्त और कोई आशा नहीं है। यदि महाद्वीप में उसका शासन स्वीकार कर लिया गया तो यह भूखंड निवास-योग्य नहीं रहेगा। द्वेष निरन्तर उत्पन्न होते रहेंगे। लगातार विप्लव होंगे और उन्हें शान्त कौन करेगा ? अपने देशवासियों को विदेशी आधिपत्य स्वीकार कराने के लिए कौन अपना जीवन संकट में डालेगा ? पेन्सिलवेनिया और कानेक्टिकट के बीच अनिश्चित स्वामित्व वाली भूमि को लेकर परस्पर मतभेद है। यह तथ्य ब्रिटिश सरकार की निस्सारता प्रकट करता है और इस बात का पूरा प्रमाण है कि महाद्वीपीय विषयों को महाद्वीपीय शक्ति ही नियमित कर सकती है।

वर्तमान समय ही अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त क्यों है, इसका अन्य कारण यह भी है कि हम संख्या में जितने कम हैं, उतनी ही मात्रा में भूमि बेकार पड़ी हुई है। ब्रिटेन के आधीन रहने पर राजा अपने अयोग्य सेवकों को वह भूमि दे देगा। किन्तु यदि हम स्वतन्त्र हो जाते हैं तो हम न केवल वर्तमान ऋण चुकता करने में उस भूमि का उपयोग करेंगे, वरन् उसके द्वारा सरकार को निरन्तर आय प्राप्त होती रहेगी। इस प्रकार की सुविधा विश्व के किसी भी राष्ट्र को प्राप्त नहीं है।

जिसे उपनिवेशों की शैशवावस्था कहा जाता है, वह स्वतन्त्रता के विपक्ष में नहीं, वरन् पक्ष में प्रस्तुत किए जाने योग्य तर्क हैं। इस समय हमारी संख्या पर्याप्त है। यदि हम अपेक्षाकृत अधिक होते तो कम संगठित होते। बड़े मार्के की बात है कि किसी देश की जन-संख्या जितनी अधिक होती है, उसकी सेना उतनी ही छोटी होती है। जहाँ तक सैनिकों की संख्या का प्रश्न है, प्राचीन युग में वर्तमान की अपेक्षा सेनाएँ बहुत बड़ी हुआ करती थीं। इसका कारण स्पष्ट है; क्योंकि वाणिज्य जन-संख्या का परिणाम है, और उसमें मनुष्य इतने लीन हो जाते हैं कि अन्य कार्यों की ओर उनका ध्यान कम जा पाता है। व्यापार देश-भक्ति और सैनिक सुरक्षा विषयक प्रवृत्ति को कम कर देता है। इतिहास, पर्याप्त रूप से, इस तथ्य को प्रकाशित करता है कि किसी राष्ट्र की शैशवावस्था में सर्वाधिक वीरतापूर्ण कार्य सम्पन्न हुए हैं। वाणिज्य की वृद्धि के साथ-साथ इंगलैण्ड की शक्ति नष्ट हो गयी है। अधिक जन-संख्या के होते हुए भी लन्दन का नगर कायरों की-सी सहिष्णुता के साथ अपमान स्वीकार करता रहता है।

मनुष्यों के पास जितनी अधिक सम्पत्ति होती है, संकटपूर्ण कार्यों से वे उतना ही बचते हैं। सामान्यतः धनी व्यक्ति भय के दास होते हैं और श्वान के समान द्विधाभाव से काँपते हुए राजशक्ति को स्वीकार करते हैं।

व्यक्ति और राष्ट्र के जीवन में यौवन अच्छे गुणों के बीज बोने का समय है। आज से आधी शताब्दी के बाद संपूर्ण महाद्वीप की एक सरकार स्थापित करना असम्भव नहीं, तो कठिन हो सकता है। व्यापार एवं जन-संख्या की वृद्धि के कारण उत्पन्न नाना प्रकार के स्वार्थ देश में गड़बड़ी उत्पन्न कर देंगे। एक उपनिवेश दूसरे के विरुद्ध होगा। प्रत्येक उपनिवेश प्रौढ़ होने के नाते योग्य होगा। उसे दूसरे की सहायता की परवाह नहीं रहेगी। ऐसी परिस्थिति में एक ओर अभिमानी और मूर्ख व्यक्ति अपनी-अपनी सीमित विशेषताओं में गौरव प्राप्त करेंगे; दूसरी ओर बुद्धिमान मनुष्य इस बात पर खेद प्रकट करेंगे कि हमारा संघ पहले स्थापित नहीं किया जा सका। इसलिए वर्तमान समय ही "संघ" स्थापित करने का वास्तविक समय है। शैशवकाल की घनिष्ठता एवं आपत्तिकाल की मित्रता सर्वाधिक चिरस्थायी और अविकल होती है। हमारी वर्तमान एकता में ये दोनों विशेषताएँ हैं। हम अल्पवयस्क हैं और आपत्ति में हैं। किन्तु हमारी एकता ने आपत्तियों को सह लिया है और वह एक ऐसे स्मरणीय नवयुग का आरम्भ कर रही हैं, जिसमें भावी पीढ़ियाँ गौरव प्राप्त करेंगी।

वर्तमान समय वह अपूर्व अवसर है, जो राष्ट्र के जीवन में केवल एक बार आता है; और वह है निजी सरकार बनाने का अवसर। कई राष्ट्रों ने इस अवसर को निकल जाने दिया है। परिणाम यह हुआ कि स्वयं विधान बनाने के बदले, वे अपने विजेताओं के द्वारा बनाये गये विधान को स्वीकार करने के लिए विवश किये गये। उन देशों में पहले राजा होता है और तब सरकार का स्वरूप बनता है, किन्तु होना यह चाहिए कि सरकार के अधिकार एवं रूप-विषयक शासन-पत्र पहले तैयार किया जाय और उसके उपरांत उसके अनुसार कार्य करने वाले व्यक्ति नियुक्त किये जाएँ। किन्तु दूसरे राष्ट्रों की भूलों से हम शिक्षा लें, और उचित समय पर अपनी सरकार के निर्माण-कार्य को आरंभ करने में वर्तमान अवसर का पूर्ण उपयोग करें।

विजयी विलियम (William the Conqueror) ने जब इंगलैण्ड को

अपने आधीन किया, तो उसने तलवार के बल पर शासन किया, और जब तक हम यह स्वीकार न करेंगे कि अमेरिका में शासन-सूत्र अधिकारपूर्वक एवं वैध रूप से ही ग्रहण किया जा सकता है, तब तक हमें इस बात का बराबर डर बना रहेगा कि कहीं कोई भाग्यशाली लुटेरा हमारे साथ भी, उसी प्रकार का व्यवहार न कर बैठे। उस स्थिति में हमारी स्वतंत्रता कहाँ होगी और हमारी सम्पत्ति का क्या होगा ?

धर्म का जहाँ तक सम्बन्ध है, मेरा मत है कि अन्तःकरण से धर्म को स्वीकार करने वाले सभी लोगो की रक्षा करना सरकार का अनिवार्य कर्तव्य है। जहाँ तक मैं समझता हूँ, इसके अतिरिक्त धर्म के प्रति सरकार का और कोई कर्तव्य नहीं है। यदि मनुष्य अपनी आत्मा की संकीर्णता को त्याग दे, यदि वह सिद्धांतों के उस स्वार्थ को छोड़ दे जिसे सभी धर्म-संस्थाओं के अनुदार मनुष्य नहीं छोड़ पाते, तो उसी क्षण धर्म-विषयक सभी प्रकार के डर से उसकी मुक्ति हो जाय। शंका क्षुद्रात्माओं की सहचरी और अच्छे समाज का विनाश करने वाली है। मैं स्वयं अन्तःकरण से पूर्ण विश्वास करता हूँ कि सर्वशक्तिमान की यह इच्छा है कि हमारे बीच नाना प्रकार के धार्मिक मत प्रचलित रहें। इसके कारण हमारी क्रिश्चियन दया के लिए व्यापक क्षेत्र प्रस्तुत है। यदि हम सबकी विचार-पद्धति एक होती तो हमारी धार्मिक प्रकृति में परीक्षण-तत्व का अभाव होता। इस उदार सिद्धांत के अनुसार मैं मानता हूँ कि सभी मनुष्य एक ही परिवार के हैं, उनके भेद केवल नाम के हैं।

राष्ट्रीय शासन-पत्र के औचित्य के विषय में कुछ विचार व्यक्त किये जा चुके हैं। इस स्थल पर मैं इस विषय पर पुनः चर्चा करने की स्वतंत्रता ले रहा हूँ। मेरा मत है कि शासन-पत्र एक ऐसा दिव्य बंधन है जिसमें धर्म, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा साम्पत्तिक अधिकारों की रक्षा के लिए संपूर्ण राष्ट्र बँधता है। दृढ़ समझौता और सच्चाई के व्यवहार से मैत्री चिरस्थायिनी होती है।

मैंने अब तक अधिक और समान प्रतिनिधित्व की आवश्यकता की चर्चा की है, और राजनैतिक विषयों में सर्वाधिक ध्यान देने योग्य विषय भी यही है। निर्वाचकों अथवा प्रतिनिधियों की अल्प संख्या भयावह है। किन्तु यदि प्रतिनिधियों की संख्या केवल अल्प ही नहीं, वरन असमान भी हो तो भय और बढ़ जाता है। एक उदाहरण लीजिए, पेन्सिलवेनिया के सभा-भवन में, जिस समय

'एशोशिएटर्स पेटिशन' प्रस्तुत किया गया, उस समय केवल अट्ठाईस सदस्य उपस्थित थे। 'बक्स काउन्टी' के सभी सदस्यों ने, जिनकी संख्या आठ थी, इसके विपक्ष में मत दिया। यदि 'चेस्टर' के सातों सदस्य इसी मार्ग का अनुसरण करते तो सारा प्रान्त केवल दो काउण्टियों से ही शासित हुआ होता, और यह भय बराबर बना हुआ है। अपनी गत बैठक में उस सभा ने प्रान्त के प्रतिनिधियों के ऊपर अनुचित अधिकार प्राप्त करने का जो न्याय-विरुद्ध कार्य किया है, उसके कारण सामान्य जनता को, अपने हाथ के अधिकार सौंपते समय सजग हो जाना चाहिए। प्रतिनिधियों के लिए कुछ आदेशों की सूची तैयार की गयी। थोड़े-से व्यक्तियों के अनुमोदन करने पर सभा-भवन में उस पर विचार किया गया और संपूर्ण उपनिवेश के नाम पर उसे स्वीकार कर लिया गया। किन्तु यदि उपनिवेश के लोगों को यह पता होता कि किस बुरी भावना से उस सभा ने कुछ आवश्यक एवं सार्वजनिक कार्यों को आरम्भ किया, तो उसी क्षण वे उन सदस्यों को विश्वास योग्य न समझने में थोड़ा भी संकोच न करते।

तात्कालिक आवश्यकताएँ कई चीज़ों को सुविधाजनक बना देती हैं, किन्तु उनका निरन्तर बना रहना अत्याचार हो जाता है। किसी चीज का किसी अवसर पर उपयुक्त होना एक बात है और उसका सदा के लिए ठीक होना दूसरी बात है। जब अमेरिका की आपत्तियों पर विचार-विमर्श आवश्यक हुआ, तो उस काम के लिए विभिन्न प्रान्तीय-सभाओं से व्यक्तियों को नियुक्त करने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय प्रस्तुत न था और न उचित ही। उन व्यक्तियों ने जिस बुद्धिमानी से कार्य पूरा किया है, उसने इस देश को विनष्ट होने से बचा लिया है। किन्तु यह प्रायः निश्चित है कि कांग्रेस के बिना हमारा काम नहीं चलेगा। अतः सुव्यवस्था का प्रत्येक हितैषी इस बात को स्वीकार करेगा कि कांग्रेस के सदस्यों की निर्वाचन-पद्धति विचारणीय है। मानव-जाति का अध्ययन करने वालों से मैं पूछता हूँ कि क्या प्रतिनिधित्व और निर्वाचन का अधिकार एक और उसी संस्था के लिए बहुत बड़ा अधिकार नहीं है? जब हम आगामी पीढ़ियों के लिए योजना बना रहे हैं, तो हमें स्मरण रखना चाहिए कि सदाचार पैतृक सम्पत्ति नहीं है।

अपने शत्रुओं से हम, प्रायः सर्वोत्तम सिद्धांत प्राप्त करते हैं; और, प्रायः उनकी भूलों पर विचार करके आश्चर्य करते हैं। लार्ड 'कार्नवाल' ने न्यूयॉर्क-

सभा की प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया ; क्योंकि उसके अनुसार उस सभा में केवल छब्बीस सदस्य थे। उन्होंने यह तर्क प्रस्तुत किया कि सदस्यों की यह संख्या इतनी अल्प है कि वह संपूर्ण का वास्तविक प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती। उसकी इस अनिच्छापूर्वक की गयी सच्चाई के लिए हम उसे धन्यवाद देते हैं।

कुछ लोगों को चाहे विचित्र लगे अथवा इस प्रकार से सोचने के लिए चाहे कुछ लोगों की अत्यन्त अनिच्छा हो, किन्तु यह सिद्ध करने के लिए कि स्वतन्त्रता की स्पष्ट और निश्चित घोषणा के अतिरिक्त अन्य कोई योजना हमारे कार्यों को अत्यधिक शीघ्रता से पूरा नहीं कर सकती, कतिपय ठोस तथा प्रभावशाली तर्क दिये जा सकते है जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं।

राष्ट्रों की यह सामान्य रीति है कि जब संसार की किन्हीं दो शक्तियों के बीच युद्ध छिड़ जाता है तो निष्पक्ष देशों में से कुछ राष्ट्र मध्यस्थ के रूप में सामने आते हैं, और शान्ति-स्थापना के निमित्त भूमिका निर्मित करते हैं। किन्तु जब तक अमेरिका ब्रिटेन की प्रजा है, तब तक कोई भी शक्ति मध्यस्थ होना स्वीकार न करेगी, चाहे उसकी प्रकृति अधिक उदार ही क्यों न हो।

यह समझना तर्क-विरुद्ध है कि फ्रांस और स्पेन हमें किसी प्रकार की सहायता प्रदान करेंगे, यदि हम उस सहायता द्वारा ब्रिटेन और अमेरिका के बीच पड़ी खाई को पाट कर उनके सम्बन्धों को दृढ़ करना चाहते हैं; क्योंकि उसके परिणामस्वरूप उन देशों की क्षति होगी।

जब तक हम अपने को ब्रिटेन की प्रजा मानते हैं, तब तक विदेशी राष्ट्रों की दृष्टि में हम राजद्रोही माने ही जायेंगे। उनकी शान्ति के लिए हमारा दृष्टान्त भयानक होगा; क्योंकि इसी प्रकार उनकी प्रजा भी विद्रोह कर सकती है। हम इस समस्या को सुलझा सकते हैं, किन्तु दासता और राजद्रोह दोनों का गठबन्धन करने का विचार सामान्य बुद्धि वालों के लिए अत्यन्त गूढ़ है।

एक प्रकाशित घोषणा-पत्र विदेशों में भेजकर हम यह स्पष्ट कर दें कि हमने कितनी आपत्तियाँ झेलीं तथा उससे छुटकारा पाने के लिए हमारे सभी संभव शान्त उपाय व्यर्थ सिद्ध हुए। अस्तु, ब्रिटिश साम्राज्य की निर्दयता के अन्तर्गत सुरक्षापूर्वक तथा आनन्द के साथ रहने में असमर्थ होने के कारण हम उसके सभी सम्बन्धों को तोड़ने के लिए विवश हैं। किन्तु, हम विश्व के अन्य सभी राष्ट्रों के साथ शान्तिपूर्वक रहेंगे और उनके साथ व्यापार सम्बन्ध स्थापित

करने को इच्छुक हैं। एक जहाज भर प्रार्थना-पत्र इंगलैण्ड भेजने की अपेक्षा, इस प्रकार के प्रयत्न से इस महाद्वीप का अधिक हित होगा।

ब्रिटेन की प्रजा के रूप में बाहर न हमारा स्वागत होगा और न हमारी बात सुनी जायगी। प्रत्येक देश की सरकार का व्यवहार हमारे विरुद्ध है और तब तक विरुद्ध रहेगा, जब तक स्वतंत्र होकर हम लोग अन्य राष्ट्रों की पंक्ति में अपना स्थान न बना लें।

आरम्भ में ये कार्यवाहियाँ बहुत विचित्र और कठिन प्रतीत होंगी, किन्तु अब तक हमने जितने कार्य किये है उन सबके समान ये भी कुछ ही दिनों के उपरान्त सरल और अनुकूल सिद्ध होंगी। यह भी सत्य है कि जब तक स्वतन्त्रता की घोषणा नहीं की जाती है, तब तक यह महाद्वीप एक ऐसे व्यक्ति के समान अनुभव करेगा जो किसी अप्रिय कार्य को प्रतिदिन टालता चलता है और यह समझता भी है कि इसे कर डालना चाहिए, जो उस कार्य को आरम्भ करना नहीं चाहता, फिर भी उसे कर डालने की आवश्यकता को निरन्तर महसूस करता रहता है।

"परिशिष्ट"

इस पत्रिका के प्रथम संस्करण के प्रकाशन के बाद या यों कहिए कि उसी दिन, इस नगर (फिलाडेलफिया) में राजा का व्याख्यान भी प्रचारित हुआ। मेरा विश्वास है कि यदि किसी सिद्ध या भविष्य-वक्ता से पूछकर इस पत्रिका का प्रकाशन किया गया होता तो भी कदाचित् वह इतने उपयुक्त तथा आवश्यक अवसर पर न हो पाता। एक के निर्दय विचार दूसरे के सिद्धान्तों का अनुसरण करने की आवश्यकता व्यक्त कर रहे थे। मनुष्यों ने प्रतिक्रिया के रूप में से पढ़ा, और राजा के व्याख्यान ने लोगों को आतंकित करने के बदले स्वतन्त्रता के शौर्यपूर्ण सिद्धान्तों के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया।

उत्सव और मौन का चाहे जो उद्देश्य हो, किन्तु उनके द्वारा किसी नीचता-पूर्ण कृति को यदि अल्पतम मात्रा में भी अनुमोदन प्राप्त होता है, तो उनकी प्रवृत्ति घातक होती है। यदि यह सिद्धान्त ठीक है तो, क्योंकि, राजा का

व्याख्यान पूर्ण नीचता से भरा हुआ है, अतः कांग्रेस तथा जनता दोनों के द्वारा उसका तिरस्कार होना चाहिए। तथापि, किसी देश की आन्तरिक शान्ति उसके राष्ट्रीय चरित्र की पवित्रता पर निर्भर है। इसलिए प्रायः यही अच्छा होता है कि कई बार हम केवल घृणा प्रकट करके मौन रह जायं न कि घृणा ऐसी नवीन पद्धति अपनावें, जो हमारी उस शान्ति और सुरक्षा के संरक्षक (राष्ट्रीय चरित्र) में थोड़ा भी परिवर्तन ला दे।

प्रधानतः इसी विवेकपूर्ण मृदुता के कारण राजा का व्याख्यान तुरंत ही जनता का कोप-भाजन नहीं हुआ; और वह व्याख्यान, यदि उसे व्याख्यान कहा जाय तो, है क्या? वह मनुष्य-जाति के अस्तित्व, सामान्य हित तथा सत्य की धृष्टता एवं स्वेच्छाचारपूर्वक की गयी निन्दा है। वह अत्याचारियों के अहंकार को मानव-बलि चढ़ाने की औपचारिक पद्धति है। किन्तु मानवता की सामान्य हत्या करना राजाओं के असामान्य अधिकारों और महत्वों में से एक है। क्योंकि, जिस प्रकार प्रकृति उन्हें नहीं जानती, उसी प्रकार वे भी उसे नहीं जानते; और यद्यपि वे हमारी ही जाति के प्राणी हैं, तथापि वे हमें नहीं जानते। वे अपने बनाने वालों के देवता बन बैठे हैं। इस व्याख्यान में एक गुण भी है और वह यह है कि इसके द्वारा धोखे की सम्भावना नहीं है। इसमें पशुता और अत्याचार का स्पष्ट प्रदर्शन है। इससे हमें किसी प्रकार की क्षति नहीं है। इसे पढ़ते समय इसकी प्रत्येक पंक्ति हमें यह मानने को विवश करती है कि ब्रिटेन के राजा की अपेक्षा जंगलों में शिकार करनेवाले नंगे तथा अशिक्षित लोग कम असभ्य हैं।

"अमेरिका के निवासियों के प्रति इंगलैण्ड की जनता का निवेदन" शीर्षक-वाले अपने प्रसिद्ध कष्टप्रद तथा कपटपूर्ण लेख में सर जॉन डलरिम्पल (Dal-rymple) ने, कदाचित् इस व्यर्थ मान्यता के आधार पर कि यहाँ की जनता राजा के आडम्बरपूर्ण वर्णन से आतंकित हो जायगी, उस व्याख्यान का वास्त-विक स्वरूप स्पष्ट कर दिया है जिसकी चर्चा ऊपर की गयी है। लेखक के लिए यह कार्य वास्तव में मूर्खतापूर्ण था। उस लेखक ने लिखा है—"किन्तु यदि आप ऐसे शासन के प्रति सम्मान-प्रदर्शन करना चाहते हैं, जिसके प्रति हमें कोई शिका-यत नहीं है (यहाँ लेखक का तात्पर्य 'स्टैम्प एक्ट' के भंग के समय 'मार्क्विस आफ राकिंघम' के शासन से है), आप लोगों के लिए यह अशोभनीय है कि आप उस राजा के प्रति उसी प्रकार का सम्मान न प्रदर्शित करें, जिसकी स्वीकृति

के कारण ही उन लोगों को कुछ भी करने की आज्ञा मिली थी।" स्पष्ट रूप से यह टोरियों की राज-भक्ति है, यह निरावरण मूर्तिपूजा है। जो ऐसे सिद्धांत को शान्तिपूर्वक सुनकर पचा सकता है उसकी विवेक-शक्ति नष्ट हो चुकी है, वह मनुष्यत्व से गिरा हुआ है। यह समझना चाहिए कि उसने न केवल मानव की उचित प्रतिष्ठा का त्याग किया है, वरन् वह पशुओं की श्रेणी से भी नीचे गिरा हुआ है और विश्व में कीड़ों-मकोड़ों के समान घृणित रूप से जीवन-यापन कर रहा है।

अब इस बात का कोई महत्व नहीं है कि इंगलैण्ड का राजा क्या कहता है अथवा क्या करता है। प्रत्येक नैतिक मानवीय सम्बन्ध को उसने दुष्टता के साथ तोड़ दिया है। प्रकृति एवं अन्तःकरण को उसने पैरों तले कुचल डाला है। अपनी धृष्टता तथा निर्दयता की स्थिर एवं सांविधानिक प्रवृत्ति के कारण वह सार्वलौकिक घृणा का पात्र बन गया है। अब अमेरिका को अपना प्रबन्ध कर लेना चाहिए। उसका परिवार बहुत विशाल और तरुण है। जो शक्ति मनुष्य-जाति और क्रिश्चियन धर्म के लिए अभिशाप हो गयी है, उसका समर्थन करने के निमित्त अपनी सम्पत्ति उसे देने की अपेक्षा अपने उस परिवार की देख-भाल करना अमेरिका का कर्तव्य है। राष्ट्र के आचरण की देख-भाल करना जिनका काम है, जो जनता की स्वतन्त्रता के घनिष्ठतम संरक्षक हैं, वे यदि चाहते हैं कि उनका देश यूरोप के भ्रष्टाचार से दूषित न हो तो उन्हें एकान्त में विच्छेद की इच्छा करनी चाहिए। किन्तु इस नैतिक अंश को वैयक्तिक विचार के लिए छोड़कर मैं प्रधान रूप से निम्नांकित विषयों पर अपना मत व्यक्त करूँगा।

पहला—ब्रिटेन से सम्बन्ध तोड़ लेने में अमेरिका का हित है।

दूसरा—सर्वाधिक सरल और व्यावहारिक कौन है; समझौता या स्वतंत्रता ?

पहली बात के समर्थन में यदि मैंने उचित समझा तो इस महाद्वीप के सर्वाधिक अनुभवी और योग्य व्यक्तियों के मत व्यक्त कर सकूँगा। इस विषय पर उनके विचार अब तक सामान्य रूप से प्रकाश में नहीं आ सके हैं। वास्तव में स्थिति स्वयं स्पष्ट है। क्योंकि यदि कोई राष्ट्र विदेशी आधीनता की स्थिति में है, उसका व्यापार सीमित है और उसकी विधायिनी शक्ति (Legislative Power) संकुचित तथा बंधन में जकड़ी हुई है, तो उसे भौतिक महत्व प्राप्त

न हो सकेगा। अभी तक ऐश्वर्य से अमेरिका का परिचय न हो सका; और यद्यपि अब तक उसने जो प्रगति की है वह अन्य राष्ट्रों के इतिहास में अद्वितीय है, किन्तु यदि अमेरिका को विधान बनाने का अधिकार प्राप्त रहा होता तो उस समय इसकी जो प्रगति हुई होती, उसके आगे वर्तमान प्रगति बहुत कम है। इस समय इंगलैण्ड गर्वपूर्वक जिसकी प्राप्ति का लोभ कर रहा है, यदि वह उसे प्राप्त हो जाय तो भी उसका कोई हित नहीं होगा। दूसरी ओर यह महाद्वीप एक ऐसा कार्य करने में संकोच कर रहा है, जिसकी उपेक्षा से उसका पूर्ण विनाश होगा। अमेरिका को जीत लेने से नहीं, वरन् उसके व्यापार से इंगलैण्ड को लाभ होगा, और वह उस दशा में भी होता रहेगा, जब कि अमेरिका और इंगलैण्ड दोनों एक दूसरे से स्वतन्त्र रहेंगे। क्योंकि, कई वस्तुओं के लिए दोनों में से कोई भी अन्य किसी अपेक्षाकृत अच्छे बाजार में नहीं जा सकता। इस देश की स्वतन्त्रता इस समय विरोध का प्रधान और एकमात्र उचित विषय है, जो प्रतिदिन आवश्यकता द्वारा आविष्कृत सत्यों के समान स्पष्ट और बलवत्तर होता रहेगा; क्योंकि एक-न-एक दिन इस देश को स्वतंत्र होना है और जितनी देर हो रही है, कार्य उतना ही कठिन होता जा रहा है।

जो व्यक्ति बिना सोचे-समझे बोला करते हैं, उनकी भूलों की चर्चा करके, एकान्त में और जनता के बीच, मैंने प्रायः अपना मनोरंजन किया है। यों तो सुनने में बहुत कुछ आता है, किन्तु एक बात जो अधिक सर्वसामान्य प्रतीत होती है उसकी चर्चा मैं यहाँ कर देना चाहता हूँ। कहा जाता है कि यदि यह सम्बन्ध-विच्छेद इस समय न होकर आज से चालीस-पचास वर्षों बाद हुआ होता, तो महाद्वीप अपनी आधीनता की बेड़ियाँ तोड़ फेंकने में अधिक समर्थ होता। मेरा कहना है कि गत युद्ध में प्राप्त अनुभव के आधार पर इस समय हमें सैनिक योग्यता प्राप्त है; किन्तु चालीस-पचास वर्षों के बाद वह पूर्णरूप से समाप्त हो जायगी। उस समय तक इस देश में न तो एक सेनापति रह जायगा, न कोई सैनिक-पदाधिकारी; और हम या हमारे उत्तराधिकारी सैनिक-कार्यों से नितान्त अनभिज्ञ रहेंगे। यदि इस तथ्य पर पूरा ध्यान दिया जाय तो यह प्रमाणित हो जायगा कि वर्तमान समय ही सर्वश्रेष्ठ अवसर है। चाहें तो हम इस प्रकार भी तर्क प्रस्तुत कर सकते हैं कि गत युद्ध के अन्त में हमें अनुभव था, किन्तु संख्या में हम अल्प थे; और चालीस-पचास वर्षों बाद हम संख्या में अधिक और अनुभव

अतिरिक्त अन्य कोई शासन-शक्ति नहीं है। हम सब ऐसे अपूर्व भावोद्रेक के द्वारा सम्बद्ध है, जो परिवर्तित हो सकता है और जिसे नष्ट करने के लिए हमारा प्रत्येक गुप्त शत्रु कार्य-रत है। हमारी वर्तमान स्थिति में व्यवस्था बिना किसी नियम के है, बुद्धि बिना किसी योजना के है, संविधान बिना नाम का है, और सर्वाधिक विचित्र बात यह है कि आधीनता को अस्वीकार करने की पूर्ण स्वतंत्रता है। यह स्थिति अपने ढंग की एक है। इसके पूर्व ऐसी स्थिति कभी नहीं रही। कहा नहीं जा सकता कि क्या होगा? देश की वर्तमान शिथिल व्यवस्था में किसी व्यक्ति की सम्पत्ति सुरक्षित नहीं है। जनता का मस्तिष्क लक्ष्य-विहीन है, और अपने सम्मुख कोई निश्चित लक्ष्य न पाकर वह उस मार्ग का अनुसरण करती है जो उसका बुद्धि-विलास अथवा मत उसके सम्मुख प्रस्तुत करता है। अपराध अथवा राजद्रोह जैसे कुछ रह ही नहीं गया। इसलिए प्रत्येक मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने में स्वतन्त्र है। यदि टोरियों को यह पता होता कि देश के नियमानुसार उनके उस व्यवहार का दण्ड है मृत्यु, तो कदाचित् उन्हें इतने आक्रमणात्मक ढंग से एकत्रित होने का साहस न हुआ होता। युद्ध में बन्दी बनाये गये इंगलैण्ड के सैनिकों तथा अमेरिका के निवासियों के बीच विभाजक-रेखा होनी चाहिए। एक बन्दी है और दूसरा विश्वासघातक। दण्डस्वरूप एक की स्वतन्त्रता जब्त होनी चाहिए और दूसरे का सर काट लेना चाहिए।

बुद्धि के होते हुए भी हमारी कार्य-पद्धति में एक ऐसी स्पष्ट दुर्बलता है जो मत-भेद को प्रोत्साहन देती है। देश का संगठन अधिक शिथिल है। यदि समय रहते कुछ किया नहीं गया तो हमारी स्थिति इस प्रकार की हो जायगी कि उस समय न तो समझौता व्यावहारिक होगा और न स्वतन्त्रता ही। राजा और उसके अयोग्य अनुचर महाद्वीप को विभाजित करने के लिए प्रयत्नशील हैं, और हमारे बीच ऐसे मुद्रकों (Printers) का अभाव नहीं है जो सफ़ेद झूठ का प्रचार करने में व्यस्त रहेंगे। कुछ मास पूर्व न्यूयार्क के दो पत्रों में प्रकाशित होने वाला वह कलात्मक एवं दम्भपूर्ण पत्र इस बात का प्रमाण है कि इस देश में ऐसे व्यक्ति हैं, जिनमें या तो विवेक का अभाव है या सचाई का।

समझौते की बात करना सरल है; किन्तु क्या ऐसे व्यक्ति गम्भीरतापूर्वक

विचार करते हैं कि यह कार्य कितना कठिन है। यदि इसी विषय पर देश में मतवैभिन्य उत्पन्न हो गया तो ? क्या ऐसा कहते समय वे अपना तथा उन सभी स्तरों के मनुष्यों का विचार करते हैं जिनकी परिस्थितियों का विचार करना नितान्त आवश्यक है। क्या वे उन पीड़ितों की दुर्दशा का अनुभव करते हैं, जिनका सर्वस्व स्वाहा हो चुका है; अथवा क्या वे उन सैनिकों के दुःखों को अपना दुःख समझते हैं, जिन्होंने देश की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए अपना सब कुछ त्याग दिया है ? यदि उनका यह अविवेकपूर्ण निर्णय मात्र व्यक्तिगत परिस्थिति के अनुसार है, तो हम निश्चित रूप से उसे अनुचित कह सकते हैं।

कुछ लोगों का कहना है कि हमें सन् १७६३ ई० की स्थिति में रख दिया जाए। इस विषय में मुझे यह कहना है कि इस प्रार्थना को पूरा करना ब्रिटेन के वश की बात नहीं है और न तो वह वैसा करना चाहेगा। मान लिया कि इस प्रकार का कोई समझौता हो गया, तो किस प्रकार इस भ्रष्ट एवं अविश्वासपूर्ण सरकार के द्वारा उस समझौते का निर्वाह कराया जायगा ? दूसरी संसद् नहीं, वर्तमान संसद् भी बाद में उस समझौते को भंग कर सकती है और कारणस्वरूप यह तर्क प्रस्तुत कर सकती है कि यह समझौता हिंसापूर्वक प्राप्त किया गया था एवं अविवेकपूर्वक स्वीकार किया गया था। मैं पूछता हूँ कि उस दशा में हम क्या करेंगे ? राष्ट्रों के विरुद्ध किसी न्यायालय में मुकदमा नहीं चलाया जाता। वहाँ तोप और तलवार के द्वारा निर्णय होता है। सन् १७६३ ई० की स्थिति में होने के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं है कि उस समय के नियमों को ही रखा जाय, वरन् हमारी परिस्थितियाँ भी वैसी ही होनी चाहिए। हमारी व्यक्तिगत क्षति की पूर्ति की जाय; हमारे उस सार्वजनिक ऋणों को चुकता किया जाय जिसे सुरक्षा के लिए हमने लिया था; अन्यथा उस स्पृहणीय समय में हमारी जो स्थिति थी, हम उससे अत्यधिक हीन दशा को प्राप्त होंगे। यदि एक वर्ष पूर्व इस प्रकार की प्रार्थना सुनी गयी होती तो सारे महाद्वीप का हृदय जीत लिया गया होता, किन्तु अब समय निकल चुका है।

एक बात और है। केवल अर्थ-विषयक किसी नियम को भंग करने के लिए अस्त्र उठाना दैवी नियम के अनुसार उतना ही अनुचित, और मानवीय अनुभू-

तियों के उतने ही विपरीत है; जितना उस नियम को स्वीकार कराने के लिए अस्त्र उठाना। दोनों दशाओं में साध्य, साधन का औचित्य सिद्ध नहीं करता; क्योंकि इन तुच्छ बातों के लिए मनुष्यों का बलिदान उपयुक्त नहीं है। हम पर हिंसा की गयी है और भविष्य में हिंसा करने की धमकी दी गयी है। सशस्त्र सेना के द्वारा हमारी सम्पत्ति नष्ट कर दी गयी है, और हमारे देश पर तोप और तलवार के द्वारा आक्रमण किया गया है। इन दुष्कर्मों के उत्तर में अस्त्र उठाना न्याय-संगत है, और जिस क्षण इस प्रकार की सशस्त्र सुरक्षा-पद्धति आवश्यक हुई, उसी समय ब्रिटेन की आधीनता समाप्त हो जानी चाहिए थी। जिस समय, ब्रिटेन के विरुद्ध हमारी बन्दूक से पहली गोली निकली, उस समय से अमेरिका की स्वाधीनता का आरम्भ मानना चाहिए।

निम्नांकित समयोचित और अच्छे उद्देश्य से प्रेरित संकेतों के साथ-साथ मैं अब इस विषय की चर्चा समाप्त करूँगा। हमें यह सोचना चाहिए कि भविष्य में स्वतंत्रता-प्राप्ति के तीन भिन्न-भिन्न साधन हैं। उनमें से एक-न-एक निश्चित रूप से अमेरिका के भाग्य में है। वे तीनों साधन इस प्रकार हैं:—जनता की कांग्रेस द्वारा वैध मांग, सैनिक-शक्ति और अव्यवस्थित जन-समुदाय द्वारा आन्दोलन। यह सर्वथा संभव नहीं है कि हमारे सैनिक नागरिक ही हों और अव्यवस्थित जन-समुदाय बुद्धिमान व्यक्तियों का समाज हो। जैसा कि मैंने पहले कहा है, सदाचार पैतृक नहीं होते और न तो वे शाश्वत हैं। यदि उपर्युक्त साधनों में से प्रथम के द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त की जाय तो पृथ्वी पर सर्वोत्तम और पवित्रतम संविधान बनाने के लिए उपयुक्त सभी अवसर और प्रोत्साहन हमें प्राप्त हैं। सृष्टि का पुनर्विधान करना हमारे वश की बात है। सृष्टि के आरम्भ से आज तक कभी भी ऐसी स्थिति उत्पन्न नहीं हुई थी। एक नवीन संसार का उन्मेष सन्निकट है और सम्भवतः सम्पूर्ण यूरोप की जनसंख्या के बराबर संख्या वाला मनुष्यों का एक समुदाय कुछ महीनों की घटनाओं के द्वारा अपना स्वातन्त्र्य-अधिकार प्राप्त करेगा। इस दृष्टिकोण के साथ जब मैं विचार करता हूँ, तो नवीन सृष्टि के निर्माण-कार्य के समक्ष कुछ दुर्बल या स्वार्थी मनुष्यों के तुच्छ विरोध मुझे अत्यधिक हास्यास्पद प्रतीत होते हैं।

यदि हम वर्तमान अनुकूल एवं आकर्षक काल की उपेक्षा करेंगे और भविष्य में किसी अन्य साधन के द्वारा स्वतन्त्रता की प्राप्ति करेंगे, तो उसके परिणाम का

उत्तरदायित्व हमारे सर पर होगा अथवा वास्तव में उनके सर पर होगा जिनकी संकीर्णता और पक्षपातपूर्ण आत्माएँ, स्वभावत: हमारे प्रयत्न का विरोध कर रही हैं। स्वतन्त्रता के समर्थन में ऐसे तर्क प्रस्तुत किये जा सकते हैं जिन्हें सार्वजनिक रूप में कहा नहीं जाना चाहिए, वरन् व्यक्तिगत रूप से जिन पर विचार करना चाहिए। इस समय हमें इस विवाद में नहीं पड़ना है कि हमें स्वतन्त्र होना चाहिए या नहीं; किन्तु दृढ़, सुरक्षित और सम्मानपूर्ण आधार पर स्वतंत्रता को प्राप्त करने की चिन्ता करनी चाहिए और इस बात के लिए बेचैन रहना चाहिए कि कार्य अभी पूरा नहीं हो पाया। प्रत्येक दिवस उसकी आवश्यकता को स्पष्ट करता जा रहा है। यहाँ तक कि, टोरियों (यदि हमारे बीच ऐसे व्यक्ति हैं) को भी इस कार्य को पूरा करने में सबसे अधिक इच्छुक होना चाहिए; क्योंकि जिस प्रकार समितियों की नियुक्ति ने जनता के क्रोध से उनकी रक्षा की, उसी प्रकार सुव्यवस्थित सरकार ही उनकी सतत सुरक्षा का साधन होगी। इसलिए यदि 'ह्निग' होने के लिए पर्याप्त सदाचार उनमें नहीं है, तो कम से कम स्वतन्त्रता की इच्छा करने की बुद्धिमानी तो होनी ही चाहिए।

स्वतंत्रता ही हमें बाँध कर एकता में रख सकती है। उसके बाद हमें अपना लक्ष्य दिखाई पड़ेगा और हमारे कान षड़यन्त्रकारी तथा निर्दय शत्रु की योजनाओं के प्रति वैध रूप से बन्द रहेंगे। तब हम भी ब्रिटेन के साथ व्यवहार करने के लिए उचित स्तर पर रहेंगे। क्योंकि यह मान लेना तर्कसंगत है कि समझौते के समय जिन्हें विद्रोही प्रजा कहा जाता है उनकी अपेक्षा, शान्ति की, शर्तों को तय करने के लिए स्वतंत्र अमेरिका के निवासियों के साथ व्यवहार करने में ब्रिटिश सरकार के अभिमान को कम ठेस पहुँचेगी। हमारे विलम्ब करने से ब्रिटेन को प्रोत्साहन मिलता है और हमारी मन्द गति केवल युद्ध को बढ़ा रही है। हम लोगों ने, बिना किसी लाभ के, अपनी असुविधाओं को दूर करने के लिए व्यापार को रोक रखा है। अब हमें दूसरे मार्ग का अवलम्बन करना चाहिए, अर्थात् स्वतंत्र रूप से अपनी उन असुविधाओं को हम दूर करें, और फिर व्यापार-सम्बन्ध स्थापित करने का प्रस्ताव करें। इंगलैण्ड के व्यापारी और बुद्धिमान लोग फिर भी हमारा साथ देंगे; क्योंकि शान्ति-हीन युद्ध की अपेक्षा व्यापार-युक्त शान्ति श्रेष्ठ है। यदि यह प्रस्ताव ब्रिटेन को स्वीकृत न हो, तो हमें अन्य राष्ट्रों की ओर मुड़ना चाहिए।

इस पत्रिका के प्रथम संस्करण में प्रकाशित सिद्धांत का किसी ने विरोध नहीं किया है। यह भी इस बात का प्रमाण है कि या तो इस सिद्धांत का विरोध हो नहीं सकता अथवा इसे मानने वालों की संख्या इतनी अधिक है कि इसका विरोध नहीं किया जा सकता। अस्तु, संदेह अथवा शंकापूर्ण कौतूहल के साथ एक दूसरे की ओर निहारने के बदले हम लोगों में से प्रत्येक अपने पड़ोसी के सामने मैत्री का स्नेह-पूर्ण हाथ बढ़ावे, और एक ऐसी स्थिति के निर्माण में संगठित हो जो हमारे पूर्व मत-भेदों को विस्मृति के गर्भ में छिपा दे। ह्विग और टोरी का अन्तर मिट जाय और सुनागरिक, निश्छल एवं दृढ़ मित्र तथा अमेरिका के स्वतन्त्र राष्ट्र एवं मानव के अधिकारों के सच्चरित्र समर्थक के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार के व्यक्ति हमारे बीच न रहें।

अमेरिका का संकट

[१ और १३]

संकट के इन्हीं क्षणों में मानव-आत्मा की परख होती है। अवसरवादी सैनिक और देश-भक्त इस संकट में देश की सेवा से मुख मोड़ लेंगे, किन्तु जो इस समय देश की सेवा करेगा वह जनता के प्रेम तथा धन्यवाद का पात्र होगा। नरक के समान, अत्याचार पर भी विजय पाना सरल नहीं है। फिर भी हमें इस बात की सांत्वना है कि संघर्ष जितना कठिन होता है, विजय उसी मात्रा में गौरवास्पद होती है। हम जिस वस्तु को जितने कम मूल्य में पाते हैं, हमारी दृष्टि में उसका महत्व उतना ही कम होता है। केवल मूल्य अधिक होने से वस्तुओं को वास्तविक गौरव प्राप्त होता है। ईश्वर अपनी वस्तुओं का मूल्य-निर्धारण करना जानता है। वास्तव में यदि स्वतंत्रता जैसी वस्तु का मूल्य अधिक न हो तो यह बड़े आश्चर्य की बात होगी। ब्रिटेन ने घोषणा की है कि उसे केवल कर लगाने का नहीं, वरन् प्रत्येक दशा में हमें बाँधने का पूरा अधिकार है। यदि इस प्रकार से बँध जाना दासता नहीं है, तो मैं कहूँगा कि पृथ्वी पर दासता जैसी कोई वस्तु है ही नहीं। उपर्युक्त घोषणा भी अपवित्र है; क्योंकि इतना असीम अधिकार केवल ईश्वर का हो सकता है।

मैं इस विवाद में नहीं पड़ूँगा कि इस महाद्वीप की स्वतंत्रता अत्यधिक शीघ्र अथवा अत्यधिक विलम्ब से घोषित की गयी। मेरा मत है कि यदि यह कार्य अपेक्षाकृत आठ महीने पूर्व हुआ होता, तो अधिक अच्छा रहा होता। गत शीतकाल का उचित उपयोग हम लोग नहीं कर सके और आधीनता की उस स्थिति में हम कर भी नहीं सकते थे, तथापि हमारी क्षति नहीं हुई है। हौव (Howe) गत मास तक जो कुछ करता रहा है, वह विजय नहीं, वरन् लूट-कार्य है जिसे एक वर्ष पूर्व जर्सीज (Jerseys) की शक्ति समाप्त कर दिए होती। समय एवं हमारे दृढ़ प्रयत्न उसकी क्षति-पूर्ति कर देंगे।

मैं अन्धविश्वासी नहीं हूँ, किन्तु सदा से मेरी यह गुप्त मान्यता रही है कि सर्वशक्तिमान ईश्वर अपने जीवों को सेना द्वारा विनष्ट होने के लिए कदापि नहीं छोड़ेंगे; अथवा उन लोगों को निस्सहाय नहीं रहने देंगे, जिन्होंने सचाई के साथ बारम्बार, बुद्धि द्वारा आविष्कृत प्रत्येक शिष्ट पद्धति के सहारे युद्ध की आपदाओं से बचने का प्रयत्न किया है। साथ ही साथ मैं इतना नास्तिक भी नहीं हूँ कि यह मानूँ कि ईश्वर ने संसार की सरकारों को पूरी छूट दे रखी है और हमें दानवों की क्रूरता सहने को छोड़ रखा है। ब्रिटेन का राजा किस आधार पर ईश्वर से सहायता की प्रार्थना करेगा? अपने पक्ष के समर्थन में वह जो कुछ तर्क या बहाना करेगा, वह तो प्रत्येक साधारण हत्यारा, डाकू अथवा चोर प्रस्तुत किया करता है।

आतंक किसी देश में कभी-कभी इतनी शीघ्रतापूर्वक फैल जाता है कि लोगों को उस पर आश्चर्य होता है। सभी राष्ट्रों और युगों ने आतंक का अनुभव किया है। फ्रांस के चिपटी पेंदी वाली नौकाओं के बेड़े के समाचार पर इंगलैण्ड काँप उठा था। पन्द्रहवीं शताब्दी में, फ्रांस को लूट लेने के बाद भय के कारण इंगलैण्ड की संपूर्ण सेना के प्राण सूख गये और वह पीछे खदेड़ दी गयी। "जोन आफ् आर्क" नाम की स्त्री के सेनापतित्व में सेना की कुछ टुकड़ियों ने यह पराक्रम किया। क्या ही अच्छा होता, यदि ईश्वर किसी 'जर्सी' (Jersey) स्त्री को ऐसी प्रेरणा देता कि वह अपने देशवासियों को उत्तेजित करके लूट एवं अत्याचार से पीड़ित मनुष्यों की रक्षा करती।

कुछ स्थितियों में आतंक से भी लाभ होता है। उसके कारण मस्तिष्क का शीघ्र विकास होता है तथा वह अपेक्षाकृत अधिक दृढ़ता प्राप्त करता है। किन्तु

सबसे बड़ी बात यह है कि आतंक सच्चाई और कपट की कसौटी है, जिसके द्वारा वस्तुओं अथवा मनुष्यों की वास्तविकता का पता चल जाता है। वास्तव में गुप्त विश्वासघातियों पर आतंक का वही प्रभाव पड़ता है, जो एक हत्यारे पर काल्पनिक भूत का। आतंक मनुष्यों के गुप्त विचारों को सब पर प्रकट कर देता है। जिस दिन हौव (Howe) डेलवेयर (Dalaware) नदी के किनारे पहुँचा, उस दिन कितने गुप्त टोरियों ने अपना असली रूप प्रकट किया जिसका परिणाम उन्हें पश्चातापपूर्वक भोगना पड़ेगा।

मैं 'ली' (Lee) के क़िले की सेना के साथ था और उसके साथ-साथ पेंसिलवेनिया की सीमा तक गया था। अतः मैं बहुत-सी परिस्थितियों से उनकी अपेक्षा अधिक परिचित हूँ, जो दूर थे और जिन्हें उन परिस्थितियों का कम ज्ञान है। वहाँ पर हमारी स्थिति बहुत संकटपूर्ण थी। हम नार्थ (North) नदी और हैकेनसैक (Hackensack) नगर के बीच वाले संकरे भू-भाग में थे। हमारी शक्ति थोड़ी थी, यहाँ तक कि वह 'हौव' (Howe) की शक्ति का चौथा भाग भी नहीं थी। दुर्ग रक्षक सेना की सहायता के लिए हम लोगों के पास कोई सेना नहीं थी। हमारी युद्ध-सामग्रियाँ इस शंका से स्थानांतरित कर दी गयी थीं कि कदाचित् 'हौव' (Howe) 'जर्सी' में प्रवेश करने का प्रयत्न करे, और उस स्थिति में यह क़िला हमारे किसी काम का न रहे। क्योंकि प्रत्येक विचारवान व्यक्ति, चाहे वह सेना में रह चुका हो या नहीं, इतना सोच सकता है कि ऐसे साधारण दुर्ग केवल अस्थायी उपयोग के लिए होते हैं और जिन वस्तुओं की रक्षा के लिए इनका निर्माण होता है उन्हें हथियाने के लिए जिस समय शत्रु इनकी दिशा में प्रस्थान करता है, उसी समय इनकी उपयोगिता समाप्त हो जाती है। २० नवम्बर के प्रातःकाल उस दुर्ग में यह स्थिति थी। उसी दिन यह सूचना प्राप्त हुई कि दो सौ नौकाओं के साथ शत्रु सात मील की दूरी पर नदी के किनारे उतर पड़ा है। मेजर जनरल ग्रीने ने रक्षक-सेना को तुरन्त तैयार होने का आदेश दिया; और जनरल वाशिंगटन के पास एक दूत भेजा गया। उस समय जनरल वाशिंगटन 'हैकेनसैक' (Hackensack) नगर में थे जो कि हम लोगों के स्थान से, नदी पार करके जाने पर, छः मील दूर था। हैकेनसैक के पुल की रक्षा करना हमारा प्रथम लक्ष्य था। वह पुल हमसे छः मील और शत्रु से तीन मील पर था। जनरल वाशिंगटन लगभग पौन घण्टे

के बाद आ पहुँचे और सेना का नेतृत्व करते हुए पुल तक गये। शत्रुओं ने पुल के लिए हमसे टक्कर लेना ठीक न समझा, और हमारी सेना का अधिकांश भाग पुल के द्वारा तथा कुछ अंश नौका द्वारा नदी को पार कर गया। छकड़ों पर जितना सामान लद सकता था उतना हम लोग ले आये, शेष नष्ट हो गया। उस समय हमारा लक्ष्य था सेना को एक ऐसे स्थान पर पहुँचा देना जहाँ उसे 'जर्सी' या पेन्सिलवेनिया की सेना से सहायता मिल सके। हम लोग चार दिनों तक न्यूयार्क में रहे; दूरस्थित टुकड़ियों को एकत्रित किया गया और हमें जर्सी की सेना का सहयोग भी प्राप्त हुआ। जब हम लोगों को यह सूचना मिली कि शत्रु बढ़े चले आ रहे हैं तो, यद्यपि हमारी शक्ति उनकी शक्ति से कम थी, तथापि हम लोग शत्रु का सामना करने के लिए दो बार आगे बढ़े। मेरे मत में हौव (Howe) ने भूल की। यदि स्टेटन (Staten) द्वीप से वह अपनी सेना के एक भाग को एमब्वाय (Amboy) के मार्ग से आगे बढ़ने का आदेश दिये होता, तो इस प्रकार वह बर्न्सविक (Burnswick) में हमारा सब सामान हथिया लेता, और पेंसिलवेनिया में हमारी प्रगति रोक देता। किन्तु यदि हम नरक की सीमित शक्ति में विश्वास करते हैं तो उसी प्रकार हमें यह भी मानना चाहिए कि उसके कार्यकर्त्ता किसी दैवी नियंत्रण में रहते हैं।

हम लोग 'डेलवेयर' (Delaware) तक किस प्रकार पहुँचे, इसका पूरा विवरण न देकर केवल इतना कह देना मैं पर्याप्त समझता हूँ कि हमारे पदाधिकारी और सैनिक सभी लोगों ने साहस तथा सैनिक-भावना का पूरा परिचय दिया। यद्यपि वे थके-माँदे और पीड़ित थे; उन्हें प्रायः बिना विश्राम तथा भोजन व कपड़े के रहना पड़ा; क्योंकि बहुत दिनों तक पीछे हटने का यह अनिवार्य परिणाम था; फिर भी उन्होंने सब कुछ धैर्यपूर्वक सह लिया। वे केवल यही चाहते थे कि शत्रुओं को पीछे हटाने में देश उनका साथ दे। वाल्टेयर (Voltaire) ने कहा है कि राजा विलियम (King William) का पूर्ण व्यक्तित्व केवल संकट और साहसिक कार्य के क्षणों में प्रकट होता था। जनरल वाशिंगटन के बारे में भी यही कहा जा सकता है। कुछ मस्तिष्कों में इस प्रकार की दृढ़ता होती है कि वे साधारण स्थितियों से प्रभावित नहीं होते, किन्तु यदि वे किसी प्रकार प्रभावित हो जाते हैं तो उनकी प्रचुर सहनशीलता

प्रकट होती है। मैं इस गुण की गणना ईश्वर-प्रदत्त उन सार्वजनिक वरदानों में करता हूँ, जिन्हें हम तुरत नहीं जान पाते। ईश्वर ने वाशिंगटन को इस वरदान के साथ-साथ अबाधित स्वास्थ्य और चिंता में भी विकसित होनेवाला मस्तिष्क प्रदान किया है।

अमेरिका के कार्यों की स्थिति-विषयक सामान्य चर्चा करके मैं इस पत्र को समाप्त करूँगा। उस चर्चा का आरंभ मैं एक प्रश्न से कर रहा हूँ। न्यू इंगलैण्ड के प्रान्तों को शत्रु ने क्यों छोड़ दिया है, और इन बीच के प्रान्तों को युद्ध-क्षेत्र क्यों बना रखा है ? उत्तर सरल है। न्यू इंगलैण्ड टोरियों से पीड़ित नहीं है, जब कि हम पीड़ित हैं। ऐसे व्यक्तियों के विरुद्ध स्वर ऊँचा करते समय मैं सदैव नम्र रहा हूँ, और मैंने उनके संकटों को स्पष्ट रूप से उन्हें समझाने के लिए अगणित तर्क प्रस्तुत किये हैं, किन्तु उनकी मूर्खता अथवा नीचता के कारण एक संसार को नष्ट नहीं होने दिया जायगा। अब वह समय आ गया है जब कि वे या हम अपने विचारों को बदल दें; अन्यथा दो में से एक का विनाश निश्चित है। मैं पूछता हूँ कि टोरी हैं कौन ? यदि वे शस्त्र उठावें तो एक सहस्र टोरियों के विरुद्ध मैं केवल सौ "ह्विगों" को लेकर जाने में तनिक भी भयभीत न हूँगा। प्रत्येक टोरी भीरु होता है; क्योंकि दासता और स्वार्थ पर आधारित भय ही उसे टोरी बनने के लिए विवश करते हैं। इस प्रकार के प्रभाव में रहनेवाला व्यक्ति निर्दय भले हो, किन्तु वह वीर नहीं हो सकता।

किन्तु इसके पूर्व कि हमारे और उनके बीच अमिट विभाजन-रेखा खींच दी जाय, अच्छा यह होगा कि हम परस्पर तर्कपूर्वक विचार-विमर्श कर लें। टोरियों का चरित्र शत्रु के लिए निमंत्रण है। फिर भी उनके बीच, सहस्र में एक व्यक्ति भी इतना साहसी नहीं है कि वह खुले रूप से शत्रु का साथ दे सके। उन लोगों ने 'होव' (Howe) को उसी प्रकार धोखा दिया है, जिस प्रकार उन्होंने अमेरिका के लक्ष्य को क्षति पहुँचायी है। होव (Howe) को आशा है कि वे लोग शस्त्र उठाकर उसका साथ देंगे। जब तक ये टोरी कन्धों पर बन्दूक रखकर उसकी सहायता नहीं करते, तब तक उसके लिए इनके मतों का कोई मूल्य नहीं है ; क्योंकि होव (Howe) सैनिकों को चाहता है, टोरियों को नहीं।

एक बार मैं टोरियों के सिद्धांत पर क्रुद्ध हुआ था और वैसे अवसर पर

प्रत्येक व्यक्ति का क्रुद्ध होना स्वाभाविक है। एक प्रसिद्ध टोरी, जो कि एम्ब्वाय (Amboy) के एक पथिकाश्रम का स्वामी था, आठ या नौ वर्ष के एक अत्यंत सुन्दर लड़के का हाथ पकड़े अपने घर के द्वार पर खड़ा था। स्वतंत्रतापूर्वक अपने विचारों को प्रकट कर लेने के बाद, अन्त में उसने अनुदार पिता के रूप में कहा, 'मुझे अपने जीवन-भर शांति से रह लेने दो।' इस महाद्वीप में एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं है, जो यह विश्वास न करता हो कि एक-न-एक दिन ब्रिटेन से सम्बन्ध-विच्छेद होना है। अस्तु, एक उदार-मना पिता को यह कहना चाहिए था कि यदि संकट आकर ही रहेगा तो मेरे जीवन में ही आ जाये, जिससे मेरी संतान शान्तिपूर्वक रह सके। इस प्रकार का विचार प्रत्येक व्यक्ति को उसके कर्तव्य का बोध करा देने के लिए पर्याप्त है। विश्व का कोई देश अमेरिका के समान भाग्यशाली नहीं है। अमेरिका कलह-कोलाहलपूर्ण विश्व से दूर है। शेष संसार के साथ व्यापार के अतिरिक्त उसे कुछ नहीं करना है। जिस प्रकार मैं यह विश्वास करता हूँ कि ईश्वर सृष्टि का शासन करता है, उसी प्रकार मैं यह भी मानता हूँ कि जब तक अमेरिका विदेशी प्रभुत्व से मुक्त नहीं होता, तब तक उसे आनन्द नहीं प्राप्त हो सकता। स्वतंत्रता-प्राप्ति तक निरंतर युद्ध होते रहेंगे और अन्त में इस महाद्वीप की विजय होगी। क्योंकि स्वतंत्रता की लपटें कुछ समय के लिए शान्त भले हो जायं, उसकी अग्नि कभी भी बुझ नहीं सकती।

अमेरिका में कभी भी शक्ति का अभाव न था, और न है; किन्तु उस शक्ति के उचित प्रयोग का अभाव अवश्य था। बुद्धि एक दिन में प्राप्त नहीं होती और इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि हम कार्यारम्भ में भूल कर बैठते हैं। दया की अधिकता के कारण हम लोग सेना तैयार करना नहीं चाहते थे और सदुद्देश्य से प्रेरित, देश-रक्षक जन-सेना द्वारा अस्थायी सुरक्षा पर ही निर्भर थे। गर्मी के दिनों में हमें जो अनुभव प्राप्त हुआ, उससे हमने बहुत कुछ सीखा है। तो भी, जन-सैनिकों की टोलियों के सम्मिलित प्रयत्न के द्वारा हमने शत्रु की प्रगति को सीमित कर दिया। ईश्वर को धन्यवाद है कि वे टोलियाँ पुनः एकत्रित होने लग गयीं। मैं देश-रक्षक जन-सेना को आकस्मिक प्रयत्न के लिए सब से अच्छी सैनिक-टोली मानता हूँ, किन्तु दीर्घकालीन युद्ध के लिए वह अनुपयुक्त है। सम्भव है कि होव (Howe) इस नगर पर आक्रमण करे। यदि

वह डेलवेयर (Delaware) के इस पार असफल हो जाता है, तो उसका सारा प्रयत्न व्यर्थ हो जायगा। किन्तु यदि वह सफल होता है, तो हमारे लक्ष्य को कोई क्षति नहीं होती। हमारे एक अंश के विरुद्ध उसने अपना सर्वस्व दाँव पर लगा दिया है। मान लिया कि वह सफल होता है, तो परिणाम यह होगा कि महाद्वीप के दोनों छोरों से सेनाएँ उनकी सहायता के लिए चल पड़ेंगी जो इन बीच के प्रदेशों में सताये जा रहे हैं। हौव (Howe) सर्वत्र नहीं जा सकता। मैं हौव (Howe) को टोरियों का सबसे बड़ा शत्रु मानता हूँ। वह उनके देश में युद्ध ला रहा है; हौव और टोरियों के कारण ही देश में युद्ध हो रहा है, अन्यथा शान्ति होती। यदि हौव देश के बाहर अभी निकाल दिया गया, तो मेरी हार्दिक इच्छा है कि 'ह्विग' और 'टोरी' का भेद सदा के लिए दूर कर दिया जाय; किन्तु यदि टोरी उसे आगे बढ़ने का प्रोत्साहन देते हैं अथवा उसके आ जाने पर उसकी सहायता करते हैं, तो मैं चाहूँगा कि दूसरे वर्ष हमारी सेना उन्हें देश से बाहर निकाल दे और कांग्रेस उनकी संपत्ति पर अधिकार करके उन लोगों की सहायता में उसका उपयोग करे जो देश-सेवा के कार्य में पीड़ित हुए हैं। आगामी वर्ष का एक ही सफल युद्ध इस काम को पूरा कर देगा। उन दुष्ट व्यक्तियों की सम्पत्ति का अपहरण करके अमेरिका दो वर्षों तक युद्ध कर सकता है, और उनके देश-बहिष्कृत होने पर आनन्दित होगा। यह न कहिए कि यह बदला है। यह मात्र उन पीड़ित व्यक्तियों का नम्र क्रोध है जिनकी दृष्टि में सार्वजनिक हित के अतिरिक्त अन्य कोई उद्देश्य नहीं है तथा जिन्होंने संदिग्ध प्रतीत होनेवाली घटना के लिए अपना सब कुछ दाँव पर लगा दिया है। परन्तु निश्चित कठोरता के प्रति कोई भी तर्क प्रस्तुत करना मूर्खता मात्र है। वक्तृता कानों को प्रभावित कर सकती है, वेदना की वाणी करुणा के आँसू बहा सकती है, किन्तु पूर्वधारणा के कारण पत्थर बने हुए हृदय तक किसी की गति नहीं हो सकती है।

इस कोटि के व्यक्तियों को छोड़ कर, एक मित्र के स्नेहपूर्ण उत्साह के साथ, मैं अब उन लोगों से कुछ कहना चाहता हूँ जिन्होंने स्तुत्य कार्य किये हैं और जो भविष्य में भी उसी प्रकार कार्य करने के लिए कृत-संकल्प हैं। मैं इस प्रान्त या दूसरे प्रान्त के कुछ लोगों से नहीं, वरन् सभी लोगों से कह रहा हूँ कि आप लोग हमारी सहायता करें। जब इतने बड़े लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हम प्रयत्न

कर रहे हैं, तो अपनी शक्ति को यथासम्भव अधिक करना अच्छा है। हम भावी विश्व को यह कहने का अवसर दें कि शीतकाल के मध्य में, जिस समय आशा और सदाचार के अतिरिक्त अन्य कुछ सफल नहीं हो सकता था; सामान्य आपत्ति से भयभीत होकर, अमेरिका के नगर और गाँव संगठित होने तथा भय के उस कारण को दूर करने के लिए एकत्रित हुए। भूल जाइये कि हमारे सहस्रों व्यक्ति नष्ट हो चुके हैं; दस सहस्र की संख्या में आगे बढ़िए और भाग्य के ऊपर अपना भार न छोड़ कर अपने विश्वास को कार्यरूप में प्रदर्शित कीजिए जिससे ईश्वर आपको आशीर्वाद दे। आप चाहे किसी प्रान्त के रहने वाले हों अथवा जीवन के चाहे किसी भी स्तर पर हों, अभिशाप और वरदान दोनों में आपका अंश होगा। दूर और निकट के प्रदेश, भीतरी और सीमान्त काउण्टियाँ, धनी और निर्धन सभी समान रूप से दुःख अथवा सुख के भागी होंगे। जो हृदय इस समय भावना-शून्य है वह मृत है। भावी सन्तानें उसकी कायरता को धिक्कारेंगी जो ऐसे समय पीछे हटता है जबकि थोड़ी-सी शक्ति पूरे देश को बचाकर उसे सुखी बना देती। मैं उस आदमी को प्यार करता हूँ जो संकटों में मुस्करा सकता है, जो आपत्तियों से शक्ति प्राप्त करता है और विवेक के द्वारा वीर बनता है। पीछे हटना क्षुद्र मस्तिष्क वालों का काम है। किन्तु जिनका हृदय दृढ़ है, और अन्तःकरण जिनके चरित्र का समर्थन करता है, वे लोग मृत्यु पर्यन्त अपने सिद्धांतों का अनुसरण करते हैं। स्वयं मेरे लिए, मेरी तर्क-पद्धति प्रकाश-रश्मि के समान सरल और स्वच्छ है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि विश्व-भर का कोष मुझे आक्रमणात्मक युद्ध के लिए प्रेरित न कर पाता, क्योंकि इसे मैं हत्या मानता हूं। किन्तु यदि एक चोर मेरे घर में घुस आता है, मेरी सम्पत्ति को जलाता या नष्ट करता है, मुझे तथा मेरे परिवार के अन्य सदस्यों को मारता है अथवा प्रत्येक दशा में अपनी निरंकुश इच्छा द्वारा मुझे बांधने की धमकी देता है, तो क्या मैं इसे सहूँ? मेरे लिए इन बातों का कोई अर्थ नहीं है कि वह कौन है, एक राजा या साधारण आदमी, मेरे देश का निवासी या विदेशी। कोई एक दुष्ट इस घृणित कार्य का कर्त्ता है अथवा दुष्टों की एक सेना। यदि हम मूल रूप से विचार करें तो हमें कोई अन्तर न मिलेगा, और न इस बात के लिए उपर्युक्त कारण दिया जा सकता है कि एक स्थिति में हम उसे दंड दें और दूसरी स्थिति में उसे क्षमा कर दें। मुझे राज-द्रोही कहा जाय, मैं इसे

स्वीकार करता हूँ। इससे मेरा कुछ बिगड़ता नहीं है। किन्तु निश्चित रूप से मेरे लिए वह महान दुःख की बात होगी, यदि मैं एक ऐसे राजा की राज-भक्ति स्वीकार करके अपनी आत्मा को अपवित्र करूँ जिसका आचरण एक नशा-मूढ़, अन्द, हठी तथा अयोग्य व्यक्ति के समान है। कुछ स्थितियाँ ऐसी होती हैं जिनके बारे में जो कुछ कहा जाय सब थोड़ा है। वर्तमान स्थिति उनमें से एक है। कुछ मनुष्य ऐसे होते हैं जो भावी बुराइयों को पूर्णरूप से समझ नहीं पाते। वे यह सोच कर सांत्वना प्राप्त कर लेते हैं कि यदि शत्रु विजयी हो गया तो वह उन पर दया करेगा। जिन्होंने न्याय करना स्वीकार नहीं किया, उनसे दया की आशा करना मूर्खता की पराकाष्ठा है। जहाँ विजय लक्ष्य है, वहाँ दया भी केवल युद्ध-सम्बन्धी चाल होती है। गीदड़ की धूर्तता और सिंह का हिंसात्मक आक्रमण दोनों प्राणघातक होते हैं; और हमें दोनों के प्रति सजग रहना चाहिए। कुछ धमका कर और कुछ वचन देकर 'हौव' जनता को, शस्त्र रख देने तथा उसकी दया प्राप्त करने के लिए, आतंकित करना या छलना चाहता है। मंत्रिमंडल ने गेज (Gage) को यही करने को कहा और टोरियों के अनुसार यही शान्ति स्थापना है—'वह शान्ति जो समझ से परे है।' यह वह शान्ति होगी जिसके तुरत बाद ही इतना अधिक विनाश होगा जिसकी हम लोग कल्पना भी नहीं कर सकते। पेंसिलवेनिया के निवासियो, इन बातों पर विचार कीजिए। यदि सीमान्त की काउण्टियाँ शस्त्र रख दें तो वे सुसज्जित रेड-इण्डियनों की सेना का शिकार होंगी; कदाचित् टोरी इसके लिए दुःखी न होंगे। यदि भीतरी काउण्टियाँ शस्त्र रख दें तो कर्त्तव्य-च्युत होने के अपराध में सीमान्त काउण्टियाँ अपने इच्छानुसार उन्हें दंड देंगी। यदि कोई प्रान्त हथियार डाल दे, तो शेष प्रान्तों के रोष से उसे बचाने के लिए "हौव" को ब्रिटिश सेना और किराए पर रखी गयी जर्मन सेना को उस प्रान्त में भर देना पड़ेगा। पारस्परिक प्रेम की शृंखला में पारस्परिक डर मुख्य कड़ी है; और जो प्रान्त उस सम्बन्ध को तोड़े उसके लिए वह दुःख की बात होगी। हौव (Howe) आप लोगों को निर्दय विनाश की ओर जाने का निमंत्रण दे रहा है। जो इसे नहीं समझेंगे वे या तो शठ होंगे या मूर्ख। यह मेरा कल्पना-विलास नहीं है, वरन् मैं सरलतम भाषा में सत्य को स्पष्ट रूप से आपकी आँखों के सम्मुख रखने के लिए तर्क प्रस्तुत कर रहा हूँ।

मैं डरता नहीं; इसके लिए मैं ईश्वर को धन्यवाद देता हूँ। मैं डर का कोई वास्तविक कारण समझता भी नहीं। मैं अपनी यथार्थ स्थिति को भली-भाँति जानता हूँ और उससे मुक्ति पाने का मार्ग भी मुझे ज्ञात है। जब हमारी सेना एकत्रित थी, होव (Howe) को हमसे युद्ध करने का साहस नहीं हुआ। उसके लिए यह गौरव की बात नहीं है कि वह "ह्वाइट प्लेन्स" से भाग खड़ा हुआ तथा असुरक्षित जर्सियों को लूटने के लिए अवसर की प्रतीक्षा करता रहा। किन्तु हमारे लिए यह अवश्य महान श्रेय की बात है कि थोड़े आदमियों को साथ लेकर हमने चार नदियों को पार किया। कोई यह नहीं कह सकता कि हम लोग शीघ्रता के साथ पीछे हटे; क्योंकि तीन सप्ताह तक हम लोग इस आशा के साथ पीछे लौटते रहे कि देश को हमारी सहायता करने का समय मिल जाय। दो बार हम लोग शत्रु का सामना करने के लिए घूम पड़े थे, और अंधेरा होने तक मैदान में डटे रहे। हमारी सेना में भय का कोई चिन्ह दृष्टिगोचर नहीं हुआ; और कुछ भीरु तथा उदासीन व्यक्ति यदि देश भर में झूठा आतंक न फैलाते, तो 'जर्सी' (Jersey) कभी लुट न गया होता। हम लोग पुनः एकत्रित हैं और हो रहे हैं। महाद्वीप के दोनों किनारों पर नयी सेना में लोग शीघ्रता से भर्ती हो रहे हैं और सर्व प्रकार से सुसज्जित साठ सहस्र सैनिकों को साथ लेकर हम दूसरा युद्ध आरंभ करने में समर्थ होंगे। यह हमारी स्थिति है। निरन्तर प्रयत्न और धैर्य के बल पर हमें भविष्य में गौरवपूर्ण परिणाम की आशा है। भीरुता तथा आधीनता का परिणाम यह होगा कि हमारा देश लुट जायगा, नगर उजड़ जायेंगे; यहाँ के निवासी सुरक्षित नहीं रहेंगे। दासता से मुक्त होने की कोई आशा न होगी। हमारे घर किराये पर बुलाये गये जर्मन सिपाहियों के लिए बैरकों एवं वेश्या-गृहों के रूप में बदल जाएंगे, और देश में वर्ण-संकरों की उत्पत्ति होगी। देश के इस चित्र को देखिए और इस पर आँसू बहाइए! फिर भी यदि कोई ऐसा विचारशून्य अभागा व्यक्ति है जो इस पर विश्वास नहीं करता है, तो उसे यातना सहने के लिए छोड़ दीजिए।

अमेरिका का संकट

[शांति और उसके सम्भव लाभ]

जिन्होंने मानव-आत्मा की परख की वे क्षण समाप्त हो गये और विश्व में सबसे महान और संपूर्ण क्रान्ति गौरव तथा आनन्दपूर्वक पूरी हुई।

भय की पराकाष्ठा से सुरक्षा तक, युद्ध के कोलाहल से शान्ति की निस्तब्धता तक, जाने का विचार तो अत्यन्त मधुर होता है; किन्तु उसके लिए इन्द्रियों की क्रमिक शांति की आवश्यकता है। सहसा उपस्थित होने पर शान्ति भी हमें हतबुद्धि बना देने की क्षमता रखती है। चिरकालीन प्रचंड झंझावात, यदि एक क्षण में रुक जाये तो हम आनन्द की नहीं, वरन् आश्चर्य की स्थिति में पड़ जायेंगे। स्मृति के कुछ क्षणों के उपरांत ही हम आनन्द का आस्वादन कर सकते हैं। ऐसे अवसर प्रायः विरले होते हैं, जब कि मस्तिष्क आकस्मिक परिवर्तन के योग्य बना लिया जाता है। मानव-मस्तिष्क को स्मरण और तुलना के द्वारा आनन्द की उपलब्धि होती है, और जब तक मस्तिष्क नवीन दृश्य का रस लेने नहीं लग जाता, तब तक विचार और तुलना के लिए पर्याप्त समय चाहिए।

वर्तमान स्थिति में, लक्ष्य की महानता एवं उसके निमित्त झेली गयी भाग्य की अनिश्चितताएँ, वे असंख्य और जटिल संकट जिनको हमने झेला है अथवा जिनसे हम बच निकले, हमारी वर्तमान प्रतिष्ठा तथा हमारा आशापूर्ण महान भविष्य आदि सभी हमें विचार करने के लिए बाध्य करते हैं।

संसार को सुखी बनाने की शक्ति का अपने में अनुभव करना, मनुष्य जाति के सम्मुख एक आदर्श उपस्थित करना, विश्व के रंगमंच पर एक ऐसे चरित्र की अवतारणा करना जो आज तक अज्ञात रहा तथा हमारे हाथों सुपुर्द किये गये एक अभिनव निर्माण-कार्य को सम्पन्न करना, आदि की महानताओं का जो कुछ अनुमान लगाया जाय अथवा जितने आभार के साथ उनको स्वीकार किया जाय, वह सब थोड़ा है।

अस्तु, स्मृति के इन क्षणों में जब कि आँधी रुक रही है और विक्षुब्ध

मस्तिष्क विश्राम की ओर बढ़ रहा है, हम अतीत के दृश्यों को देखें और अनुभव द्वारा यह तय करें कि भविष्य में क्या करना है।

सुख के जितने साधन-स्रोत अमेरिका को प्राप्त हैं उतने विश्व के अन्य किसी देश को नहीं। अमेरिका के जीवन का उषःकाल निरभ्र और उज्ज्वल था। उद्देश्य श्रेष्ठ था। उसके सिद्धांत उचित और उदार रहे हैं। उसकी प्रकृति शान्त और दृढ़ है। सर्वोत्तम कार्यों से उसका आचरण सुव्यवस्थित रहा है। उसका सभी कुछ गौरवास्पद है। कदाचित् विश्व में ऐसा कोई देश नहीं है जिसका मूल इतना स्तुत्य रहा हो। आरम्भ में यहाँ आकर, लोग जिस प्रकार बसे, वह क्रान्ति के लक्षणों के अनुरूप था। रोम किसी समय विश्व में सर्वोत्तम साम्राज्य था, किन्तु उसका मूल क्या था? लुटेरों का एक झुंड। लूट-पाट ने उसे सम्पन्न किया और असीम अत्याचारों ने उसे महान बनाया। किन्तु, अपने जीवन की तथा जिन-जिन परिस्थितियों को पार करता हुआ वह आज की स्थिति को प्राप्त हुआ है, उनकी चर्चा करने में अमेरिका कभी भी लज्जित नहीं होगा।

अस्तु, यदि अतीत की स्मृतियाँ अपना कार्य उचित रूप से करें तो उन्हें अमेरिका को अपने प्रारम्भिक यश की वृद्धि-विषयक महत्वाकांक्षा की प्रेरणा देनी चाहिए। संसार ने अमेरिका को आपत्ति में महान देखा है। हमने झुकने की भावना के बिना, वीरता और गर्व के साथ अनेकों कठिनाइयों पर विजय प्राप्त की है। आपदाओं के बादल ज्यों-ज्यों घने होते गये हैं, त्यों-त्यों हम लोग दृढ़ से दृढ़तर होते रहे हैं। अमेरिका ने जो कुछ किया वह उसके धैर्य के अनुरूप है। हम विश्व को दिखा दें कि युद्ध के समय हमने जिस वीरता का परिचय दिया है, शान्ति के क्षणों में, हमारी सचाई उसी के अनुरूप है।

इस समय अमेरिका शांतिपूर्ण गृह-जीवन में प्रवेश कर रहा है, जहाँ निराशा की गहरी छाया नहीं, वरन् परिश्रम के पुरस्कार तथा माधुर्य का आनन्द है। इस स्थिति में उसे यह कदापि नहीं भूलना चाहिए कि, स्वतंत्रता के समान ही स्वच्छ राष्ट्रीय यश का भी महत्व है; क्योंकि उसमें ऐसा सौन्दर्य है जो विश्व को यहाँ तक कि शत्रुओं को भी, अपने अनुकूल बना लेने में समर्थ है। इसके द्वारा वह गौरव प्राप्त होता है, जो प्रायः शक्ति से श्रेष्ठ है और जो वहाँ भी सम्मानित होता है जहाँ आडम्बर एवं वैभव असफल हो जाते हैं।

अमेरिका की क्रान्ति उस युग के लिए शाश्वत गौरव है जिसने उसे सम्पन्न किया। इसने किसी भी मानवीय प्रयत्न की अपेक्षा विश्व को उद्बुद्ध करने और मानव-जाति में उदारता एवं स्वतंत्रता की भावना का विस्तार करने में अधिक योग दिया है। इसलिए इस पर, चाहे किसी भी निमित्त अथवा स्रोत से, यदि, एक भी कलंक का टीका लग गया, तो वह एक ऐसी अवांछनीय घटना होगी, जिसके लिए सदैव शोक मनाया जायगा, और जिसे लोग कभी नहीं भूलेंगे।

चिरकालीन युद्ध की भीषण आपदाओं में से यह आपदा कुछ कम नहीं है कि इसके कारण मस्तिष्क उन मधुर ऐन्द्रिक अनुभवों से विरक्त हो जाता है जो अन्य क्षणों में अत्यंत रमणीय प्रतीत होते हैं। दुःख का निरन्तर दर्शन हमारी कोमल अनुभूतियों को कुण्ठित कर देता है। उसे धैर्यपूर्वक सहन करने की आवश्यकता हमें उससे पर्याप्त परिचित करा देती है। इसी प्रकार समाज के प्रति हमारे कई नैतिक कर्तव्यों में निरन्तर ढील आती रहती है, और केवल आवश्यकतावश उन्हें सम्पन्न करने की प्रथा हमारे बीच चल पड़ती है। वास्तव में, इस प्रकार कर्त्तव्य-विमुख होना अपराध है, किन्तु प्रथा की आड़ में वह क्षमा करने योग्य एक निमित्त बन जाता है। फिर भी, यदि एक राष्ट्र अपने चरित्र के विषय में उचित रूप से विचार करे, तो वह पवित्रतापूर्वक उसकी रक्षा कर सकेगा। जिस निष्कलंक चरित्र के साथ अमेरिका ने अपना कार्य आरम्भ किया, उसकी अपेक्षा अधिक सुन्दर चरित्र से किसी देश ने अपने कार्य का आरम्भ नहीं किया। उस चरित्र की प्रतिष्ठा बनाए रखने का उत्तरदायित्व जितना अमेरिका पर है, उतना अन्य किसी राष्ट्र पर नहीं है।

अमेरिका ने जो ऋण लिया है उसके बदले में उसे जिस लक्ष्य की प्राप्ति हुई तथा उससे जितने लाभ होंगे, इन सबकी चर्चा की कदाचित् ही आवश्यकता है। अपने इच्छानुसार सुखपूर्वक रहने और काम करने का उसे अधिकार है। विश्व उसके हाथों में है। उसके व्यापार पर किसी भी विदेशी शक्ति का विशेष अधिकार नहीं है। कोई भी विदेशी शक्ति, न तो उसके विधान को बिगाड़ सकती है, और न उसकी उन्नति पर नियन्त्रण रख सकती है। संघर्ष समाप्त हो गया। यह एक-न-एक दिन होना था और कदाचित् उसके लिए इससे

अधिक उपयुक्त अवसर दूसरा नहीं हो सकता था।१ एक अत्याचारी शासक के स्थान पर, अमेरिका को एक ऐसा 'संघ' प्राप्त हुआ है जिसकी आदर्श महत्ता और सार्वलौकिक उदारता को शत्रुओं ने भी बाध्य होकर स्वीकार किया है।

शान्ति, स्वतंत्रता और सार्वभौमिक वाणिज्य आदि के कारण अमेरिका के राज्यों को अलग-अलग और सामूहिक रूप से अपने घरेलू कामों की व्यवस्था करने के लिए पर्याप्त अवसर मिलेगा; और वे इस प्रकार कार्य करेंगे कि कोई उनकी निन्दा न कर सकेगा। पुनः प्राप्त करने की अपेक्षा चरित्र को बचाये रखना अधिक सरल है। यदि कोई मनुष्य किसी बुरे उद्देश्य से अथवा आत्मा की क्षुद्रता के कारण उस चरित्र को क्षति पहुँचाने में सहयोग प्रदान करता है, तो वह एक ऐसा अपकार्य करता है जिसे सुधारना उसके वश की बात न होगी।

हम लोगों ने भावी पीढ़ी के लिए 'पैतृक सम्पत्ति' स्थापित कर ली है। अस्तु, अच्छा यह होगा कि हम गौरव के साथ उसे अगली पीढ़ी को सौंप दें।

१—यह सिद्ध हो चुका है कि हमारी क्रान्ति सर्वाधिक उपयुक्त अवसर पर आरम्भ हुई; किन्तु जिस धुरी पर सारा चक्र घूमता रहा है, वह है राज्यों का संघ (Union of the States)। पारस्परिक सहयोग के बिना विदेशी शत्रु पर विजय प्राप्त करने में प्रत्येक राज्य की असमर्थता से, स्वभावतः, इस संघ का जन्म हुआ।

युद्धारम्भ के अवसर पर हमारे राज्यों में से प्रत्येक, यदि, अपेक्षाकृत कम समर्थ रहा होता तो उनकी संगठित शक्ति भी इस काम को न कर पाती। दूसरी ओर यदि उनमें से प्रत्येक अपेक्षाकृत अधिक समर्थ रहा होता तो वे कदाचित् संगठित होने की आवश्यकता को महसूस न कर पाते; उस स्थिति में वे या तो, अलग-अलग अथवा छोटे-छोटे संघों के रूप में शत्रु से लड़ते और अलग-अलग जीत लिए जाते।

कोई एक राज्य, अथवा कुछ राज्यों के संघ की शक्ति अमेरिका के वर्तमान 'संयुक्त राज्य' की शक्ति के तुल्य हो सकती है या नहीं, हम यह नहीं कह सकते, और यदि ऐसा कभी सम्भव भी हो तो न जाने कितने वर्षों के बाद वह दिन आयगा। हम लोगों ने सामूहिक रूप से युद्ध को सफल बनाने तथा विश्व में राष्ट्रीय गौरव की रक्षा करने की असीम कठिनाइयों को देखा है। इसलिए यदि हम अपनी बुद्धि का दुरुपयोग न करें, तो अतीत के अनुभवों और अब तक के प्राप्त ज्ञान के आधार पर, हमें उस कल्याणकारी 'संघ' को दृढ़ बनाने की आवश्यकता तथा उसके प्रचुर लाभ को महसूस करना चाहिए, क्योंकि इसी संघ के कारण हमारी मुक्ति हुई है अन्यथा हम कहीं के न होते।

राज्यों की योग्यता, उद्देश्य की महानता और राष्ट्रीय चरित्र के मूल्यों की तुलना में हम जो त्याग करेंगे, वह अत्यल्प होगा।

किन्तु, एक विवेकशील व्यक्ति के लिए राज्यों की एकता अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य है, जिसके सम्पन्न होने पर अन्य कार्य अत्यन्त सरल हो जायेंगे। इसी एकता पर हमारा राष्ट्रीय चरित्र निर्भर है। इसी के बल पर हमें अपने देश में सुरक्षा और विदेशों में प्रतिष्ठा प्राप्त होगी। संसार हमें इसी के माध्यम से एक राष्ट्र के रूप में जानता है या जान सकेगा। संयुक्त राज्य अमेरिका के झण्डे के कारण ही समुद्र में अथवा विदेशी बन्दरगाहों पर, हमारे जहाज़ और वाणिज्य सुरक्षित हैं। मैत्री, शान्ति अथवा वाणिज्य आदि सभी प्रकार की हमारी सन्धियाँ 'संयुक्त राज्य' अमेरिका के ही नाम से की जाती हैं। यूरोप हमें अन्य किसी नाम से नहीं जानता।

इस साम्राज्य का राज्यों में विभाजन हमारी सुविधा के लिए है। किन्तु, बाहर यह भेद मिट जाता है। प्रत्येक राज्य के कार्य घरेलू हैं। अपनी सीमा के आगे वे नहीं जा सकते। इन राज्यों में जो सबसे अधिक सम्पन्न राज्य है उसका सम्पूर्ण धन, यदि उसकी सरकार की वार्षिक आय के रूप में प्राप्त हो जाय तो भी विदेशी शत्रु के आक्रमण को रोकने में वह समर्थ न होगा। संक्षेप में, 'संयुक्त राज्य' के अतिरिक्त हमारा राष्ट्रीय प्रभुत्व और किसी रूप में नहीं है; और यदि, कोई अन्य रूप होता तो वह हमारे लिए प्राणघातक होता। क्योंकि उसका व्यय इतना अधिक होता कि उसे सम्भालना असम्भव हो जाता। एक व्यक्ति या एक राज्य अपने को चाहे जिस नाम से पुकारे, किन्तु संसार और विशेषकर शत्रुओं का संसार, केवल नाम से आतंकित नहीं होता। 'साम्राज्य' में अपने उन सभी भागों की रक्षा करने की शक्ति होनी चाहिए जिनके संयोग से उनका निर्माण हुआ है। 'संयुक्त राज्य' के रूप में हममें वह शक्ति है, और हम उसकी महत्ता के योग्य हैं, अन्यथा नहीं। बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से व्यवस्थित होने पर हमारा 'संघ' महान एवं शक्तिसम्पन्न होने का सरलतम साधन है तथा अमेरिका की वर्तमान स्थिति में स्वीकृत होने योग्य सरकार के स्वरूप का सुन्दरतम आविष्कार है। अमेरिका के 'संयुक्त राज्य' की वर्तमान सरकार प्रत्येक राज्य से ऐसी शक्ति एकत्रित करती है, जो स्वयं अपने में अपूर्ण होने के नाते अपने राज्य के काम नहीं आ सकती;

किन्तु इस प्रकार, सब राज्यों की सम्मिलित शक्ति सब राज्यों का काम सम्पन्न करने में समर्थ होती है।

राज्यों के अलग-अलग प्रभुत्व का क्या परिणाम होता है इसके उदाहरण हालैण्ड के राज्य हैं। अपनी विच्छिन्न स्थिति के कारण उन्हें नाना प्रकार के षड्यन्त्र, क्षतियों, आपदाओं और शत्रुओं आदि का संकट बना रहता है। सामूहिक रूप से प्रायः किसी निर्णय पर पहुँचने तथा उस निर्णय को कार्यान्वित करने की असम्भावना उनके लिए असीम आपदाओं का स्रोत है। यदि हम उसी प्रकार की विच्छिन्नावस्था में रहेंगे तो हमें भी उन्हीं आपदाओं को भोगना पड़ेगा।

समाज के प्रति व्यक्ति का जो कर्त्तव्य है, वही 'संयुक्त राज्य' के अन्तर्गत रहने वाले प्रत्येक राज्य का उसके प्रति है। सम्पूर्ण को सुरक्षित बनाने के लिए इकाई को अपना कुछ त्याग करना पड़ता है। इस दृष्टिकोण से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि हम जितना देते हैं उससे अधिक प्राप्त करते हैं और मूल से अधिक वार्षिक सूद पाते हैं। जब कभी मैं अपनी स्वतंत्रता और सुरक्षा के उस महान संरक्षक 'संघ' की असम्मानपूर्ण चर्चा सुनता हूँ तो मुझे दुःख होता है। अमेरिका के संविधान में यह 'संघ' सर्वाधिक पवित्र तत्व है और प्रत्येक व्यक्ति को इस पर गर्व होना चाहिए। 'संयुक्त राज्य' की नागरिकता हमारा घरेलू भेद है। इस महाद्वीप के भीतर देश में हम राज्य विशेष के नागरिक के रूप में जाने जाते हैं, किन्तु बाहर अमेरिका के नागरिक के रूप में। 'अमेरिका-निवासी' हमारी महान पदवी है; हमारी अन्य अपेक्षाकृत हीन पदवियाँ स्थान के अनुसार भिन्न-भिन्न हैं।

जहाँ तक मुझसे हो सकता था, मैंने सबका स्नेह पाने का, सब के हितों को एक सम्बन्ध-सूत्र में बाँधने का और देश के मस्तिष्क को एक केन्द्र पर अवस्थित करने का प्रयत्न किया। इस विचार से कि मैं क्रान्ति के बुनियादी काम अपेक्षाकृत अच्छे ढंग से कर सकूँ, मैंने अपने प्रान्त अथवा 'संयुक्त राज्य' में पद अथवा लाभ के स्थानों की उपेक्षा की है। मैं सदैव दलगत सम्बन्धों से दूर रहा। इतना ही नहीं, अपितु मैंने अपने सभी व्यक्तिगत तथा अल्प महत्व के कार्यों की ओर ध्यान नहीं दिया। यदि हम उस महान कार्य पर विचार करें जिसे हमने पूरा किया है तथा उसकी उचित महत्ता का अनुभव

करें, तो हमें यह विदित होगा कि वैयक्तिक क्षुद्र कलह और अशिष्ट विवाद हमारे महान चरित्र के लिए अपमानजनक तथा आनन्द के लिए हानिकारक हैं।

अमेरिका की स्थिति ने मुझे लेखक बनाया। मैंने देखा कि स्वतंत्रता की घोषणा, जो एकता स्थापित करके हमारी रक्षा कर सकती थी, न करके देश उन लोगों से एक असम्भव और अप्राकृतिक समझौता करने जा रहा है, जो उसे निर्बल बना देने के लिए कृत-संकल्प हैं। देश की इस भयावह स्थिति ने मेरे मस्तिष्क को इस प्रकार प्रभावित किया कि मेरे लिए चुप रहना असम्भव हो गया। गत सात वर्षों से अधिक समय तक यदि मैंने देश की कोई सेवा की है, तो यह भी निश्चित है कि मैंने साहित्य को अनासक्त भाव से मानवता की महान सेवा में नियोजित करके उसके यश की वृद्धि की है; और यह भी प्रकट कर दिया है कि अव्यभिचरित प्रतिभा का भी अस्तित्व होता है।

मैं बराबर इस बात को मानता रहा हूँ कि स्वतंत्रता प्राप्त की जा सकती है; वह असाध्य नहीं है। हाँ, आवश्यकता इस बात की है कि देश में उसके लिए उपयुक्त विचार उत्पन्न हों, और उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न किया जाय। विश्व में यह अद्वितीय घटना है कि इतने विशाल देश के निवासी, जिनकी भिन्न-भिन्न प्राचीन चिन्तन-पद्धतियाँ हैं और भिन्न-भिन्न परिस्थितियाँ हैं, सहसा एक राजनैतिक परिवर्तन के द्वारा एक साथ प्रभावित हो उठे, और जब तक उन्हें पूर्ण सफलता नहीं प्राप्त हुई तब तक अच्छे और बुरे अवसरों को झेलते हुए समान रूप से उन्होंने अपने मत का समर्थन किया।

किन्तु, युद्ध के दृश्य समाप्त हो गये हैं और प्रत्येक व्यक्ति का मस्तिष्क अपने गृह-कार्यों तथा अपेक्षाकृत अधिक सुखमय जीवन की ओर मुड़ चला है। अतः मैं इस विषय को यहीं समाप्त करता हूँ। मैंने बड़ी सचाई के साथ, आरम्भ से अन्त तक, इसके प्रत्येक पहलू पर विचार किया है; और भविष्य में मैं चाहे जिस देश में रहूँ, मैंने अमेरिका की स्वतंत्रता-प्राप्ति के निमित्त जो कार्य किया है, उस पर मैं सच्चे गर्व का अनुभव करता रहूँगा। मुझे मानवता की सेवा करने का अवसर मिला, इसके लिए मैं प्रकृति और परमेश्वर का सदैव आभार मानता रहूँगा।

फिलाडेलफिया, अप्रैल १९, १७८३ सामान्य बुद्धि

मनुष्य के अधिकार
(भाग – १)

जार्ज वाशिंगटन,

प्रेसीडेण्ट, 'संयुक्त राज्य' अमेरिका।

श्रीमान्,

आपके अनुकरणीय उदात्त गुणों ने स्वतन्त्रता के जिन सिद्धांतों की स्थापना में अत्यधिक गौरवपूर्ण सहयोग प्रदान किया है, उनके समर्थन में मैं आपको यह लघुकृति समर्पित करता हूँ। मेरी हार्दिक इच्छा है कि मनुष्य के अधिकारों को आपकी उदारता द्वारा अपेक्षित सार्वलौकिकता प्राप्त हो और आप प्राचीन संसार के पुनर्जन्म को नूतन विश्व के रूप में देखने का आनन्द प्राप्त कर सकें।

आपका अत्यन्त कृतज्ञ
और
आज्ञाकारी विनम्र सेवक
टॉम पेन

सांविधानिक नियम की परिसीमाएँ

फ्रांस की राज्य-क्रान्ति पर 'बर्क' द्वारा लिखित पत्रक उन सभी अशिष्टताओं या दुर्व्यवहारों का असाधारण उदाहरण है, जिनके कारण राष्ट्र अथवा व्यक्ति एक दूसरे के प्रति संतप्त हो उठते हैं। फ्रांस की जनता और उसकी 'राष्ट्रीय सभा' को इंगलैण्ड तथा उसकी संसद् के कार्यों से कोई प्रयोजन नहीं है। किन्तु बर्क ने फ्रांस की जनता पर और उसकी संसद् पर ऐसा आक्रमण आरम्भ किया जिसके लिए फ्रांस की ओर से कोई उत्तेजना प्राप्त नहीं हुई थी। बर्क का यह व्यवहार आचार की दृष्टि से अक्षम्य है, और राजनीति की दृष्टि से अनुचित है। अंग्रेजी भाषा में ऐसा कोई अपशब्द नहीं है जिसका प्रयोग उन्होंने फ्रांस के राष्ट्र तथा उसकी 'राष्ट्रीय सभा' के लिए न किया हो। विद्वेष, पूर्वधारणा, अज्ञान या ज्ञान आदि के प्रभाव के अन्तर्गत बर्क को जो कुछ आया उसे उन्होंने अपने प्रचुर क्रोध के साथ लगभग चार सौ पृष्ठों में व्यक्त कर दिया। जिस मूड में और जिस योजना के आधार पर वे लिख रहे थे, उसके सहारे वे न जाने कितने सहस्र पृष्ठ लिख जाते। भावोन्माद की दशा में जब जिह्वा अथवा लेखनी ढीली पड़ जाती है तो विषय तब तक समाप्त नहीं होता जब तक मनुष्य थक न जाय।

फ्रांस के कार्यों के विषय में मत निर्धारित करते समय बर्क ने अब तक कभी भूल नहीं की और न उन्हें कभी निराशा ही हुई। किन्तु उनकी आशा में इतना नैपुण्य है या उनकी निराशा में इतना द्रोह है कि उसके कारण बर्क को अपना अभीष्ट सिद्ध करने के लिए नये बहाने मिला करते थे। एक समय था जब बर्क को यह विश्वास दिलाना असम्भव था कि फ्रांस में राज्य-क्रांति होगी। उस समय उनका मत था कि क्रांति के लिए फ्रांस में न शक्ति है और न सहनशीलता। किन्तु अब वहाँ राज्य-क्रान्ति हो चुकी है इसलिए उसकी निन्दा करके वे अपने उस पूर्व-निर्धारित मत का बचाव करना चाहते हैं।

फ्रांस की 'राष्ट्रीय सभा' की निन्दा करने पर भी पर्याप्त संतोष न होने पर बर्क ने उदारमना डाक्टर प्राइस (Dr. Price) तथा इंगलैंड के 'क्रान्ति-समाज' (Revolution society) और 'सांविधानिक-सूचना-समाज'

(society for constitutional information) पर अपना क्रोध उतारा।

जैसा कि इंगलैंड में लोग मानते हैं, सन् १६८८ ई० में वहाँ क्रान्ति हुई थी। ४ नवम्बर, सन् १७८९ ई० के दिन, अर्थात् उपर्युक्त क्रान्ति के वार्षिकोत्सव पर, डा० प्राइस ने जनता को धर्मोपदेश दिया। उसकी चर्चा करते हुए श्री बर्क महोदय कहते हैं कि राजनीतिक धर्मोपदेशक महोदय ने दृढ़तापूर्वक यह स्वीकार किया है कि क्रान्ति के सिद्धान्तों के द्वारा इंगलैंड की जनता ने तीन बुनियादी अधिकार प्राप्त किये हैं। यथा :

१. अपने शासकों को चुनना।

२. दुराचार के कारण उन्हें पद-च्युत करना।

३. अपने लिए सरकार का निर्माण करना।

डा० प्राइस यह नहीं कहते कि उपर्युक्त काम करने के अधिकार का अस्तित्व अमुक व्यक्ति अथवा अमुक प्रकार के व्यक्तियों में है, वरन् उनके अनुसार यह अधिकार सम्पूर्ण जनता में है अथवा राष्ट्र में निहित है। इसके विपरीत बर्क महोदय की मान्यता है कि सम्पूर्ण राष्ट्र में, उसके किसी अंश में अथवा कहीं भी, इस प्रकार का कोई अधिकार नहीं है। इस विषय में उनका सब से विचित्र कथन यह है—'इंगलैंड की जनता इस प्रकार के किसी भी अधिकार को अस्वीकार करती है, और अपने प्राणों तथा सम्पत्ति की बाज़ी लगाकर वह उसकी व्यावहारिक स्वीकृति का विरोध करेगी।'

अपने अधिकारों की रक्षा के लिए नहीं, वरन् इस बात को स्वीकार करने के लिए कि उनका कोई अधिकार नहीं है, लोग शस्त्र उठायेंगे तथा अपने प्राणों और सम्पत्ति की बाज़ी लगायेंगे—यह कथन नितान्त अभिनव अनुसंधान है और बर्क की आत्म-विरोधिनी बुद्धि के अनुरूप है।

इसी प्रकार की विलक्षणता के द्वारा, बर्क ने यह सिद्ध किया है कि इंगलैण्ड की जनता को ऐसा कोई अधिकार नहीं था; और इस समय राष्ट्र में, उसके किसी भाग में अथवा कहीं भी, इस प्रकार का कोई अधिकार नहीं है। क्योंकि उनका तर्क है कि इस प्रकार के अधिकार जिस पीढ़ी में थे, वह इस समय अस्तित्व में नहीं है। उस पीढ़ी के साथ-साथ अधिकार भी नष्ट हो गये।

इसे सिद्ध करने के लिए, वे लगभग सौ वर्षों पूर्व, विलियम और मेरी के

प्रति कहे गये, संसद् के एक कथन का उद्धरण इन शब्दों में देते हैं—'हम, राज्य-सभा के लौकिक और आध्यात्मिक सदस्य और 'लोक-सभा' के सदस्य, जनता (इंगलैण्ड की तत्कालीन जनता) के नाम पर अत्यधिक नम्रता और विश्वास-पूर्वक अपने को, अपनी सन्तानों को तथा भावी पीढ़ियों को सदा के लिए समर्पित करते हैं।' बर्क ने उसी शासन के अन्तर्गत संसद् के एक दूसरे अधिनियम की एक धारा का उल्लेख इस प्रकार किया है—'(हम) अपने (अर्थात् तत्कालीन इंगलैण्ड की जनता) को, अपने उत्तराधिकारियों को तथा अपनी भावी पीढ़ियों को सदा के लिए उनके (विलियम और मेरी), उनके उत्तराधिकारियों तथा उनकी भावी पीढ़ियों के आधीन रखते हैं।'

इन धाराओं का उल्लेख करके बर्क महोदय अपने मत को पर्याप्त रूप से प्रतिपादित समझते हैं, और उसके बल पर यह सिद्ध करते हैं कि राष्ट्र अपने अधिकार के लिए सदा से वंचित हो गया है। केवल इस प्रकार के कथन की पुनरावृत्तियों से संतुष्ट न होकर वे आगे कहते हैं कि यदि इंगलैण्ड की जनता को 'क्रांति' के पूर्व इस प्रकार का कोई अधिकार था, तो इंगलैण्ड के राष्ट्र ने 'क्रान्ति' के समय बड़ी गम्भीरता के साथ अपनी ओर से तथा अपनी भावी पीढ़ियों की ओर से, उसे सदा के लिए त्याग दिया।

इंगलैण्ड ही के प्रति नहीं, वरन् फ्रांस की राज्य-क्रांति और उसकी 'राष्ट्रीय सभा' के प्रति भी, बर्क ने अपने भयंकर सिद्धांतों के कारण विष-वमन किया है और उस महान 'राष्ट्रीय सभा' पर, अन्यायपूर्वक अन्य की सम्पत्ति पर अधिकार करने का आरोप किया है। अतः मैं स्पष्ट रूप से उनके सिद्धांतों के विरुद्ध, शिष्टाचार का निर्वाह किये बिना, सिद्धांतों की अन्य पद्धति प्रस्तुत करूँगा।

सन् १६८८ ई० की ब्रिटिश संसद् ने अपने निर्वाचकों की ओर से जो कुछ किया, वैसा करने का उसे अधिकार था। किन्तु निर्वाचन के द्वारा उस संसद् को जो अधिकार मिला था, उससे कहीं अधिक अधिकार उसने अपनी इच्छा से स्वीकार कर लिया। क्योंकि भावी पीढ़ियों को सदा के लिए बन्धन में बाँध देने का अधिकार उसे निर्वाचन से नहीं प्राप्त था, वरन् अपनी इच्छा से उसने अपने में इस अधिकार को मान लिया था।

इस प्रकार उस संसद् के दो प्रकार के अधिकार सिद्ध होते हैं। पहले प्रकार का वह अधिकार है जो उसे निर्वाचन द्वारा प्राप्त था; और दूसरे प्रकार

का अधिकार वह है, जिसे उसने अपने में अपनी इच्छा से मान लिया था। प्रथम प्रकार के अधिकार के विषय में मुझे कुछ नहीं कहना है; किन्तु दूसरे के बारे में मेरा निम्नांकित उत्तर है :—

किसी भी देश में ऐसी कोई संसद्, मनुष्यों का ऐसा कोई वर्ग अथवा उनकी ऐसी कोई पीढ़ी न थी, न है और न होगी, जिसे बाद की पीढ़ियों को सदा के लिए बाँधने और नियंत्रित रखने का अधिकार प्राप्त हो; अथवा सदा के लिए यह निश्चित करने का अधिकार हो कि विश्व का शासन किस प्रकार हो या कौन करे? इसलिए ऐसी सभी धाराएँ, सभी अधिनियम या घोषणाएँ स्वतः निष्प्रभाव और निरर्थक हैं जिनके द्वारा उनके निर्माण-कर्ता ऐसा कार्य करने का प्रयत्न करते हैं जिसे करने का न उन्हें अधिकार है, न सामर्थ्य; और जिसका निष्पादन करना उनके वश की बात नहीं है।

प्रत्येक दशा में पूर्वगामी युगों और पीढ़ियों के समान ही अनुगामी युग और पीढ़ियाँ अपने लिए काम करने में पूर्ण स्वतंत्र हैं। 'मृत्यु के उपरान्त' भी शासन करने का अधिकार मान लेना सर्वाधिक हास्यास्पद और क्रूर अत्याचार है।

मनुष्य, मनुष्य की सम्पत्ति नहीं है; और न अनुगामी पीढ़ियाँ पूर्वगामी पीढ़ियों की सम्पत्ति हैं। सन् १६८८ ई० की अथवा अन्य किसी समय की संसद् या जनता को आज की जनता के अधिकारों को बेच देने, उसे बाँधने अथवा जिस किसी भी रूप से उसका नियन्त्रण करने का अधिकार ठीक उसी प्रकार नहीं था, जिस प्रकार, सौ अथवा सहस्र वर्षों बाद होने वाले व्यक्तियों के अधिकारों को बेचने, उन्हें बाँधने अथवा उनका नियन्त्रण करने का अधिकार आज की जनता अथवा संसद् को नहीं है।

प्रत्येक पीढ़ी को अपने युग की आवश्यकता के अनुसार काम करने का पूरा अधिकार है और होना चाहिए। किसी भी युग में व्यवस्था जीवितों के लिए की जाती हैं, मृतकों के लिए नहीं। जब मनुष्य का जीवन समाप्त हो जाता है, तो उसके साथ ही उसके अधिकार एवं उसकी इच्छाओं की भी समाप्ति हो जाती है। उसके बाद, विश्व के कार्यों में उस मृत व्यक्ति का कोई भाग न होगा। अस्तु, उसे यह कहने का अधिकार नहीं है कि विश्व के शासक कौन होंगे; सरकार का निर्माण या शासन किस प्रकार होगा?

मैं सरकार के स्वरूप विशेष के पक्ष में या विपक्ष में कुछ नहीं कह रहा

हूँ, और न तो यहाँ के अथवा अन्यत्र कहीं के किसी राजनीतिक दल के पक्ष या विपक्ष में कुछ कह रहा हूँ। सम्पूर्ण राष्ट्र जिसे अच्छा समझता है, उस कार्य को सम्पन्न करने का उसे पूर्ण अधिकार है। किन्तु, बर्क महोदय इस बात को नहीं मानते हैं। मैं पूछता हूँ कि फिर उस अधिकार का अस्तित्व है कहाँ ? मैं जीवित व्यक्तियों के अधिकार का समर्थन करता हूँ। मृतकों ने, अपनी इच्छा से माने हुए अधिकार के द्वारा, भावी पीढ़ियों के नाम पर जो कुछ समझौता किया अथवा जो अधिनियम बनाये, जीवित व्यक्ति उन्हीं के द्वारा नियंत्रित हों, यह मैं नहीं चाहता। किन्तु बर्क जीवितों के अधिकार और स्वातंत्र्य पर मृतकों के प्रभुत्व का समर्थन करते हैं।

एक समय था जब कि मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए राजा अपने इच्छानुसार अपना मुकुट बेच दिया करते थे, और अपने द्वारा नियुक्त किसी भी उत्तरा-धिकारी के हाथों में, जानवरों के समान, अपनी प्रजा को सौंप जाते थे। यह प्रथा, इस समय, इतनी कुत्सित मानी जाती है कि कोई इसे याद रखना भी नहीं चाहेगा। इसकी विलक्षणता के कारण, सहसा इस पर विश्वास नहीं होता। किन्तु, संसद की वे धाराएं, जिन पर बर्क महोदय ने अपने राजनीतिक दुर्ग का भव्य निर्माण किया है, इसी प्रकार की हैं।

किसी भी देश के नियमों को कुछ सामान्य सिद्धान्तों के अनुरूप होना चाहिए। इंगलैण्ड में जब किसी व्यक्ति की अवस्था इक्कीस वर्ष से अधिक हो जाती है, तो उसकी वैयक्तिक स्वतन्त्रता पर उसके माता-पिता, स्वामी अथवा जिसने अपने को सर्वशक्तिमान कहा है उस संसद् का कोई बंधन या नियंत्रण नहीं रह जाता है। फिर, किस आधार पर, सन् १६८८ ई० की या अन्य कोई संसद, सभी भावी पीढ़ियों को अनन्तकाल तक बाँध सकती थी ?

जो संसार से उठ गये हैं और जो संसार में अभी आये नहीं हैं, उनके बीच की दूरी की जितनी कल्पना की जाय उतनी थोड़ी है। उनके बीच कोई भी सम्बन्ध सम्भव नहीं है। इन दोनों अनस्तित्वों में से एक का अस्तित्व समाप्त हो चुका है और दूसरा अस्तित्व में आया ही नहीं है ; ये दोनों कभी भी विश्व में मिल नहीं सकते। फिर किस नियम या सिद्धान्त के आधार पर यह कहा जा सकता है कि एक का दूसरे पर सदा के लिए नियन्त्रण रहे ?

ऐसा कहा जाता है कि इंगलैण्ड में किसी की स्वीकृति के बिना उसका धन

नहीं लिया जा सकता है। किन्तु १६८८ ई० की संसद् को किसने ऐसा अधिकार दिया या कौन ऐसा अधिकार दे सकता था, कि वह उन अनुगामी पीढ़ियों का अधिकार छीन ले और कुछ विषयों में सदा के लिए काम करने का उनका अधिकार सीमित कर दे जो उस समय तक अस्तित्व में नहीं आयी थीं, और जिन्होंने न तो अपनी स्वीकृति दी थी और न अस्वीकृति ?

बर्क महोदय ने अपने पाठकों के सम्मुख जिस प्रकार की मूर्खता का प्रदर्शन किया है, उससे बढ़ कर अन्य मूर्खता नहीं हो सकती। वे अपने पाठकों से, और आने वाले विश्व से कहते हैं कि सौ वर्षों पूर्व अस्तित्व में रहने वाली 'संसद्' ने एक नियम बनाया, जिसे बदलने का अधिकार, वर्तमान युग में राष्ट्र को नहीं है; वैसा अधिकार न कभी होगा और न कभी संभव है। (राजाओं के) शासन-विषयक दैवी अधिकार को मानव जाति के सहज विश्वास पर जितनी विलक्षणताओं या मूर्खताओं के साथ थोपा गया है, श्री बर्क ने, उनके अतिरिक्त एक अन्य का अनुसंधान किया है।

उन धाराओं को जनता के सम्मुख रख कर, बर्क ने अपने लक्ष्य का तो नहीं, वरन् जनता का हित अवश्य किया है। उन धाराओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि हमें इस बात का बराबर ध्यान रखना आवश्यक है कि राज-शक्ति के द्वारा कहीं अधिकार के अतिक्रमण का प्रयत्न तो नहीं हो रहा है। इसलिए हमें चाहिए कि हम राज-शक्ति को अति की ओर जाने से रोकें।

यह बड़े आश्चर्य की बात है कि अधिकार को अपनी इच्छा से मान लेने के जिस अपराध के लिए जेम्स द्वितीय को देश-बहिष्कृत होना पड़ा, वही अपराध सर्वथा नवीन रूप में, वही संसद् करे जिसने जेम्स द्वितीय को देश से बाहर निकाला। इससे स्पष्ट हो जाता है कि क्रान्ति (सन् १६८८ ई०) के समय मनुष्य के अधिकारों को पूर्णतः समझा नहीं गया था; क्योंकि यह निश्चित है कि संसद ने आगामी पीढ़ियों के व्यक्तियों और उनकी स्वतंत्रता के ऊपर अपना जो अधिकार मान लिया वह उसी प्रकार का अत्याचारपूर्ण अधिकार था, जिसे जेम्स द्वितीय ने संसद् और राष्ट्र के ऊपर स्वीकार करना चाहा और जिसके लिए उसे देश-बहिष्कृत किया गया। उस प्रकार का अधिकार उस संसद् को सौंपा नहीं गया था, वह सौंपा जा भी नहीं सकता था; क्योंकि उसे सौंपने वाले व्यक्ति उस समय पैदा नहीं हुए थे।

• जहाँ तक सिद्धान्तों का प्रश्न है, जेम्स द्वितीय और उपर्युक्त संसद् में कोई अन्तर नहीं है; अन्तर केवल इतना है कि जेम्स द्वितीय ने जीवितों के अधिकार को हड़पना चाहा और संसद् ने उन व्यक्तियों के अधिकारों को हड़पना चाहा जो उस समय तक उत्पन्न नहीं हुए थे। इन दोनों में से किसी एक का अधिकार दूसरे के अधिकार की अपेक्षा अच्छा नहीं कहा जा सकता; इसलिए दोनों के अधिकार निष्प्रभाव और निरर्थक सिद्ध होते हैं।

किस आधार पर 'बर्क' महोदय यह सिद्ध करते हैं कि आगामी पीढ़ियों को सदा के लिए बाँध रखने का अधिकार मनुष्य को प्राप्त है? उन्होंने संसद् की उन धाराओं का उल्लेख किया है, किन्तु उन्हें इस बात का प्रमाण देना चाहिए कि इस प्रकार का अधिकार प्राचीन काल में कभी रहा है। यदि इस प्रकार का अधिकार कभी रहा है तो उसे इस समय भी रहना चाहिए; क्योंकि जिसका सम्बन्ध मनुष्य की प्रकृति से रहा है, मनुष्य उसका उन्मूलन नहीं कर सकता।

मरना मनुष्य की प्रकृति है; अस्तु, जब तक वह जन्म धारण करता रहेगा, तब तक वह मरता रहेगा। किन्तु श्री 'बर्क' ने राजनीति के क्षेत्र में एक ऐसे 'आदम' (Adam) की अवतारणा की है जिसमें सभी अनुयायी पीढ़ियाँ बद्ध हैं। इसलिए उन्हें यह सिद्ध करना चाहिए कि उनके इस 'आदम' के पास इस प्रकार का अधिकार था।

धागा जितना निर्बल होता है, उतना ही वह खिंचाव को कम सह पाता है। उसे खींचने की नीति का अनुसरण करना अत्यंत घातक है। हाँ, यदि हम उसे तोड़ना चाहते हैं तो बात दूसरी है।

यह सत्य है कि एक पीढ़ी के बने हुए नियम, प्रायः अनुगामी पीढ़ियों में भी बने रहते हैं; किन्तु वे व्यक्तियों की स्वीकृति के बल पर ही बने रहते हैं। यदि कोई नियम भंग नहीं हुआ, तो वह बना रहता है; और उसके भंग न किये जाने का तात्पर्य है उसकी स्वीकृति।

यह बात भी 'बर्क' महोदय द्वारा उल्लिखित उन धाराओं के विपक्ष में जाती है। अमर होने का प्रयत्न करने में वे धाराएँ व्यर्थ हो गयी हैं। उन्होंने आगामी पीढ़ियों की स्वीकृति पर प्रतिबन्ध लगा दिया है। उन धाराओं को जो अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता, उसे अपने अधिकार का आधार बनाकर उन्होंने

अपना अधिकार खो दिया। मनुष्य का अधिकार अमर नहीं है, और इसलिए संसद् का अधिकार अमर नहीं हो सकता।

सन् १६८८ की संसद् ने, जिस प्रकार अपने अधिकार को शाश्वत बनाने के लिए एक नियम बनाया, उसी प्रकार वह सदैव जीवित रहने का अधिकार प्राप्त करने के लिए भी कोई नियम बना सकती थी। उन धाराओं के विषय में, इसलिए इतना कहा जा सकता है कि वे केवल विधि-निर्वाह के लिए प्रयुक्त शब्द हैं, जिनके माध्यम से मानों उस संसद् ने अपने को धन्यवाद देते हुए अलंकारयुक्त पुरातन शैली में कहा, "हे संसद् ! तुम चिरायु रहो !!"

विश्व की परिस्थितियाँ निरंतर परिवर्तित हो रही हैं और साथ-ही-साथ मनुष्य के विचार बदल रहे हैं। सरकार मृतकों के लिए नहीं, वरन् जीवितों के लिए है; इसलिए सरकार के नियमों को बनाने का अधिकार जीवितों को है। सम्भव है कि एक युग में जो कार्य उचित और सुविधाजनक प्रतीत होता है, दूसरे युग में लोग उसे अनुचित और असुविधाजनक समझें। इन दशाओं में निर्णय का अधिकार किसे है, जीवितों को या मृतकों को ?

'बर्क' महोदय ने उन धाराओं के आधार पर सौ पृष्ठ रंगे हैं। ऊपर यह सिद्ध किया जा चुका है कि वे धाराएँ व्यर्थ हैं ; क्योंकि उनका निर्माण करने वाली संसद् को अनुगामी पीढ़ियों को सदा के लिए बाँध रखने का कोई अधिकार नहीं था। इसलिए यह स्पष्ट है कि उन धाराओं पर आधारित बर्क के सभी तर्क व्यर्थ हैं।

मनुष्य के प्राकृतिक और नागरिक अधिकार

अब मुझे 'बर्क' के उस विच्छृंखल रचना पर विचार करना है जिसमें, उन्होंने एक प्रकार से सरकार के कार्यों की व्याख्या की है ; किन्तु इस मान्यता के साथ कि वे जो कुछ कह रहे हैं उस पर विश्वास कर लिया जायगा, उन्होंने अपनी बात के समर्थन में कोई प्रमाण अथवा तर्क न प्रस्तुत करके जो कुछ जी में आया उसे कहा है।

किसी निर्णय पर पहुँचने के उद्देश्य से तर्क आरम्भ करने के पूर्व आधार-

स्वरूप किन्हीं निश्चित सिद्धान्तों या तथ्यों की स्वीकृति या अस्वीकृति की स्थापना आवश्यक है। 'बर्क' ने स्वभावतः फ्रांस की 'राष्ट्रीय सभा' द्वारा प्रकाशित 'मनुष्य के अधिकारों की घोषणा', जिसके आधार पर फ्रांस का संविधान बना है, की निन्दा की हैं। उन्होंने उसे मनुष्य के अधिकारों का 'क्षुद्र और कालिमा-पूर्ण पत्र' कहा है।

क्या 'बर्क' महोदय यह कहना चाहते हैं कि मनुष्य का कोई अधिकार नहीं है? फिर तो, उन्हें यह भी मानना पड़ेगा कि अधिकार जैसी वस्तु कहीं नहीं है और स्वयं उन्हें भी कोई अधिकार नहीं है। किन्तु यदि 'बर्क' के कहने का अभिप्राय यह हो कि मनुष्य के अधिकार हैं, तो प्रश्न होगा कि वे कौन-कौन-से अधिकार हैं और मूलतः मनुष्य ने उन्हें किस प्रकार प्राप्त किया।

मनुष्य के अधिकारों की महत्ता को जानने वाले जो लोग प्राचीन प्रमाणों के आधार पर तर्क करते हैं, वे प्राचीनता में पर्याप्त दूर तक न जाने की भूल कर बैठते हैं। वे प्राचीनता की पूरी दूरी तय नहीं करते, वरन् बीच के सौ या सहस्र वर्षों तक पहुँचकर रुक जाते हैं और उस समय जो कुछ किया गया, उसे आज के लिए नियम के रूप में प्रस्तुत करते हैं। किन्तु ऐसा उपयुक्त नहीं है।

यदि हम अपेक्षाकृत अधिक प्राचीनता का अध्ययन करें, तो हमें ज्ञात होगा कि उस समय नितान्त विपरीत मत प्रचलित था। यदि प्राचीनता ही प्रमाण है, तो क्रमशः सहस्रों ऐसे प्रमाण प्रस्तुत किये जा सकते हैं जो एक-दूसरे का विरोध करते हैं। किन्तु यदि हम प्राचीनता में बढ़ते चलें तो अन्त में ठीक स्थान पर पहुँचेंगे। हम प्राचीनता के उस बिन्दु पर पहुँचेंगे, जहाँ मनुष्य अपने बनाने वाले के यहाँ से सीधा पृथ्वी पर आया। वह उस समय क्या था, मनुष्य। उस समय उसकी एक मात्र संज्ञा थी 'मनुष्य'। उससे बड़ी पदवी उसे दी नहीं जा सकती है। इन पदवियों की चर्चा बाद में होगी।

अब, हम मनुष्य के जन्म और उसके अधिकारों के मूल्य तक पहुँचे हैं। उस दिन से लेकर आज तक विश्व जिन विभिन्न प्रकारों से शासित होता आ रहा है, उनसे हमें केवल इतना प्रयोजन है कि हम उनकी त्रुटियों और सुधारों का सदुपयोग कर सकें। आज से सौ या सहस्रों वर्षों पूर्व रहने वाले मनुष्य अपने युग के लिए उतने ही आधुनिक थे, जितने कि इस समय हम लोग हैं। उनके भी पूर्वज थे, उन पूर्वजों के पूर्वज थे; और भावी पीढ़ियों के लिए हम भी पूर्वज होंगे।

यदि केवल प्राचीनता का नाम जीवन के कार्यों का शासन करे तो जिस प्रकार से हम सौ या सहस्रों वर्षों पूर्व रहने वालों को प्रमाण मानते हैं, उसी प्रकार सौ या सहस्रों वर्षों बाद होने वाले लोगों के लिए हम भी प्रमाण होंगे।

वास्तविकता यह है कि प्राचीनता के विभिन्न अंश सभी को प्रमाणित करते हुए निश्चित रूप से कुछ भी प्रमाणित नहीं कर पाते हैं। एक प्रमाण दूसरे प्रमाण का विरोध करता है, और अन्त में हम सृष्टि के आदिकाल में पहुँचते हैं जहाँ मनुष्य के अधिकारों का दैवी उद्गम है। यहाँ हमारी शोध समाप्त होती है और तर्क को आधार मिलता है।

यदि सृष्टि के सौ वर्षों बाद, मनुष्य के अधिकारों के विषय में झगड़ा आरम्भ हुआ होता, तो उस समय लोग मनुष्य के अधिकारों के इसी दैवी उद्गम को प्रमाण मानते। अस्तु, हमें भी इसी को प्रमाण मानना चाहिए।

यद्यपि मैं धर्म के सम्प्रदाय विशेष के सिद्धान्तों की चर्चा करना नहीं चाहता; किन्तु यह स्पष्ट है कि ईसा मसीह की वंश-परम्परा 'आदम' तक पहुँचती है। फिर मनुष्य के अधिकारों का उद्गम मनुष्य की सृष्टि को क्यों नहीं मानते? मेरे मत से इसका यही उत्तर है कि बीच में कई सरकारें बलपूर्वक अस्तित्व में आयीं और वे धृष्टतापूर्वक मनुष्य के रूप को नष्ट करती रही हैं।

यदि प्रलय काल तक विश्व की शासन-पद्धति का आदेश देने का अधिकार किसी भी पीढ़ी को था, तो वह सृष्टि की प्रथम पीढ़ी को रहा; और यदि उस पीढ़ी ने ऐसा कोई आदेश नहीं दिया, तो बाद की पीढ़ी इस प्रकार का आदेश देने के लिए कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर सकती, और न नवीन प्रमाण ही स्थापित कर सकती है।

'अधिकार-साम्य' के दैवी सिद्धान्त का सम्बन्ध केवल जीवित व्यक्तियों से ही नहीं, वरन् क्रमिक पीढ़ियों से भी है। जहाँ तक अधिकार का प्रश्न है, प्रत्येक पीढ़ी अपनी पूर्वगामी पीढ़ियों के समान है, जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अपने समसामयिकों के समान अधिकार लेकर उत्पन्न होता है।

सृष्टि की रचना कब और किस प्रकार हुई, इसके बारे में जितने इतिहास या परम्परागत कथाएँ प्रचलित हैं, वे चाहे शिक्षित संसार की उपज हों या अशिक्षित संसार की; वे चाहे किसी मत या विश्वास के विषय में एक दूसरे से भिन्न हों; किन्तु वे सभी मनुष्य के समान अधिकार को एक स्वर से स्वीकार

करते हैं। मनुष्य के समान अधिकार का अर्थ है कि सभी मनुष्य एक कोटि के हैं। वे सदैव समान पैदा होते हैं और उनके प्राकृतिक अधिकार समान हैं। सृष्टि का कार्य है संतति के रूप में नव-निर्माण, जिसे वह पीढ़ियों के माध्यम से सम्पन्न करती है। अस्तु, विश्व में उत्पन्न होने वाला प्रत्येक शिशु सीधे ईश्वर से अस्तित्व प्राप्त करता है। उसके लिए विश्व उतना ही नवीन है, जितना नवीन वह उस व्यक्ति के लिए था जो सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ होगा; और उसके प्राकृतिक अधिकार उसी आदिम व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकार के समान होंगे।

मूसा ने सृष्टि का जो इतिहास बताया है, चाहे उसे दैवी प्रमाण माना जाय या केवल ऐतिहासिक, वह मनुष्य के अधिकारों की एकता या समानता का स्पष्ट शब्दों में समर्थन करता है। यथा: 'ईश्वर ने कहा कि अपनी प्रतिमा के अनुरूप हम मनुष्य का निर्माण करें; अपनी प्रतिमा के अनुरूप उसने मनुष्य को बनाया और उन्हें नर और नारी का रूप दिया।' इस कथन में नर और नारी के भेद की ओर संकेत हैं, किसी अन्य भेद की ओर नहीं। यदि इसे दैवी प्रमाण न माना जाय तो कम-से-कम ऐतिहासिक मानना ही होगा। इससे स्पष्ट हो जाता है कि मनष्य की समानता का सिद्धान्त नवीन नहीं, वरन् सबसे पुरातन सिद्धांत है।

यह भी द्रष्टव्य है कि विश्व के सभी धर्मों का आधार है मनुष्य की एकता। उनके अनुसार सभी मनुष्य एक कोटि के हैं। मृत्यु के बाद स्वर्ग में, नरक में अथवा जहाँ कहीं भी मनुष्य का अस्तित्व माना जाय, उनके भेद केवल अच्छाइयों और बुराइयों के आधार पर होंगे। व्यक्तियों में नहीं, वरन् अपराधों के अनुसार वर्ग का निर्धारण करके सरकार भी इसी सिद्धांत को मानती है।

उपर्युक्त सत्य सर्वोपरि सत्य है, और उसे मान कर काम करने में हमारा महान हित है। इस सत्य के प्रकाश में यदि मनुष्य को देखा जाय और प्रत्येक व्यक्ति को इस बात की शिक्षा दी जाय कि वह अपने को इसी प्रकाश में देखे, तो सृष्टि-कर्ता अथवा संसार के प्रति अपने कर्त्तव्यों को वह पूर्णतः समझ पायेगा। किन्तु, जब वह अपने उद्गम को भूल जाता है अथवा यों कहें कि जब वह अपने जाति और वंश को भूल जाता है, केवल उसी समय वह दुराचारी बनता है।

यूरोप के प्रत्येक देश की वर्तमान सरकार की बुराइयों में से यह कम बुराई

नहीं है कि मनुष्य, मनुष्य के रूप में अपने निर्माण-कर्ता से बहुत दूर हटा दिया गया है और बीच के उस कृत्रिम अन्तर को कतिपय अवरोधों से भर दिया गया है। मनुष्य को उन अवरोधों में से होकर ही आगे बढ़ना है।

'बर्क' महोदय ने मनुष्य और उसके स्रष्टा के बीच कई अवरोध प्रस्तुत किये हैं। वे लिखते हैं:—"हम ईश्वर से डरते हैं; राजाओं को आदरपूर्ण भय की दृष्टि से देखते हैं; संसद् के प्रति स्नेह रखते हैं; न्यायाधीश के प्रति कर्त्तव्यनिष्ठ रहते हैं; पुरोहित का आदर करते हैं और कुलीन जनों का सम्मान करते हैं।" 'बर्क' महोदय 'वीरों' (Chivalry) को भूल गये। 'पीटर' (Peter) का नाम भी वे कदाचित् भूल गये।

मनुष्य का कर्त्तव्य इतने अवरोधों से भरा हुआ नहीं है कि अपने वास्तविक कर्त्तव्य का पालन करने के लिए उसे इतने अवरोधों को एक-एक कर के पार करना पड़े। मनुष्य का कर्त्तव्य अत्यधिक सरल है। उसके केवल दो पक्ष हैं—ईश्वर के प्रति और पड़ोसी के प्रति। ईश्वर के प्रति अपना कर्त्तव्य प्रत्येक व्यक्ति को समझना चाहिए; और पड़ोसी के प्रति उसी प्रकार का व्यवहार उसे करना चाहिए, जिस प्रकार का व्यवहार वह अपने प्रति चाहता है। यदि सत्ताधारी अपना काम ठीक से करेंगे तो उनका आदर अवश्य होगा; किन्तु यदि वे अपना काम ठीक से नहीं करेंगे तो लोग उनसे घृणा करेंगे। जिन्हें कोई अधिकार सौंपा नहीं गया है, वरन् जिन्होंने अधिकार लिया है, विवेकशील संसार में उन्हें मान्यता नहीं मिल सकती।

अब तक मैंने मनुष्य के प्राकृतिक अधिकारों की आंशिक चर्चा की है; अब हम मनुष्य के नागरिक अधिकारों पर विचार कर और यह देखें कि उनका उद्गम-स्रोत कहाँ है। मनुष्य समाज में इसलिए सम्मिलित नहीं हुआ कि उसकी स्थिति पहले की अपेक्षा और बुरी हो जाय; और न इसलिए कि उसके अधिकार पहले की अपेक्षा कम हो जायं; वरन् इसलिए कि उसके निजी अधिकारों को अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षा प्राप्त हो सके। उसके प्राकृतिक अधिकार ही उसके नागरिक अधिकारों के आधार हैं। किन्तु इस भेद के यथार्थ बोध के लिए इन प्राकृतिक और नागरिक अधिकारों के भिन्न-भिन्न लक्षणों का ज्ञान आवश्यक है।

प्राकृतिक अधिकारों का सम्बन्ध मनुष्य की सत्ता से है। इनके अन्तर्गत बौद्धिक अधिकार या मानसिक अधिकार और उन सभी कार्यों को करने का

अधिकार है, जिन्हें हम व्यक्तिगत रूप से अपनी सुविधा और सुख के लिए करते है; किन्तु जो दूसरों के प्राकृतिक अधिकारों के लिए हानिप्रद नहीं है। नागरिक-अधिकार मनुष्य के वे अधिकार हैं, जिन्हें वह समाज का सदस्य होने के नाते प्राप्त करता है।

प्रत्येक नागरिक अधिकार का आधार कोई-न-कोई ऐसा प्राकृतिक अधिकार होता है जो व्यक्ति में पहले से रहता है, किन्तु उसका उपभोग करने में व्यक्तिगत शक्ति सभी दशाओं में पूर्ण समर्थ नहीं होती। सुरक्षा और प्रतिरक्षा विषयक सभी अधिकार इसी प्रकार के हैं।

इस संक्षिप्त विवेचना के आधार पर हम मनुष्य के प्राकृतिक अधिकारों के दो भेदों को स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं। प्राकृतिक अधिकारों का एक वर्ग वह है, जिसे समाज में सम्मिलित होने पर भी मनुष्य अपने पास रखता है और छोड़ता नहीं; दूसरा वर्ग वह है, जिसे वह समाज का सदस्य होने के नाते समाज को सौंप देता है।

जिन प्राकृतिक अधिकारों को वह अपने पास बचा रखता है वे ऐसे अधिकार हैं जो स्वयं पूर्ण हैं और जिन्हें कार्यान्वित करने की उपयुक्त शक्ति भी व्यक्ति में होती है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, बौद्धिक अधिकार या मानसिक अधिकार इसी प्रकार के हैं, और धर्म भी उन अधिकारों में से एक है।

वे प्राकृतिक अधिकार जिन्हें व्यक्ति अपने पास बचा कर नहीं रखता, ऐसे अधिकार हैं जो स्वयं पूर्ण हैं; किन्तु व्यक्ति में उन्हें कार्यान्वित करने की शक्ति अपूर्ण है। अस्तु, उनसे व्यक्ति का काम पूरा नहीं होता। अपने प्राकृतिक अधिकार के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति को अपना निर्णय करने का अधिकार है, और जहाँ तक मस्तिष्क के अधिकार का प्रश्न है, वह अपना निर्णय करने का अधिकार नहीं छोड़ता; किन्तु निर्णय करके ही वह क्या करेगा, यदि उस निर्णय को कार्यान्वित करने की शक्ति उसमें नहीं है? इसलिए वह अपना अधिकार समाज को सौंप देता है, और अपनी शक्ति के अतिरिक्त, उससे कहीं अधिक, समाज की शक्ति का अवलम्बन प्राप्त करता है। समाज व्यक्ति को कुछ दान नहीं देता। समाज में प्रत्येक व्यक्ति ने अपना अधिकार-धन लगाया है। परिणामस्वरूप समाज से जो लाभ होता है, व्यक्ति उसमें से अपना अंश प्राप्त करता है।

ऊपर की चर्चा से तीन बातें स्पष्ट हो जाती हैं, जो इस प्रकार हैं:—

१—प्रत्येक नागरिक अधिकार व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकार से उत्पन्न होता है या यों कहें कि किसी प्राकृतिक अधिकार के विनिमय में हमें कोई नागरिक अधिकार प्राप्त होता है।

२—समाज-शक्ति, अपने वास्तविक रूप में, मनुष्य के नैसर्गिक (प्राकृतिक) अधिकारों के उस विशिष्ट वर्ग का संचयन (संकलन या केन्द्रीकरण) है, जो व्यक्तिगत-शक्ति के अर्थ में अपर्याप्त होता है तथा जिसके द्वारा व्यक्ति विशेष का कार्य सिद्ध नहीं होता। किन्तु अधिकारों का वही वर्ग जब समाज में केन्द्रीभूत कर दिया जाता है तो वह प्रत्येक व्यक्ति का प्रयोजन सम्पन्न करने में समर्थ होता है।

३—जिन प्राकृतिक अधिकारों को कार्यान्वित करने की शक्ति व्यक्ति में नहीं होती, उनकी राशि से उत्पन्न शक्ति का प्रयोग व्यक्ति के उन अधिकारों के ऊपर नहीं किया जा सकता जिन्हें व्यक्ति ने अपने पास बचा रखा है और जिनका निष्पादन करने की शक्ति उसमें पूर्ण है।

मैंने संक्षेप में प्राकृतिक व्यक्ति से लेकर सामाजिक व्यक्ति तक, मनुष्य के विकास की चर्चा की; और व्यक्ति ने जिन प्राकृतिक अधिकारों को अपने पास बचा रखा है, उनके तथा जिन्हें उसने समाज को देकर नागरिक अधिकार प्राप्त किये हैं उन प्राकृतिक अधिकारों के लक्षणों को स्पष्ट किया अथवा स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। अब हम इन सिद्धांतों के प्रकाश में सरकारों पर विचार करें।

[सरकार के गुण]

यदि हम विश्व के इतिहास पर दृष्टिपात करें, तो हम अत्यन्त सुगमता-पूर्वक समाज अथवा सामाजिक समझौते से उत्पन्न हुई सरकारों का अन्य प्रकार की सरकारों से अन्तर जान सकेंगे। किन्तु इसे अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिए अच्छा होगा कि हम उन कतिपय उद्गम-स्रोतों का परिचय प्राप्त कर लें, जिनसे सरकारों की उत्पत्ति हुई है और जिन पर वे आधारित हैं।

उन सभी उद्गम-स्रोतों को हम तीन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं:—

प्रथम वर्ग से उत्पन्न हुई महन्ती सरकार; दूसरे वर्ग ने जन्म दिया विजेताओं की सरकार को और तीसरा बना बुद्धिवादी सरकार का स्रोत।

"जब कुछ चालाक मनुष्यों ने सिद्धों के माध्यम से ईश्वर के साथ संपर्क स्थापित करने का बहाना किया, तो विश्व पूर्णतः अन्ध-विश्वास द्वारा शासित रहा। सिद्धों से पूछा जाता था और उनसे जो कुछ कहलाया जाता था, वही क़ानून होता था। जब तक विश्व में अन्ध-विश्वास का बोलबाला था, तब तक इस प्रकार की सरकारों का अस्तित्व रहा।

इसके अनन्तर विजेताओं का युग आया। विजयी विलियम के समान, वे शक्ति के बल पर शासन करते थे और तलवार ने राजदण्ड की संज्ञा प्राप्त की। इस प्रकार की सरकारें तब तक अस्तित्व में रहती हैं, जब तक इन्हें स्थापित करने वाली शक्ति बनी रहती है। प्रत्येक प्रकार की शक्ति को अपने अनुकूल बनाने के उद्देश्य से उन विजेता शासकों ने बल और छल का गठबन्धन किया तथा 'दैवी अधिकार' (Divine Right) की आराध्य-प्रतिमा गढ़कर उसके द्वारा लोगों को प्रभावित करने का जाल रचा। आगे चल कर उस प्रतिमा ने पोप का, जो अपने को आध्यात्मिक और लौकिक कहता है, अनुकरण करके, ईसाई धर्म के प्रवर्तक के विरोध में एक नूतन प्रतिमा का स्वरूप धारण किया जिसे 'धर्म और राज्य' (Church and State) कहा गया।

जब मैं मनुष्य के प्राकृतिक गौरव पर विचार करता हूँ, तो छल और शक्ति द्वारा मनुष्य-जाति का शासन करने के प्रयत्न पर मुझे क्रोध आता है, और उन लोगों से भी अप्रसन्न हुए बिना मैं नहीं रह सकता, जिन्हें मूर्ख और दुष्ट मानकर उनका शासन किया जाता है।

अब हम उन सरकारों का परीक्षण करें जो अन्धविश्वास और विजय के द्वारा स्थापित नहीं की जातीं, वरन् जो समाज से उत्पन्न होती हैं।

स्वतन्त्रता के सिद्धान्तों को स्थापित करने की दिशा में इस कथन को एक महान प्रगति माना जाता है कि सरकार शासक और शासितों के बीच एक समझौता है। किन्तु यह कथन सत्य नहीं हो सकता; क्योंकि इस प्रकार, कार्य का अस्तित्व कारण से पूर्व मान लिया जाता है। इतना तो निश्चित है कि मनुष्य की सृष्टि के बाद सरकार की सृष्टि हुई होगी और एक समय ऐसा रहा जब कि सरकारें नहीं थीं। इसलिए आरम्भ में उपर्युक्त प्रकार का समझौता करने के लिए कोई शासक नहीं रहे।

वास्तविकता, अतः, यह होनी चाहिए कि सभी मनुष्यों ने अपने व्यक्तिगत एवं पूर्ण अधिकार के साथ परस्पर सरकार स्थापित करने का समझौता किया। केवल इसी पद्धति से सरकारों को अस्तित्व में आने का अधिकार है, और यही एक मात्र सिद्धान्त है जिस पर उनका अस्तित्व बना रहना चाहिए।

सरकार क्या है और इसे क्या होना चाहिए, इस बात को सम्यग्रूपेण समझने के लिए इसके उद्गम पर विचार करना आवश्यक है। इस प्रकार हम सुगमतापूर्वक यह जान सकेंगे कि सरकारें या तो जनता के बीच से उत्पन्न हुई होंगी अथवा उसके ऊपर लादी गयी होंगी। 'बर्क' महोदय ने इस प्रकार का कोई भेद स्पष्ट नहीं किया।

'बर्क' किसी वस्तु के मूल तक जाकर उसका परीक्षण नहीं करते। इसीलिए वे प्रत्येक वस्तु की चर्चा का उलझा देते हैं। किन्तु भविष्य में इंगलैण्ड और फ्रांस के संविधानों की तुलनात्मक समीक्षा करने का अपना अभिप्राय उन्होंने प्रकट किया है।

चुनौती देकर 'बर्क' ने इस विषय को विवादास्पद बना दिया है। अतः मैं उनकी चुनौती स्वीकार कर रहा हूँ। बड़ी चुनौतियों के माध्यम से ही महान सत्य प्रकट हुआ करता है। मैं इस चुनौती को बड़ी तत्परता के साथ स्वीकार करता हूँ; क्योंकि इस प्रकार मुझे समाज से उत्पन्न होने वाली सरकारों की चर्चा करने का अवसर प्राप्त होता है।

किन्तु, सबसे पहले हमें यह निश्चित कर लेना चाहिए कि 'संविधान' का तात्पर्य क्या है। केवल 'संविधान' शब्द का प्रयोग कर लेना पर्याप्त नहीं है। हमें इस शब्द का प्रामाणिक अर्थ निश्चित कर लेना चाहिए।

'संविधान' केवल नाम की वस्तु नहीं, वरन् एक तथ्य है। इसका अस्तित्व काल्पनिक नहीं, वरन् यथार्थ है। संविधान सरकार का पूर्वगामी होता है और सरकार केवल संविधान की सृष्टि है। किसी देश का संविधान उसकी सरकार का कार्य नहीं, वरन् उस सरकार का निर्माण करने वाली जनता का कार्य है। संविधान यह तय करता है कि सरकार की स्थापना किन सिद्धान्तों पर होगी, उसकी व्यवस्था किस प्रकार की जायगी, उसके अधिकार क्या होंगे, निर्वाचन-पद्धति क्या होगी; 'संसद्' का कार्य-काल क्या होगा, सरकार के 'कार्यपालिका-विभाग' (Executive part) के अधिकार क्या होंगे। संक्षेप में, हम यह

कह सकते हैं कि संविधान में असैनिक सरकार (Civil govt) और उसके सिद्धान्तों की, जिनके अनुसार उसे कार्य करना है और जिनमें उसे बद्ध रहना है, सम्पूर्ण व्यवस्था की जाती है।

अस्तु, किसी देश के संविधान और उसकी सरकार में वही सम्बन्ध है जो उस सरकार द्वारा बाद में बनाये हुए कानून और उसके अनुसार काम करने वाले न्याय-विभाग में है।। न्याय-विभाग न तो कानून बनाता है और न उसे बदल सकता है। वह केवल बने हुए कानूनों के अनुसार काम करता है। इसी प्रकार सरकार संविधान द्वारा शासित होती है।

[कुलीन-तन्त्र]

पदवियाँ केवल उपनाम हैं और प्रत्येक उपनाम एक पदवी है। जहाँ तक उपनामों या पदवियों का सम्बन्ध है, उनमें कोई दोष नहीं है; किन्तु उनके कारण मनुष्य के चरित्र में एक प्रकार का आडम्बर उत्पन्न हो जाता है जो उसे पतन की ओर ले जाता है। इन पदवियों के कारण मनुष्य महान कामों के लिए अयोग्य हो जाता है, और छोटी-छोटी बातों में स्त्रियों का भद्दा अनुकरण करने लगता है। चरित्र में जब इस प्रकार का आडम्बर उत्पन्न हो जाता है, तो पुरुष लड़कियों एवं बच्चों के समान सुन्दर वस्त्रों की चर्चा करने लगता है। एक प्राचीन लेखक ने लिखा है कि जब मैं शिशु था तब मैंने शिशु के समान सोचा; किन्तु जब मैं बड़ा हो गया तो मैंने बचपन की चीज़ों को छोड़ दिया।

फ्रांस के उन्नत मस्तिष्क ने पदवियों की बुराइयों को दूर कर दिया, यह अच्छा ही हुआ। जिस प्रकार बड़े होने पर शैशवावस्था के वस्त्र व्यर्थ हो जाते हैं, उसी प्रकार फ्रांस की उन्नत मानवता के लिए 'काउन्ट' और 'ड्यूक' की पदवियाँ व्यर्थ हो गयीं। इन पदवियों को हटाकर फ्रांस ने सबको सम धरातल पर ला दिया ऐसी बात नहीं है, वरन् उसने सबका उत्थान कर दिया। फ्रांस ने वामन (बौने) को मिटा कर उसके स्थान पर मनुष्य को खड़ा कर दिया। 'ड्यूक', 'काउन्ट' तथा 'अर्ल' जैसे अर्थहीन शब्दों में अब कोई आकर्षण नहीं रहा। जिन्होंने इन पदवियों को धारण कर रखा था, उन्होंने भी अब इन्हें निरर्थक समझ कर त्याग दिया है।

मनष्य का शुद्ध मस्तिष्क अपने प्राकृतिक आश्रय अर्थात् समाज की ओर

जाने को अत्यन्त उत्सुक है। अतः समाज से दूर करने वाले पदवियों के इन खिलौनों को अवरोध समझ कर वह उन्हें अनादर की दृष्टि से देखने लगा है। पदवियाँ मनुष्य के आनन्द की परिधि को सीमित कर देती हैं। पदवी धारण करने वाला व्यक्ति स्पृहणीय मानव-जीवन से दूर, एक छोटे-से शब्द के कारागार में बन्द हो जाता है।

अस्तु, यह आश्चर्य की बात नहीं है कि फ्रांस ने पदवियों की प्रथा उठा दी। विश्व के किसी भाग में उन पदवियों का रहना, वास्तव में आश्चर्यजनक है। क्योंकि पदवियाँ हैं क्या? उनका मूल्य क्या है और उनका परिणाम क्या होता है? हम जब एक 'न्यायाध्यक्ष' अथवा 'सेनापति' के बारे में सोचते या कुछ कहते हैं तो हमारे मस्तिष्क में उनके किसी कार्य या चरित्र की बात उठती है। 'न्यायाध्यक्ष' का विचार आते ही अथवा उसके बारे में सोचते ही उसकी 'गम्भीरता' का भाव भी मस्तिष्क में घूम जाता है; उसी प्रकार जब हम 'सेनापति' की चर्चा करते हैं तो उसकी वीरता की बात मस्तिष्क में जाग उठती है। किन्तु जब हम किसी शब्द को केवल 'पदवी' के रूप में प्रयुक्त करते है तो उसके द्वारा किसी अर्थ का बोध नहीं होता है।

इसलिए हम उन 'पदवियों' का सम्मान किस प्रकार करें, जिनसे किसी अर्थ का बोध नहीं होता? मनुष्य की कल्पना ने कतिपय विचित्र रूपों और चरित्रों की सृष्टि की है जिनमें से किसी का शरीर मानव और अश्व के शरीरांशों से बना है, तो किसी वन-देवता का आधा शरीर मनुष्य का है और आधा बकरे का है। परियों की कहानियों में भी हम कल्पना-विलास का दर्शन करते हैं। किन्तु 'पदवियों' की सृष्टि इन सभी सृष्टियों से अपूर्व है।

यदि सम्पूर्ण देश में इन पदवियों के प्रति तिरस्कार की प्रवृत्ति हो, तो उनका मूल्य स्वयं नष्ट हो जाय और कोई व्यक्ति उन्हें स्वीकार न करे। सार्वजनिक मत ही उन्हें मूल्य देता हैं या उनका मूल्य छीन सकता है। पदवियों को हटाने की आवश्यकता ही नहीं है। जिस क्षण समाज एक स्वर से उनकी हँसी उड़ाने लगता है, उसी क्षण वे स्वयं लुप्त हो जाती हैं। इन काल्पनिक पदवियों को धारण करने वाले व्यक्ति अब यूरोप के प्रत्येक भाग में प्रत्यक्ष रूप से कम होने लग गये हैं, और बौद्धिक संसार की प्रगति के साथ-साथ वह दिन शीघ्र आने वाला है जब कि कोई व्यक्ति 'पदवी' को स्वीकार नहीं करेगा।

एक समय था जब कि, जिसे हम कुलीन वर्ग (Nobility) कहते हैं, उसके निम्नतम स्तर के लोगों की वह प्रतिष्ठा थी जो आज के युग में उस वर्ग के उच्चतम स्तर के लोगों की नहीं है। आधुनिक 'ड्यूक' की अपेक्षा साहसिक कार्य की खोज में 'क्रिस्टेण्डम' से हो कर जाने वाले सशस्त्र व्यक्ति को लोग अधिक श्रद्धा से देखा करते थे। संसार ने इस मूर्खता के पतन का दर्शन कर लिया। इसका पतन इसलिए हुआ कि सर्वत्र इसकी खिल्ली उड़ायी जाने लगी। पदवियों का प्रहसन भी इसी प्रकार की दशा को प्राप्त होगा।

फ्रांस के देशभक्तों ने उचित समय पर इस बात को समझ लिया कि समाज में श्रेणी और प्रतिष्ठा के नवीन आधार होने चाहिए। पुराने आधार आज के युग के लिए व्यर्थ हो चले हैं। पदवियों के काल्पनिक आधार के स्थान पर अब उन्हें चरित्र के ठोस आधार पर खड़ा होना चाहिए। इसी ध्येय से फ्रांस ने पदवियों को बलि-वेदी पर लाकर बुद्धि-देवता के निमित्त उन्हें होम कर दिया।

'पदवियों' की मूर्खता का सम्बन्ध यदि किसी अन्य बुराई से न होता, तो गम्भीरता एवं विधि-पूर्वक उन्हें नष्ट करने की आवश्यकता न पड़ी होती, जैसा कि फ्रांस की 'राष्ट्रीय सभा' ने किया। इसीलिए 'कुलीन जनों' के चरित्र और प्रकृति की और छान-बीन आवश्यक हैं।

कुलीनों का यह वर्ग विजेताओं द्वारा स्थापित सरकारों से उत्पन्न हुआ। मूलतः यह वर्ग विजेताओं द्वारा स्थापित सैनिक सरकारों का समर्थन करने वाला अथवा उसे बल प्रदान करने वाला सैनिक वर्ग था; और जिस उद्देश्य से उसकी उत्पत्ति हुई थी उसीको लक्ष्य में रख कर इस वर्ग की परम्परा को बनाये रखने के लिए इसके परिवारों में 'ज्येष्ठत्व का नियम' आरम्भ करके वंश की कनिष्ठ शाखाओं को पैतृक सम्पत्ति के अधिकारों से वंचित कर दिया गया।

इस उपर्युक्त तथ्य में 'कुलीन जनों' की प्रकृति और उनका चरित्र स्वयं स्पष्ट है। यह कानून प्रकृति के प्रत्येक कानून के विरुद्ध है, और प्रकृति स्वयं इसके विनाश की मांग करती है। पारिवारिक न्याय स्थापित करने पर 'शिष्टजनों' का यह वर्ग स्वयं समाप्त हो जायगा। ज्येष्ठत्व के उपर्युक्त नियम के द्वारा छः संतानों के परिवार में पांच अपने भाग्य पर अथवा यों कहिए कि उनके जीवन में जो कुछ विपत्तियाँ पड़ें उन्हें भोगने के लिए छोड़ दी जाती हैं; उन्हें पैतृक संपत्ति का अधिकार नहीं रहता। इस वर्ग के परिवार में केवल एक सन्तान होती है, शेष

नष्ट होने के लिए उत्पन्न होती हैं।

मानव-चरित्र का प्रत्येक अप्राकृतिक तत्व अल्प या अधिक मात्रा में समाज को प्रभावित करता है। 'शिष्ट जनों' की यह प्रथा भी, इसी प्रकार समाज को प्रभावित करती है। ज्येष्ठ सन्तानों को छोड़ कर जिन सभी सन्तानों को यह वर्ग स्वीकार नहीं करता, वे समान्यतः जनता द्वारा पालित होने के लिए, अनाथों के समान, समाज पर छोड़ दी जाती हैं। किन्तु उनके पालन-पोषण का व्यय अनाथ शिशुओं के पालन-व्यय की अपेक्षा कहीं अधिक होता है। सरकारों अथवा दरबारों में अनावश्यक पदों का निर्माण करके उन्हें नियुक्त किया जाता है और उनका भार जनता सँभालती है।

माता-पिता को अपनी कनिष्ठ सन्तानों के प्रति किस प्रकार का वात्सल्य हो सकता है ? प्रकृति के अनुसार वे उनकी सन्ताने हैं, विवाह के अनुसार वे उनकी सम्पत्ति की अधिकारिणी हैं; किन्तु कुलीन वर्ग के अनुसार वे जारज और अनाथ हैं। एक ओर तो वे अपने माता-पिता के रक्त हैं और दूसरी ओर कुछ भी नहीं हैं। अस्तु, इसलिए कि सन्तानों को माता-पिता मिलें, माता-पिता को सन्तानें मिलें, परस्पर सम्बन्ध स्थापित हो, समाज को मनुष्य मिले तथा इस विचित्र वर्ग का समूल नाश हो जाय, फ्रांस के संविधान ने 'ज्येष्ठत्व' के नियम को समाप्त कर दिया।

यहाँ तक हम लोगों ने 'कुलीन वर्ग' पर प्रधानतः एक दृष्टिकोण से विचार किया। अब हम दूसरे दृष्टिकोण से इस पर विचार करें। किन्तु हम पारिवारिक अथवा सार्वजनिक चाहे किसी भी दृष्टिकोण से इस पर विचार करें, प्रत्येक दशा में इसकी बुराई ही प्रकट होगी।

अन्य देशों की अपेक्षा फ्रांस के कुलीनवर्ग में एक लक्षण कम है। यहाँ के विधान-मण्डल में, आनुवंशिक सदस्यता प्राप्त कुलीनों की कोई सभा नहीं है। इंगलैण्ड की राज्य-सभा (House of Lords) को एम० डेलेफाइटल (M. Delafayette) ने 'कुलीनों की सभा' के नाम से पुकारा था ; फ्रांस में इस प्रकार की कोई सभा नहीं है। अस्तु, अब हम उन कारणों पर विचार करें जिनके नाते फ्रांस के संविधान ने इस प्रकार की किसी सभा को अस्वीकार कर दिया है।

पहला और सर्वप्रथम कारण यह है कि यह कुलीन-वर्ग पारिवारिक अत्याचार और अन्याय पर आधारित है।

दूसरा कारण यह है कि इस वर्ग के व्यक्ति एक राष्ट्र के 'विधान-मण्डल' के सदस्य होने के लिए सर्वथा अयोग्य हैं। अपने छोटे भाई-बहनों और अन्य सभी सम्बन्धियों को कुचलते हुए वे जीवन का आरम्भ करते हैं, और भविष्य में ऐसा ही आचरण करने की शिक्षा प्राप्त करते हैं। जो व्यक्ति परिवार की अन्य सभी सन्तानों के अधिकारों को हड़प लेता है या अहंकारपूर्वक उन्हें कुछ सम्पत्ति दानस्वरूप देता है, वह न्याय अथवा प्रतिष्ठा की कौन-सी भावना लेकर 'विधान-मण्डल' में प्रवेश कर सकता है ?

'विधान-मण्डल' की आनुवंशिक सदस्यता की बात न्यायाध्यक्ष अथवा 'जूरी' के पद को आनुवंशिक मान लेने के समान ही असंगत है। जिस प्रकार यह कहना मूर्खता है कि गणितज्ञ आनुवंशिक होते हैं, उसी प्रकार विधान-मण्डल की आनुवंशिक सदस्यता का विचार भी मूर्खतापूर्ण है। जिस तरह राजदरबारों में आनुवंशिक राजकवि हँसी के पात्र होते हैं, उसी प्रकार विधान-मण्डल के आनवंशिक सदस्य भी हास्यास्पद हैं।

जो किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं हैं, ऐसे मनुष्यों की सभा का विश्वास किसी को नहीं करना चाहिए।

यह वर्ग विजेताओं द्वारा स्थापित सैनिक-सरकारों के बर्बर सिद्धान्तों को बने रहने में सहायता प्रदान कर रहा है तथा मनुष्यों को मनुष्य की सम्पत्ति मान कर अपने वैयक्तिक अधिकार द्वारा उनका शासन करने के नीच विचार को प्रश्रय देता है।

इस वर्ग की प्रवृत्ति मनुष्य जाति को नष्ट करने की है। प्रकृति की सार्वलौकिक व्यवस्था के अनुसार, हम यह जानते हैं और यहूदियों के उदाहरण से यह बात सिद्ध हो चुकी है, कि यदि मनुष्य का वर्ग-विशेष सामान्य समाज से विच्छिन्न होकर निरन्तर आपस में ही विवाह-सम्बन्ध स्थापित करता रहे, तो वह संख्या में अत्यन्त क्षीण हो जायगा।

यह वर्ग स्वयं अपने कथित उद्देश्य को भी क्षति पहुँचाता है और अवसर आने पर मनुष्य की कुलीनता के ठीक विपरीत कार्य करता है। बर्क 'कुलीन' लोगों की चर्चा करते हैं। मैं पूछता हूँ कि इन 'कुलीनों' की कुलीनता क्या है? विश्व के सर्वोत्तम चरित्र प्रजातन्त्रीय धरातल पर अवतरित हुए हैं। कुलीन तन्त्र प्रजातन्त्र की समानता नहीं कर सका है।

प्राकृतिक कुलीन के समक्ष ये कृत्रिम 'कुलीन' वामन सिद्ध होते हैं।

[धार्मिक स्वतंत्रता]

फ्रांस के संविधान ने धार्मिक विषयों में व्यक्तिगत स्वतंत्रता प्रदान करने की 'सहिष्णुता' (Tolerance) और 'असहिष्णुता' (Intolerance) को समाप्त करके अन्तःकरण की पूर्ण स्वतंत्रता स्थापित की है।

धर्म-विषयक वैयक्तिक स्वतन्त्रता प्रदान करने की सहिष्णुता, असहिष्णुता का विलोम नहीं; वरन् प्रकारान्तर से उसी का रूप है। दोनों स्वेच्छाचार हैं। एक में अन्तःकरण की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगाने का अपना अधिकार माना जाता है, तो दूसरी में अन्तःकरण की स्वतन्त्रता की स्वीकृति देने का अपना अधिकार माना जाता है।

किन्तु उपर्युक्त 'सहिष्णुता' की परीक्षा अन्य प्रकार से की जा सकती है। मनुष्य अपनी नहीं, वरन् अपने निर्माता की उपासना करता है और अन्तःकरण की स्वतन्त्रता का दावा, वह अपनी सेवा के लिए नहीं, वरन् ईश्वर की सेवा के लिए करता है। उपासना के क्षेत्र में एक उपासक होता है और दूसरा उपास्य ; एक मर्त्य होता है, दूसरा अमर्त्य।

अस्तु, उपर्युक्त सहिष्णुता का अधिकार-क्षेत्र मनुष्य और मनुष्य के बीच नहीं, चर्च और चर्च के बीच नहीं, एक धर्म और दूसरे धर्म के बीच नहीं, बल्कि ईश्वर और मनुष्य के बीच अर्थात् उपास्य और उपासक के बीच पड़ता है ; और जिस अधिकार द्वारा वह किसी मनुष्य को उपासना करने की छूट प्रदान करती है, उसी अधिकार के द्वारा वह धृष्टता एवं पाखण्डपूर्वक उस सर्वशक्तिमान उपास्य को उपासना स्वीकार करने की आज्ञा भी प्रदान करती है।

यदि संसार में कोई ऐसा विधेयक प्रस्तुत किया जाय जिसके द्वारा 'ईश्वर को एक यहूदी अथवा एक तुर्क की उपासना स्वीकार करने की स्वतन्त्रता प्रदान की जाय' या 'ईश्वर को वैसा करने से रोका जाय,' तो सभी मनुष्य चौंक उठेंगे और इसे ईश्वर-निन्दा समझेंगे। चारों ओर कोलाहल मच जायगा। किन्तु उस समय धार्मिक विषयों में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता प्रदान करने की 'सहिष्णुता'-विषयक बात सबके सामने नग्न रूप में प्रस्तुत हो जाती। फिर भी, उसका सम्बन्ध केवल मनुष्य से होने के नाते वास्तविकता में कोई अन्तर

नहीं पड़ता ; क्योंकि उपासना में उपासक और उपास्य का सम्बन्ध कभी टूटता नहीं है।

फिर, मानव-आत्मा और उसके निर्माता के बीच में आनेवाला कोई कौन होता है ? चाहे वह राजा हो, धर्माध्यक्ष हो अथवा 'संसद्' हो; उपासक और उपास्य के बीच में दखल देने का उसे कोई अधिकार नहीं है। सबको अपना-अपना कार्य करना चाहिए। यदि किसी व्यक्ति का विश्वास दूसरे व्यक्ति के विश्वास से भिन्न है, तो वह इस बात का प्रमाण है कि वह दूसरा व्यक्ति उसमें विश्वास नहीं करता जिसमें पहला व्यक्ति विश्वास करता है। दोनों में से कौन ठीक है और कौन ग़लत यह तय करना संसार में किसी के वश की बात नहीं है।

यदि प्रत्येक व्यक्ति से अपने धर्म-मत की परीक्षा करने को कहा जाय, तो कोई भी धर्म बुरा न सिद्ध होगा। किन्तु, यदि उनसे एक दूसरे के धर्म-मतों की परीक्षा करने को कहा जाय तो विश्व में कोई भी धर्म दोष-रहित न मिलेगा। इसलिए जहाँ तक धर्म की विभिन्न संज्ञाओं का प्रश्न है, या तो सारा संसार ठीक है या सारा का सारा ग़लत।

इसके अतिरिक्त कि धर्म की कई संज्ञाएँ हैं और सार्वलौकिक मानव-परिवार से सर्व-उपास्य ईश्वर की ओर इसकी गति है, इसके माध्यम से मनुष्य अपने भाव-अर्घ्य को अपने निर्माता तक पहुँचाता है। यद्यपि व्यक्ति-भेद से इन अर्घ्यों में अन्तर सम्भव है, किन्तु ईश्वर प्रत्येक मानव का कृतज्ञतापूर्ण अर्घ्य स्वीकार करता है।

डरहम (Durham) या विनचेस्टर (Winchester) के पादरी अथवा प्रधान धर्माध्यक्ष का, यदि कोई वस्तु (जैसे गेहूँ, शक्कर आदि) समर्पित की जाय तो वे उसे स्वीकार कर लेंगे ; किन्तु वे ही व्यक्ति अपने निर्माता को आज्ञा नहीं देते कि वह मनुष्यों की विभिन्न उपासना की भेंट स्वीकार कर सकें।

बर्क महोदय ने अपनी पुस्तक में बार-बार 'धर्म' और 'राज्य' (church and state) की चर्चा की है। उनका अभिप्राय 'धर्म' विशेष अथवा 'राज्य' विशेष से नहीं है, वरन् किसी भी धर्म और किसी भी राज्य से है। प्रत्येक देश में 'धर्म और राज्य' को निरंतर एक साथ रखने के राजनैतिक सिद्धान्त को

प्रकट करने के लिए सामान्य रूप से उन्होंने इन शब्दों का प्रयोग किया है, और धर्म तथा राज्य को एक में मिलाकर न रखने के कारण फ्रांस की 'राष्ट्रीय सभा' की निन्दा की है। इसलिए इस विषय पर थोड़ा विचार कर लेना चाहिए।

सभी धर्मों की प्रकृति नम्र और दयालु है। विश्व के सभी धर्म नैतिक सिद्धान्तों से युक्त हैं। इसलिए आरम्भ में किसी बुरे, निर्दयी, उत्पीड़क अथवा अनैतिक सिद्धान्तों के प्रचार द्वारा वे मनुष्यों को अपना मत स्वीकार नहीं करा सकते थे। विश्व के इन सभी धर्मों का कभी-न-कभी आरम्भ हुआ होगा, और उस समय से उन धर्मों ने मनुष्यों में विश्वास उत्पन्न करते हुए, सदुपदेश और उदाहरण द्वारा प्रगति की होगी। फिर उन्होंने अपनी स्वाभाविक नम्रता छोड़कर (व्यक्ति की धार्मिक स्वतंत्रता के विषय में) रूक्षता और असहिष्णुता को क्यों अपना लिया ?

बर्क ने 'धर्म और राज्य' के जिस सम्बन्ध की सराहना की है उसीका यह परिणाम है। धर्म और राज्य के योग से खच्चरों की-सी एक ऐसी सृष्टि उत्पन्न हुई है जिसमें सृजनात्मिका शक्ति नहीं है, वरन् जो केवल नष्ट होने के लिए है। उस विचित्र सृष्टि का नाम है 'क़ानून द्वारा स्थापित धर्म'। जन्म के क्षणों से ही वह अपनी जननी के लिए अपरिचित है। इतना ही नहीं, वरन् आगे चलकर अपनी उसी माता को वह नष्ट भी कर देता है।

स्पेन में 'धार्मिक-परीक्षण' (Inquisition) उस धर्म के कारण आरम्भ नहीं हुआ जिसे लोगों ने आरम्भ से स्वीकार किया था। परन्तु 'धर्म और राज्य' द्वारा उत्पन्न हुई खच्चरी सृष्टि के कारण। इसी बेमेल सृष्टि के कारण स्मिथफील्ड (Smith field) में लोग जलाये गये, और बाद में इंगलैण्ड में इसी विचित्र जन्तु की पुनरोत्पत्ति के कारण वहाँ के निवासियों के बीच विद्वेष और अधर्म का बोलबाला हुआ तथा 'शान्ति-प्रचारक-संस्था' के सदस्यों (Quakers) एवं भिन्न मतावलम्बियों को इंगलैण्ड छोड़कर अमेरिका में प्रश्रय लेना पड़ा।

उत्पीड़न, किसी धर्म का मूल लक्षण नहीं है; किन्तु वह शासन द्वारा स्थापित सभी धर्मों का मूल लक्षण अवश्य है। धर्म के ऊपर से शासन का प्रभाव हटा दीजिए, आप देखेंगे कि इसी क्षण प्रत्येक धर्म अपनी स्वाभाविक

नम्रता और दयालुता को पुनः प्राप्त कर लेगा। अमेरिका में प्रत्येक कैथोलिक पुरोहित एक सुनागरिक, शिष्ट व्यक्ति तथा सभ्य पड़ोसी होता है। 'एपिस्कोपल' पुरोहित भी इसी प्रकार एक सुनागरिक, सभ्य व्यक्ति और भला पड़ोसी होता है। इसका कारण है कि अमेरिका में शासन द्वारा धर्म की स्थापना नहीं है और सभी व्यक्ति धर्म के विषय में पूर्ण स्वतंत्र हैं।

यदि लौकिक दृष्टि से इस पर विचार करें तो हमें यह ज्ञात होगा कि राष्ट्रों के विकास पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। धर्म और राज्य के गठबन्धन ने स्पेन को निर्धन बना दिया। नैन्टे (Nantes) की राज-घोषणा को भंग कर देने के कारण रेशमी वस्त्रों के कारीगर फ्रांस छोड़कर इंगलैण्ड चले गये। इस समय धर्म और राज्य के कारण सूती वस्त्रों के कारीगर इंगलैण्ड से अमेरिका और फ्रांस भाग रहे हैं।

हम 'बर्क' को 'धर्म और राज्य' के राजनीति-विरोधी सिद्धान्तों का प्रचार करने दें, इससे कुछ लाभ ही होगा। फ्रांस की 'राष्ट्रीय-सभा' उनके कथनानुसार काम नहीं करेगी, वरन् उनकी मूर्खता से लाभ उठायेगी। इंगलैण्ड में इसके कुपरिणामों को देखने के कारण ही अमेरिका इसके प्रति सजग रहा और फ्रांस में उन कुपरिणामों का अनुभव करने के नाते, उसकी 'राष्ट्रीय सभा' ने इस 'धर्म और राज्य' के गठबन्धन को नष्ट करके, अमेरिका की तरह, अन्तःकरण का सार्वलौकिक अधिकार एवं नागरिकता के सार्वभौम अधिकार की स्थापना की है।

इस प्रकार 'धर्म और राज्य' के इस षड्यन्त्र का भण्डाफोड़ करते हुए फ्रांस की 'राष्ट्रीय सभा' ने, अन्य सरकारों के समान प्रतिक्रियात्मक घोषणा न करके सर्वप्रथम, मनुष्य के अधिकारों की घोषणा की जिसके आधार पर फ्रांस का संविधान बना।

फ्रांस की 'राष्ट्रीय सभा'
द्वारा
मनुष्य और नागरिक के अधिकारों की घोषणा

यह विचार करके कि मानव अधिकारों के प्रति घृणा, उपेक्षा अथवा अज्ञानता, सार्वजनिक आपत्तियों और सरकार के भ्रष्टाचारों का एक मात्र कारण हैं, फ्रांस की जनता के प्रतिनिधियों ने, 'राष्ट्रीय सभा' के रूप में महत्व-पूर्ण घोषणा-पत्र के द्वारा, मनुष्य के इन प्राकृतिक, अविधेय तथा अभिन्न अधिकारों को प्रकट करने का निश्चय किया। उन प्रतिनिधियों ने यह सोचा कि यह घोषणा प्रत्येक सामाजिक संस्था के सदस्यों के मस्तिष्क में निरंतर बनी रहेगी जिसके कारण वे अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों के प्रति सदैव जागरूक रहेंगे। सरकार की 'विधायिनी शक्ति' (Legislative power) और कार्यपालिका-शक्ति (executive power) के कार्यों का अपेक्षाकृत अधिक आदर होगा; क्योंकि उनके कार्य इस घोषणा द्वारा निर्दिष्ट राजनीतिक संस्थाओं के उद्देश्य के अनुसार ही होंगे। इन सरल और निर्विवाद सिद्धान्तों द्वारा परिचालित होने के कारण नागरिकों के भावी दावे सदैव संविधान और सार्वजनिक सुख का निर्वाह कर सकेंगे।

इन कारणों से 'राष्ट्रीय सभा' ने ईश्वर को साक्षी रख कर तथा उसके आशीर्वाद की आशा करते हुए, मनुष्यों और नागरिकों के निम्नांकित पवित्र अधिकारों को स्वीकार किया और तद्विषयक घोषणा की।

१. जहाँ तक अधिकारों का प्रश्न है, सभी मनुष्य स्वतन्त्र और समान पैदा होते हैं तथा भविष्य में भी समान पैदा होते रहेंगे। इसलिए केवल सार्वजनिक उपयोगिता के आधार पर लौकिक भेद सम्भव है।

२. मनुष्य के प्राकृतिक और अविछेय अधिकारों को अक्षुण्ण रखना सभी राजनैतिक संस्थाओं का उद्देश्य है; और ये अधिकार हैं—स्वतंत्रता, सम्पत्ति, सुरक्षा और अत्याचार का विरोध करना।

३. राष्ट्र तत्वतः समस्त प्रभुसत्ताओं का मूल है। किसी व्यक्ति अथवा किसी संस्था को ऐसे किसी प्रभुत्व का अधिकार न होगा, जो उसे स्पष्टरूपेण राष्ट्र से प्राप्त नहीं हुआ है।

४. राजनैतिक स्वतंत्रता का अर्थ है उन कामों को करने का अधिकार, जो दूसरों को क्षति नहीं पहुँचाते। प्रत्येक व्यक्ति अपने प्राकृतिक अधिकारों का प्रयोग उन समस्त परिसीमाओं तक कर सकता है, जो अन्य प्रत्येक व्यक्ति के तत्सदृश अधिकारों के स्वतन्त्र प्रयोग की सुरक्षा के लिए आवश्यक हैं; और इन सीमाओं का निर्धारण केवल क़ानून द्वारा होना चाहिए।

५. कानून केवल उन कार्यों का निषेध करे, जो समाज के लिए अहितकर हों। जो क़ानून द्वारा निषिद्ध न हो, उसे बाधित नहीं करना चाहिए और न तो किसी व्यक्ति को वह काम करने के लिए विवश किया जाय, जिसे क़ानून नहीं चाहता है।

६. क़ानून समाज की इच्छा की अभिव्यक्ति है। क़ानून बनाने में प्रत्येक नागरिक को व्यक्तिगत रूप से अथवा प्रतिनिधि के माध्यम से योग देने का अधिकार है। क़ानून सब के लिए एक होना चाहिए, चाहे वह रक्षा करे या दण्ड दे। क़ानून की दृष्टि में सभी लोग समान हैं। अतः गुण तथा योग्यता-जन्य भेदों के अतिरिक्त अन्य किसी भेद के बिना, अपनी विभिन्न क्षमताओं के अनुसार सभी व्यक्ति सभी प्रतिष्ठाओं,पदों और कार्यों के लिए समान रूप से चुनेजाने योग्य हैं।

७. क़ानून द्वारा पूर्व-निर्धारित स्थितियों और निश्चित की गयी रीतियों के अतिरिक्त कोई व्यक्ति न अपराधी माना जाय, न गिरफ़्तार किया जाय और न नज़रबन्द किया जाय। उन सभी लोगों को दण्ड मिलना चाहिए जो स्वच्छन्द आज्ञाओं को प्रोत्साहन देते हैं, उन्हें पूरा करने का प्रयत्न करते हैं, उनका निष्पादन करते हैं अथवा निष्पादन करने की प्रेरणा देते हैं। यदि किसी नागरिक को क़ानून द्वारा न्यायालय में बुलाया जाता है अथवा उसे पकड़ा जाता है, तो क़ानून के आदेश का पालन करना उसका कर्त्तव्य होना चाहिए और यदि कोई नागरिक ऐसे अवसर पर क़ानून का विरोध करता है तो वह अपने को इस कार्य द्वारा दोषी ठहराता है।

८. सर्वथा नितान्त आवश्यक दण्डों के अतिरिक्त क़ानून को किसी अन्य दण्ड का विधान न करना चाहिए। अपराध के पूर्व घोषित तथा नियमानुसार

कार्यान्वित किये गये क़ानून के द्वारा ही किसी मनुष्य को दण्ड मिलना चाहिए।

९. यदि किसी व्यक्ति की नज़रबन्दी अनिवार्य हो तो अपराध प्रमाणित होने तक निर्दोष माने जाने के कारण, क़ानून, उसके प्रति ऐसी कोई कठोरता न प्रदर्शित करे, जो उसे नज़रबन्द रखने के लिए आवश्यक न हो।

१०. यदि किसी व्यक्ति के मतों के कारण क़ानून द्वारा स्थापित जन-व्यवस्था को कोई बाधा उपस्थित नहीं होती तो उसके उन मतों के कारण चाहे वे धार्मिक ही क्यों न हो, उसे सताना नहीं चाहिए।

११. विचारों और मतों की अनियन्त्रित अभिव्यक्ति मनुष्य के सर्वाधिक बहुमूल्य अधिकारों में से एक है। इसलिए क़ानून द्वारा पूर्व-निर्धारित स्थितियों में अपनी स्वतन्त्रता के दुरुपयोग का उत्तरदायित्व वहन करने पर, प्रत्येक नागरिक, स्वतन्त्रतापूर्वक कुछ भी बोल सकता है, लिख सकता है तथा प्रकाशित कर सकता है।

१२. मनुष्यों और नागरिकों के अधिकारों की सुरक्षा के लिए एक सार्वजनिक शक्ति की आवश्यकता है। समाज के हित के लिए, उस शक्ति को (एक संस्था के रूप में) स्थापित किया जाता है, न कि उन व्यक्तियों के लाभ के लिए जिन्हें वह शक्ति सौंपी जाती है।

१३. राज-शक्ति का भारवहन करने एवं सरकार के अन्य व्ययों की पूर्ति के लिए 'सार्वजनिक अर्थ-दान' आवश्यक है। अतः समाज के सदस्यों में, उनके सामर्थ्य के अनुसार, उसका समान वितरण होना चाहिए।

१४. प्रत्येक नागरिक को स्वतः या अपने प्रतिनिधि के माध्यम से, सार्वजनिक अर्थ-दानों की आवश्यकता, उनके विनियोग, उनकी राशि, निर्धारण-पद्धति तथा अवधि आदि का निर्णय करने में स्वतन्त्र मत व्यक्त करने का अधिकार है।

१५. प्रत्येक जन-समुदाय को अपने सभी प्रतिनिधियों से उनके कार्यों के बारे में जानकारी प्राप्त करने का अधिकार है।

१६. जिस समाज में अधिकार-पार्थक्य और अधिकार-सुरक्षा की व्यवस्था नहीं है, वहाँ संविधान का अभाव है।

१७. सम्पत्तिगत अधिकार मनुष्य के अबाध्य एवं पवित्र अधिकार हैं, इसलिए क़ानून द्वारा निश्चित एवं स्पष्ट सार्वजनिक आवश्यकता की स्थितियों के अतिरिक्त तथा पहले की उचित क्षति-पूर्ति की शर्त के बिना, किसी भी व्यक्ति को इन अधिकारों से वंचित नहीं किया जाना चाहिए।

अधिकारों की घोषणा की समीक्षा

सामान्य रूप से, प्रथम तीन अनुच्छेदों में, अधिकारों की सम्पूर्ण घोषणा समाविष्ट है। बाद के सभी अनुच्छेद या तो उन्हीं से उत्पन्न हुए हैं अथवा उनकी व्याख्याएँ हैं। पहले, दूसरे और तीसरे अनुच्छेदों में जो सामान्य रूप से कहा गया है चौथे, पाँचवें और छठें अनुच्छेदों में उन्हीं की विशेष व्याख्याएँ हैं।

सातवाँ, आठवाँ, नवाँ, दसवाँ और ग्यारहवाँ अनुच्छेद उन सिद्धान्तों की घोषणा करते हैं, जिनके आधार पर पूर्व-घोषित अधिकारों के अनुरूप, क़ानून बनाये जायेंगे। किन्तु फ्रांस तथा अन्य देशों के कुछ अच्छे व्यक्तियों द्वारा यह प्रश्न पूछा जाता है कि क्या दसवें अनुच्छेद से उस अधिकार की पर्याप्त सुरक्षा सम्भव है जिसके लिए उसका निर्माण हुआ है? धर्म को मनुष्य द्वारा निर्धारित क़ानूनों के आधीन रखकर यह अनुच्छेद उसकी अपूर्व दिव्यता उससे छीन लेता है और मस्तिष्क को प्रभावित करने वाली उसकी शक्ति को क्षीण बना देता है। ऐसी स्थिति में धर्म बादलों के अवरोध में से प्राप्त होने वाले उस प्रकाश के समान मनुष्य के सम्मुख प्रस्तुत होता है, जिसका उद्गम-स्रोत मनुष्य की दृष्टि से ओझल रहता है तथा जिसकी धूमिल रश्मियों में मनुष्य को कुछ भी ऐसा दिखलाई नहीं पड़ता जिसका वह सम्मान कर सके। १

१—धार्मिक अथवा क़ानून के दृष्टिकोण से यदि निम्नांकित विचार सम्यगरुपेण समझ लिया जाता है तो किसी व्यक्ति, व्यक्तियों की किसी संस्था या किसी सरकार के द्वारा धर्म के विषय में गलती नहीं हो सकेगी। मनुष्य द्वारा स्थापित सरकारों के अस्तित्व के पूर्व, विश्व के आदि काल से, मनुष्य और ईश्वर के बीच एक समझौता रहा है। अपने निर्माता के प्रति मनुष्य के वैयक्तिक सम्बन्ध तथा स्थिति में मानवीय कानूनों अथवा मानवीय शक्ति के द्वारा कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। धार्मिक भाव ईश्वर और मनुष्य के बीच हुए उपर्युक्त समझौते का एक अंश है, इसलिए वह मानवीय कानूनों के आधीन नहीं रखा जा सकता। सभी कानून इस समझौते के अनुरूप होने चाहिए, न कि कानूनों के अनुरूप उस समझौते में परिवर्तन किया जाय; क्योंकि कानून, मानवीय होने के अतिरिक्त, उस समझौते के उपरान्त ही अस्तित्व में आते हैं। सृष्टि के प्रथम पुरुष ने जब अपने चारों ओर देखा होगा और जब उसने यह अनुभव किया होगा कि उसने स्वयं को नहीं बनाया तथा उसके सुख के लिए ही चारों ओर सृष्टि-विस्तार है, तो उसका प्रथम कार्य भक्ति-निवेदन ही रहा होगा। अस्तु, प्रत्येक व्यक्ति को जो धार्मिक भाव ठीक जँचता है उसका वह भाव पवित्र बना रहना चाहिए। यदि सरकार उसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप करती है, तो यह उसकी दुष्टता मात्र होगी।

बारहवें से लेकर अन्त तक के सभी अनुच्छेदों में, सारतः, उन्हीं सिद्धान्तों का उल्लेख है जो प्रथम ग्यारह अनुच्छेदों में व्यक्त हैं। किन्तु उस समय फ्रांस अनुचित को मिटाकर उचित को स्थापित करने की ऐसी विशेष परिस्थिति में था कि अन्य वस्तुस्थिति में जितना आवश्यक था उससे कहीं अधिक सावधान रहना उसके लिए उचित ही था।

जब अधिकारों के घोषणा-पत्र को 'राष्ट्रीय सभा' के सम्मुख प्रस्तुत किया गया, तो उसके कुछ सदस्यों में से किसीने कहा कि यदि अधिकारों की घोषणा प्रकाशित की गयी तो साथ ही कर्त्तव्यों की घोषणा भी होनी चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि जिस मस्तिष्क में यह सूझ उत्पन्न हुई वह एक विचारशील मस्तिष्क रहा होगा; किन्तु इसमें भी सन्देह नहीं है कि उसने दूर तक न सोचने की भूल की। वास्तव में अधिकारों की घोषणा में कर्त्तव्यों की घोषणा का अर्थ निहित है। व्यक्ति के रूप में मेरा जो अधिकार है, वही अन्य का भी और इसीलिए उस अधिकार को अपने लिए और अन्यों के लिए स्वीकार करना हम में से प्रत्येक का कर्त्तव्य हो जाता है।

प्रथम तीन अनुच्छेद वैयक्तिक अथवा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के आधार हैं। जिस देश की सरकार उन अनुच्छेदों में व्यक्त सिद्धांतों के आधार पर नहीं स्थापित होती और उन्हें पवित्र बनाये नहीं रखती, वह देश स्वतन्त्र नहीं कहा जा सकता। विश्व के लिए 'अधिकारों की घोषणा' का विवरण आज तक बने हुए सभी नियमों और क़ानूनों की अपेक्षा अधिक मूल्यवान है, और उसके द्वारा विश्व का अपेक्षाकृत अधिक हित होगा।

अधिकारों की घोषणा के समय, हम एक ऐसे राष्ट्र का दिव्य एवं महान स्वरूप देखते हैं, जो अपने निर्माता (ईश्वर) के संरक्षण में एक सरकार की स्थापना का कार्य आरम्भ कर रहा है। यह दृश्य इतना नवीन है और यूरोप के किसी भी कार्य के समक्ष यह कार्य इतना महान है कि इसके लिए 'क्रांति' शब्द का प्रयोग हलका लगता है, वास्तव में यह मानवता का पुनर्जन्म है।

अन्याय और अत्याचार के दृश्यों के अतिरिक्त यूरोप की वर्तमान सरकारें और क्या हैं? इंगलैण्ड की सरकार ही क्या है? क्या वहाँ के निवासी यह नहीं कहते कि यह देश एक बाज़ार है, जहाँ प्रत्येक मनुष्य का अपना मूल्य है और ठगी हुई जनता के व्यय पर, भ्रष्टाचार जहाँ का सामान्य व्यवसाय है? अस्तु,

यदि वहाँ फ्रांस की क्रांति की निन्दा की जाती है तो कोई आश्चर्य नहीं है।

यदि फ्रांस की क्रांति केवल दुष्ट निरंकुश शासन के विनाश तक ही सीमित होती तो बर्क और उन्हीं के समान अन्य सज्जन कदाचित् मौन रह गये होते। उनका कहना है कि यह क्रांति बहुत दूर चली गयी, अर्थात् उनके लिए बहुत दूर तक चली गयी; क्योंकि यह क्रांति भ्रष्टाचार का महान शत्रु है और वे सभी लोग, जिन्हें धन द्वारा क्रय किया जा सकता है, भयभीत हो उठे हैं। उनके क्रोध में उनका डर व्यक्त हो उठा है और वे अपनी विक्षत दुष्टता की वेदना प्रकट कर रहे हैं।

किन्तु इस प्रकार के विरोधों से क्षतिग्रस्त होने के स्थान पर फ्रांस की क्रांति को अभिनन्दन प्राप्त होता है। इस पर जितना प्रहार होगा, उतना ही इसका निखार होगा। किन्तु डर है कि इस पर कहीं अति प्रहार न हो। इसे प्रहारों से डरने की आवश्यकता नहीं है। सत्य ने इसे स्थायित्व प्रदान किया है। समय स्वयं इसका प्रमाण देगा।

इस प्रकार, आरम्भ से लेकर बेसिल (Bastille) पर कब्जा करने की घटना तक मुख्य-मुख्य स्थितियों के माध्यम से फ्रांस की क्रांति-विषयक प्रगति और अधिकारों की घोषणा द्वारा इसकी स्थापना की चर्चा करने के बाद, मैं एम० डेलेफाइटल (M. Delafayette) के निम्नांकित सशक्त उद्‌गार का उल्लेख करते हुए इस विषय को समाप्त करूँगा। "स्वतंत्रता का यह महान स्मारक अत्याचारियों को शिक्षा दे और पीड़ितों के लिए आदर्श बने।"

आनुवंशिक सरकार

आनुवंशिक अधिकार और आनुवंशिक उत्तराधिकार का जो समर्थन बर्क ने किया है तथा उन्होंने जो यह कहा है कि राष्ट्र को अपनी सरकार बनाने का कोई अधिकार नहीं है, उसे उनका प्रलाप नहीं तो और क्या कहा जाय। किन्तु इसके अतिरिक्त, संयोगवशात् उन्होंने सरकार की परिभाषा भी प्रस्तुत की है जो ध्यान देने योग्य है। उनका कहना है, 'सरकार मानव-बुद्धि की आविष्कृत योजना है।'

सरकार मानव-बुद्धि की आविष्कृत योजना है, इसे मान लेने पर यह भी मानना होगा कि आनुवंशिक उत्तराधिकार और आनुवंशिक अधिकार का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है; क्योंकि बुद्धि को आनुवंशिक बनाना असम्भव है।

दूसर आर, वह बुद्धिमत्तापूर्ण योजना न होगी, जो क्रियान्वित किये जाने पर किसी देश की सरकार को एक मूर्ख के जिम्मे सौंप दे। बर्क ने अपने लिए जो आधार चुना है, वह उनके पक्ष के प्रत्येक अंश के लिए घातक निकला।

आनुवंशिक अधिकार से हटकर, अब बात आ गयी आनुवंशिक बुद्धि पर। प्रश्न है कि सर्वाधिक बुद्धिमान व्यक्ति कौन है ? अब बर्क या तो यह सिद्ध करें कि आनुवंशिक उत्तराधिकार की परम्परा में प्रत्येक राजा सालोमन (Salomon) था अथवा सालोमन को बुद्धिमान राजा की संज्ञा देना उचित नहीं है। बर्क महोदय ने ऐसा विचित्र प्रहार किया कि राजाओं की सूची में कदाचित् ही कोई नाम रह गया हो। किन्तु ज्ञात होता है कि बर्क इस प्रकार के प्रत्युत्तर के प्रति सजग थे; क्योंकि इससे बचने के लिए उन्होंने सरकार को मानव-बुद्धि की आविष्कृत योजना ही नहीं, वरन् उसे बुद्धि का एकाधिकार भी कहा है। उनके मतानुसार एक ओर मूर्खों का राष्ट्र है और दूसरी ओर बुद्धि की सरकार। तदुपरांत उनका कहना है कि मनुष्यों का यह अधिकार है कि इस बुद्धि के द्वारा उनके अभावों की व्यवस्था हो।

इतना स्पष्ट कर लेने के बाद, बर्क यह समझाते हैं कि मनुष्यों के अभाव क्या हैं और उनके अधिकार क्या हैं ?

अपने इस प्रयत्न में उन्हें पर्याप्त सफलता मिली। सर्वप्रथम उन्होंने हलकी सान्त्वना के रूप में मनुष्यों के अभावों को बुद्धि का अभाव बताया और फिर यह समझाया कि उन्हें बुद्धि का नहीं, वरन् उसके द्वारा शासित होने का अधिकार है। उन मनुष्यों के मस्तिष्कों में बुद्धि के इस एकाधिकार-शासन के प्रति आदर का पवित्र भाव उत्पन्न करने के लिए तथा उन्हें यह बतलाने के लिए कि इस शासन में सम्भव-असम्भव, ग़लत-सही, सभी प्रकार के कार्यों को निष्पादित करने का महान सामर्थ्य है, बर्क महोदय निम्नांकित रूप से उसकी शक्तियों का वर्णन करते हैं।

'सरकार में मनुष्य के अधिकार उनकी सुविधाएँ हैं, और वे प्रायः अच्छाइयों संतुलन के रूप में मिलती हैं, कभी-कभी वे अच्छाई और बुराई के समझौते के रूप में प्राप्त होती हैं और कभी-कभी वे बुराइयों के बीच स्थापित समझौते के रूप में होती हैं। राजनैतिक बुद्धि एक गणनात्मक सिद्धान्त है जो वास्तविक नैतिक प्रदर्शनों को, अध्यात्मविद्या या गणित के अनुसार नहीं,

वरन् नीति के अनुसार, जोड़ता-घटाता है तथा गुणित एवं विभाजित करता है।'

बर्क के आश्चर्य-चकित पाठक उनके उपर्युक्त विद्वत्तापूर्ण अर्थ-हीन कथन को समझने में असमर्थ होंगे। अस्तु, मैं उनके कथन की व्याख्या का काम स्वीकार करूँगा।

बर्क के उपर्युक्त कथन का सारांश यह है कि सरकार किसी भी सिद्धांत द्वारा शासित नहीं होती। अपने इच्छानुसार वह बुराई को अच्छाई और अच्छाई को बुराई बना सकती है। संक्षेप में, यह कह लीजिए कि सरकार एक स्वच्छन्द शक्ति है।

किन्तु कुछ बातों को बर्क महोदय भूल गये। पहली बात यह है कि उन्होंने यह नहीं बताया कि बुद्धि का उद्भव कहाँ से हुआ है और दूसरी बात यह है कि किस अधिकार के बल पर उस बुद्धि ने अपना कार्य आरम्भ किया। बर्क ने जिस प्रकार से विषय का प्रतिपादन किया है, उससे तो यही स्पष्ट होता है कि या तो सरकार बुद्धि को छीन लेती है अथवा बुद्धि सरकार को छीन लेती है। इस सरकार का कोई मूल्य नहीं है और इसकी शक्ति अधिकार-हीन है। संक्षेप में बर्क के अनुसार यह सिद्ध हुआ कि सरकार दूसरों की सम्पत्ति का अपहरण मात्र है।

किन्तु इस विषय का स्पष्टतर बोध कराने के लिए यह आवश्यक है कि इसे उन कतिपय शीर्षकों में विभक्त किया जाय, जिनके अन्तर्गत एक राष्ट्र की आनुवंशिक गद्दी या अधिक उपयुक्त रूप से यों कहिए कि सरकार-विषयक आनुवंशिक उत्तराधिकार पर विचार करना चाहिए। वे विभाग इस प्रकार हैं:—

१—वंश विशेष का स्वयं अपनी स्थापना करने का अधिकार।

२—राष्ट्र का वंश विशेष की स्थापना करने का अधिकार।

जहाँ तक पहले शीर्षक का प्रश्न है—अर्थात् राष्ट्र की स्वीकृति के बिना एक वंश का स्वयं अपने आनुवंशिक अधिकार की स्थापना करने का जहाँ तक प्रश्न है, सभी मनुष्य एक स्वर से इसे स्वेच्छाचार कहेंगे; और इसका औचित्य सिद्ध करने का प्रयत्न उन सभी मनुष्यों की बुद्धि का अतिक्रमण होगा।

किन्तु दूसरा शीर्षक, अर्थात् एक राष्ट्र का वंश विशेष को आनवंशिक अधिकारों सहित स्थापित करने का अधिकार, प्रथम विचार में, स्वेच्छाचार नहीं

प्रतीत होता। फिर भी यदि लोग गम्भीरतापूर्वक इस पर पुनर्विचार करें, और कुछ दूर तक विचार करें, अर्थात् अपने नहीं, वरन् अपनी सन्ततियों के दृष्टिकोण से विचार करें, तो उन्हें यह स्पष्ट ज्ञात होगा कि आनुवंशिक अधिकार, अन्ततः उसी प्रकार का स्वेच्छाचार हैं, जिसे उन्होंने अपने लिए अस्वीकार किया। राष्ट्र द्वारा वंश विशेष को आनुवंशिक उत्तराधिकार सहित स्थापित करने का अर्थ हुआ भावी पीढ़ियों की स्वीकृति का निरोध; और स्वीकृति का निरोध स्वेच्छाचार है।

जब एक व्यक्ति, जो किसी समय सरकार का अधिपति होगा अथवा उसका उत्तराधिकारी, एक राष्ट्र से कहेगा कि आपकी उपेक्षा करके मैंने यह अधिकार प्राप्त किया है, तब लोग यह न समझ पायेंगे कि वह किस अधिकार पर ऐसा कहता है। एक व्यक्ति का यह अनुभव कि वह अपने पूर्वजों द्वारा बेच दिया गया है, दासता के बन्धन में बद्ध उस व्यक्ति के लिए संतोषप्रद नहीं, वरन् उत्तेजक होगा। जो किसी कार्य के दोष की वृद्धि करता है, उसीके द्वारा उस कार्य की वैधता नहीं सिद्ध की जा सकती। अतः आनुवंशिक उत्तराधिकार की वैध स्थापना नहीं हो सकती।

इस विषय का अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट निर्णय करने के लिए हमें भावी पीढ़ियों के अतिरिक्त स्वतन्त्र रूप से, उस पीढ़ी पर उचित विचार करना होगा, जो एक वंश को आनुवंशिक अधिकारों सहित स्थापित करने का कार्य करती हैं; और अनुगामी पीढ़ियों के प्रति उस प्रथम पीढ़ी का जो व्यवहार है उसपर भी विचार करना आवश्यक है।

वह पीढ़ी, सर्वप्रथम, एक व्यक्ति को चुनती है और उसे राजा की पदवी या अन्य कोई नाम देकर, सरकार के शीर्ष-स्थान पर रखती है; वह व्यक्ति चाहे बुद्धिमान हो अथवा मूर्ख। वह पीढ़ी अपने इच्छानुसार तथा अपनी स्वतन्त्रता के साथ अपने लिए ऐसा करती है। किन्तु वह व्यक्ति जो राजा के पद पर नियुक्त किया जाता है, आनुवंशिक नहीं होता, वरन् वह चुना जाता है और तत्पश्चात् उस पद पर रखा जाता है। जो पीढ़ी उसे उस पद पर रखती है, वह किसी आनुवंशिक सरकार के द्वारा नहीं, वरन् अपने इच्छानुसार स्थापित सरकार के द्वारा शासित होती है। यदि उस पद पर नियुक्त किया गया वह व्यक्ति, और उसे नियुक्त करने वाली पीढ़ी का जीवन शाश्वत होता, तो आनुवंशिक उत्तराधिकार

की बात न उठती। अस्तु, यह निर्विवाद है कि प्रथम पक्षों की मृत्यु के उपरांत ही आनुवंशिक उत्तराधिकार का प्रश्न उपस्थित हो सकता है।

चूँकि जहाँ तक प्रथम पीढ़ी का सम्बन्ध है, आनुवंशिक उत्तराधिकार का प्रश्न उठता ही नहीं, इसलिए दूसरी तथा अन्य सभी अनुगामी पीढ़ियों के प्रति इस प्रथम पीढ़ी के व्यवहार पर अब हमें विचार करना है।

पहली पीढ़ी अन्य अनुगामी पीढ़ियों के प्रति जिस प्रकार का व्यवहार करती है, वैसा करने का उसे अधिकार नहीं है। विधान बनाने के स्थान पर वह वसीयत लिखने लगती है और वसीयत के रूप में भावी पीढ़ियों को एक सरकार सौंप देने का प्रयत्न करती है। इतना ही नहीं, वरन् वह भावी पीढ़ियों पर एक ऐसी सरकार थोपने का प्रयत्न करती है, जो उस सरकार से सर्वथा भिन्न और नवीन स्वरूप की है जिसके अन्तर्गत वह पीढ़ी स्वयं रही है।

जैसा कि कहा जा चुका है, पहली पीढ़ी आनुवंशिक सरकार के अन्तर्गत नहीं रही, वरन् उसने स्वयं अपनी सरकार स्थापित की। किन्तु वही पीढ़ी वसीयतनामे के माध्यम से, जिसका उसे अधिकार नहीं है, अन्य अनुगामी पीढ़ियों के अपने लिए स्वतन्त्र रूपेण कार्य करने के अधिकार को छीनने का प्रयत्न करती है।

मनुष्य के सामाजिक अधिकारों को न तो योजनान्वित किया जा सकता है, न हस्तांतरित किया जा सकता है और न उनका उन्मूलन ही किया जा सकता है। वे केवल परस्परागत होते हैं; और उन्हें परंपरागत होने से सर्वदा के लिए अवरुद्ध करना किसी पीढ़ी के वश की बात नहीं है। यदि वर्तमान या अन्य कोई पीढ़ी दासता ही स्वीकार करती है तो इससे अनुगामी पीढ़ियों के स्वतंत्र होने का अधिकार कम नहीं होता। ग़लतियों को वैध उत्तराधिकार नहीं प्राप्त हो सकता। जब श्री बर्क यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि सन १६८८ ई. की क्रांति के समय इंगलिश राष्ट्र ने सर्वाधिक गम्भीरता के साथ अपने तथा अपने सभी उत्तराधिकारियों के अधिकारों का सर्वदा के लिए त्याग कर दिया, तो वह ऐसी भाषा का प्रयोग करते हैं जिसका उत्तर न देकर केवल उनके व्यभिचरित सिद्धांतों का तिरस्कार किया जा सकता है अथवा उनकी अज्ञानता पर दुःख प्रकट किया जा सकता है।

किसी भी रूप से विचार किया जाय, किन्तु अन्य पीढ़ी की इच्छा से उत्पन्न

होने वाली आनुवंशिक सरकार मूर्खतापूर्ण ही प्रकट होती है। 'क' को यह अधिकार नहीं हो सकता कि वह 'ख' की सम्पत्ति लेकर अपनी इच्छा से उसे 'ग' को सौंप दे। फिर भी आनुवंशिक उत्तराधिकार इसी सिद्धान्त पर कार्यान्वित होता आया है।

किसी एक पीढ़ी ने अन्य अनुगामी पीढ़ियों के अधिकारों को छीन कर उन्हें एक अन्य व्यक्ति को दिया जो बाद में उन अनुगामी पीढ़ियों से, बर्क की भाषा में, कह सकता है कि आप लोगों का कोई अधिकार नहीं है, आपके अधिकार मुझे सौंप दिये गये हैं और मैं आप लोगों की उपेक्षा करते हुए शासन करूँगा। इस प्रकार के सिद्धान्तों और ऐसी अज्ञानता से ईश्वर विश्व की रक्षा करे।

[निष्कर्ष]

ज्ञान और अज्ञान, दो परस्पर विरोधी तत्व मानव-संसार को प्रभावित करते हैं। यदि किसी देश में इन दो में से किसी एक की वृद्धि हो जाय तो शासन-यन्त्र का परिचालन नितान्त सुचारु रूप से होता है। ज्ञान अपना मार्ग स्वयं ढूंढ़ लेता है और अज्ञान, वह सब स्वीकार कर लेता है, जो उसे आदेश के रूप में प्राप्त होता है।

संसार में दो प्रकार की सरकारें हैं; एक निर्वाचन और प्रतिनिधित्व द्वारा स्थापित सरकार, और दूसरी आनुवंशिक अधिकार पर स्थापित सरकार। पहले प्रकार को हम जन-तन्त्र (Republic) कहते हैं और दूसरे को राज-तन्त्र अथवा कुलीन-तन्त्र (Aristocracy)।

सरकार के, उपर्युक्त, दोनों भिन्न और परस्पर विरोधी स्वरूप, ज्ञान और अज्ञान के दो भिन्न और परस्पर विरोधी आधारों पर निर्मित होते हैं। यह निर्विवाद है कि सरकारी कार्यों के लिए बुद्धि और योग्यताओं की आवश्यकता है; किन्तु बुद्धि और योग्यताएँ आनुवंशिक नहीं होती हैं। इसलिए यह स्पष्ट है कि आनुवंशिक उत्तराधिकार मनुष्य से एक ऐसे विश्वास की अपेक्षा रखता है जिसे बुद्धि स्वीकार नहीं कर सकती और जो केवल अज्ञान के आधार पर स्थापित हो सकता है। यही कारण है कि किसी देश में अज्ञान का प्रभाव

जितना ही अधिक होगा, वह इस प्रकार की सरकार के लिए उतना ही अधिक उपयुक्त होगा।

इसके विपरीत, सुव्यवस्थित जनतंत्र की सरकार मनुष्य से उसी विश्वास की अपेक्षा रखती है, जिसे बुद्धि स्वीकार करती है। जनतन्त्रीय सरकार में प्रत्येक व्यक्ति उस सम्पूर्ण पद्धति के औचित्य, उसके मूल तथा उसके कार्यों आदि की जाँच करता है; और भलीभांति समझ लिए जाने पर इसका कार्य संपादन सुचारुरूपेण होता है। परिणाम यह होता है कि इस प्रकार की सरकार के अन्तर्गत मानव-शक्ति सम्पूर्ण साहस के साथ कार्य करती है और अत्यधिक गौरव प्राप्त करती है।

सरकार के उपर्युक्त दो स्वरूपों में से प्रत्येक भिन्न आधार पर कार्य करता है; एक ज्ञान के सहारे स्वतन्त्रतापूर्वक अपना कार्य करता है और दूसरा अज्ञान के सहारे। अब हमें यह देखना चाहिए कि जिसे हम मिश्रित सरकार कहते हैं, उसके मूल में वह कौन-सी शक्ति है, जो उसे गति प्रदान करती है।

मिश्रित सरकार की गत्यात्मक शक्ति है—भ्रष्टाचार। मिश्रित सरकारों में निर्वाचन और प्रतिनिधित्व अत्यधिक अपूर्ण ही क्यों न हो, फिर भी आनुवंशिक सरकारों की अपेक्षा इनमें बुद्धि को कार्य करने का अधिक अवसर प्राप्त होता है और इसलिए उस बुद्धि को खरीद लेना आवश्यक हो जाता है। मिश्रित सरकार परस्पर विरोधी तत्वों को भ्रष्टाचार द्वारा जोड़कर इकाई का निर्माण करती है, और इसलिए प्रत्येक रूप से वह अपूर्ण है। बर्क को इस बात का महान क्षोभ है कि फ्रांस ने ब्रिटिश संविधान को स्वीकार नहीं किया। इस अवसर पर, जिस खेदपूर्ण ढंग से उन्होंने अपनी बात व्यक्त की है, उसमें यह भाव निहित है कि अपने दोषों की रक्षा के लिए ब्रिटिश संविधान को किसी और तत्व की आवश्यकता है।

मिश्रित सरकार में उत्तरदायित्व का अभाव रहता है; उसके अंश एक दूसरे को ऐसे ढँके हुए रहते हैं कि उत्तरदायित्व समाप्त हो जाता है और भ्रष्टाचार, जो कि गत्यात्मक शक्ति है, अपने बचाव की योजना बना लेता है। जब सिद्धान्त रूप में इसे स्वीकार कर लिया जाता है कि राजा कोई गलती नहीं कर सकता तो राजा की स्थिति मूर्ख अथवा भ्रान्तचित्त व्यक्ति की स्थिति के समान ही सुरक्षात्मक हो जाती है। फिर तो, उसके लिए उत्तरदायित्व की

बात उठती ही नहीं। उसके बाद उत्तरदायित्व आता है मंत्री पर, जो संसद् के उस बहुमत की शरण लेता है जिसे पद, निवृत्ति-वेतन (Pension) तथा भ्रष्टाचार द्वारा प्राप्त कर लेना राजा के वश की बात है; और वह बहुमत के जिस अधिकार से मंत्री को बचा लेता है, उसीके द्वारा अपना औचित्य भी सिद्ध कर लेता है। इस चक्रगति के कारण सरकार के प्रत्येक अंश से और अन्त में संपूर्ण से, उत्तरदायित्व को दूर कर दिया जाता है।

जब सरकार का एक भाग ऐसा है जो कोई ग़लती नहीं कर सकता तो इसका अर्थ यह हुआ कि वह कोई काम नहीं करता और वह केवल अन्य शक्ति का, जिसकी मंत्रणा और निर्देशना के अनुसार वह कार्य करता है, यंत्रमात्र है। वास्तव में मिश्रित सरकार एक पहेली है। यह अपने विभिन्न भागों को जोड़ने के लिए आवश्यक रूप से अत्यधिक भ्रष्टाचार करती है। यह सरकार के सभी स्वरूपों को वहन करने का भार देश के सिर पर लाद देती है और अन्त में एक ऐसी 'समिति की सरकार' का रूप धारण कर लेती है, जिसमें परामर्श-दाता, कार्यकर्ता, अनुमोदक, औचित्य सिद्ध करने वाले, उत्तरदायी और अनुत्तर-दायी व्यक्ति स्वयं वे ही व्यक्ति होते हैं।

इस मूक अभिनयात्मक योजना तथा दृश्यों एवं पात्रों के परिवर्त्तन द्वारा, मिश्रित सरकार के विभिन्न भाग उन विषयों में से एक दूसरे का बचाव कर लेते हैं, जिन्हें निष्पादित करने का भार उनमें से कोई एक भाग अपने ऊपर नहीं ले सकता। जब धन की आवश्यकता पड़ती है, तो ये विभिन्न अवयव प्रत्यक्ष रूप से अलग हो जाते हैं और संसदीय प्रशंसा के पुल बाँधने लगते हैं। वे एक दूसरे की बुद्धिमत्ता, उदारता और अनासक्ति की आश्चर्यपूर्ण सराहना करते हुए राष्ट्र के ऊपर पड़नेवाले भार पर एक स्वर से निःश्वासें छोड़ते हैं।

किन्तु एक सुव्यवस्थित 'गणतन्त्र' (Republic) में, इस प्रकार विभिन्न तत्वों को जोड़ने, प्रशंसा करने तथा दुःख प्रकट करने का अभिनय नहीं होता। इसमें देश के प्रत्येक भाग का समान एवं पूर्ण प्रतिनिधित्व रहता है और विधान-विभाग (Legislative) तथा निष्पादन-विभाग (Executive) का चाहे जिस प्रकार प्रबन्ध हो, इसके सभी सदस्यों का एक ही प्राकृतिक मूल-स्रोत होता है। इसके विभिन्न विभाग एक दूसरे के लिए, प्रजातन्त्र (Democracy), कुलीनतन्त्र (Aristocracy) और राजतन्त्र (Monarchy) के समान

भिन्न नहीं हैं। चूंकि गणतन्त्र (Republic) में परस्पर विरोधी तत्व नहीं होते; अतः उसमें समझौते द्वारा भ्रष्टाचार करने अथवा योजना द्वारा मिश्रित होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

सार्वजनिक कार्य स्वतः राष्ट्र के ध्यान को अपनी ओर आकर्षित करते हैं; और उन्हें निष्पादित करने के लिए किसी के मिथ्याभिमान से चाटुकारितापूर्ण प्रार्थना नहीं करनी पड़ती, वरन् उनके गुणों के कारण राष्ट्र स्वयं उन्हें पूरा करता है। मिश्रित सरकारों में राष्ट्र के ऊपर पड़नेवाले करों के भार पर अत्यन्त सफलतापूर्वक व्यक्त की जाने वाली दुःख की निरन्तर कराह, गणतन्त्र के अभिप्राय और भावना के सम्मुख असंगत ही सिद्ध होगी। यदि कर आवश्यक हैं तो निश्चित रूप से लाभप्रद होंगे; किन्तु उनके लिए, यदि क्षमा-याचना की आवश्यकता पड़ी, तो उस क्षमा-यांचना में दोषारोपण का अर्थ निहित है।

जब मनुष्यों को राजा और प्रजाओं के विभिन्न नामों से पुकारा जाता है अथवा जब राजतन्त्र, कुलीनतन्त्र और प्रजातन्त्र के भिन्न-भिन्न नामों से या मिश्रित नाम से सरकार की चर्चा की जाती है, तो विवेकशील व्यक्ति इन नामों का क्या अर्थ समझे? यदि विश्व में, वास्तविक रूप से मानव-शक्ति के दो या अधिक भिन्न एवं पृथक् मूलतत्व कभी थे तो हमें उन कतिपय उद्गम्-स्रोतों से अवगत होना चाहिए जिनके लिए उपर्युक्त शब्दों का प्रयोग किया जा सके। किन्तु मनुष्य की एक और केवल एक जाति है, इसलिए मानव-शक्ति का केवल एक मूलतत्व सम्भव है, और वह है मनुष्य स्वयं। राजतन्त्र, कुलीनतन्त्र और प्रजातन्त्र आदि केवल मानव-बुद्धि की सृष्टियाँ हैं, और इन तीनों के समान सहस्रों अन्य प्रकार की सरकारों का आविष्कार किया जा सकता है।

अमेरिका और फ्रांस की क्रांतियों तथा अन्य देशों में दिखलाई पड़नेवाले लक्षणों से यह स्पष्ट है कि सरकार-पद्धति के बारे में विश्व-मत बदल चुका है। क्रांतियाँ राजनैतिक अनुमान की परिधि के बाहर हैं। समय और परिस्थितियों की जिस प्रगति को लोग महान परिवर्तनों के लिए आवश्यक मानते हैं, वह क्रांतियों के उत्पन्न करनेवाले विचारों के वेग और मस्तिष्क की शक्ति को मापने के लिए अत्यधिक यांत्रिक हैं। अब तक जितनी क्रांतियाँ हो चुकी हैं, उन्हें कभी असम्भव माना जाता था; उनके कारण सभी प्राचीन सरकारों को धक्का लगा

है। यूरोप में इस समय यदि कोई सामान्य क्रांति हो उठे तो लोगों को जो आश्चर्य होगा, उससे कहीं अधिक आश्चर्य अब तक की हुई क्रान्तियों पर होता हैं।

जब हम मनुष्य की इस दयनीय दशा पर विचार करते है कि शासन की राजतन्त्रीय पद्धति और आनुवंशिक पद्धति के अन्तर्गत मनुष्य अपने घर से निकाल दिया जाता है तथा करों के द्वारा निर्धन बनाया जाता है, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि ये पद्धतियाँ दोषपूर्ण हैं, और सरकार के सिद्धांत तथा उसकी रचना में सामान्य क्रांति की आवश्यकता है।

एक राष्ट्र के कार्यों के प्रबन्ध के अतिरिक्त सरकार और क्या है? सरकार, प्रकृतितः, व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति नहीं है और न हो सकती है; वरन् वह समूचे राष्ट्र की सम्पत्ति है। यद्यपि बल-प्रयोग द्वारा अथवा किसी 'आविष्कृत योजना' द्वारा इसे विरासत के रूप में हड़प लिया गया है, किन्तु अपहरण वस्तुओं के अधिकार को बदल नहीं सकता। जहाँ तक अधिकार की बात है, प्रभुसत्ता केवल राष्ट्र की होती है, किसी व्यक्ति की नहीं। यदि राष्ट्र, सरकार के किसी स्वरूप को असुविधाजनक समझता है तो उस स्वरूप को बदल देने तथा अपने हित, स्वभाव एवं सुख के अनुसार नवीन स्वरूप की स्थापना करने का, उसे प्रत्येक समय स्वाभाविक एवं अपरिहार्य अधिकार प्राप्त है। राजाओं और प्रजाओं के रूप में किये गये मनुष्यों के अद्भुत और अशिष्ट भेद, राज-दरबारियों की स्थिति के अनुकूल होते हुए भी, नागरिकों के लिए अनुपयुक्त है, और उस सिद्धांत द्वारा निन्दित है जिसके आधार पर आजकल सरकारों का निर्माण हो रहा है। प्रत्येक नागरिक प्रभुसत्ता (Sovereignty) का सदस्य है, और इसलिए वह वैयक्तिक आधीनता नहीं स्वीकार कर सकता; उसकी आज्ञाकारिता केवल क़ानूनों के प्रति हो सकती है।

सरकार क्या है, इस प्रश्न पर विचार करते समय यह स्वीकार करना पड़ेगा कि सरकार को उन सभी वस्तुओं और विषयों का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए, जिनके लिए उसकी शक्ति का प्रयोग होगा। सरकार विषयक इस दृष्टिकोण से, अमेरिका और फ्रांस द्वारा स्थापित जन-तन्त्रीय-पद्धति सम्पूर्ण राष्ट्र को अपनी परिधि में रखती है; और विभिन्न भागों के प्रतिनिधित्व द्वारा स्थापित केन्द्र सभी भागों के आवश्यक हितों के ज्ञान से अवगत रहता है।

किन्तु प्राचीन सरकारों की रचना इस प्रकार की है कि न तो उन्हें देश का ज्ञान प्राप्त हो पाता है, और न वे सुख दे पाती हैं। मठ की दीवारों के बाहर के विश्व का ज्ञान न रखनेवाले महन्तों की सरकार जितनी असंगत है, उतनी ही असंगत है राजाओं द्वारा शासित सरकार।

प्राचीन काल में लोग जिन्हें क्रान्तियाँ कहा करते थे वे व्यक्तियों के बदलने और स्थानीय परिस्थितियों के परिवर्तनों से कुछ ही अधिक होती थीं। स्वाभाविक घटनाओं के समान उनके उद्भव और विलय होते रहे हैं। उनके अस्तित्व अथवा भाग्य में ऐसी कोई शक्ति नहीं थी जो उनकी उद्भव-भूमि के अतिरिक्त अपना प्रभाव डाल सके। किन्तु अमेरिका और फ्रांस की क्रान्तियों के प्रभाव-स्वरूप संसार में वस्तुओं की प्राकृतिक व्यवस्था का नवीन रूप लक्षित हो रहा है। उन क्रान्तियों ने सिद्धान्तों की ऐसी पद्धति को जन्म दिया है जो सत्य और मानव-अस्तित्व के समान ही सार्वलौकिक हैं; उन्होंने राष्ट्रीय उन्नति, राजनैतिक सुख तथा नीति का समन्वय किया है।

१. जहाँ तक अधिकारों का प्रश्न है, सभी मनुष्य स्वतन्त्र और समान पैदा होते हैं तथा भविष्य में भी समान पैदा होते रहेंगे। इसलिए केवल सार्वजनिक उपयोगिता के आधार पर लौकिक भेद सम्भव है।

२. मनुष्य के प्राकृतिक और अविधेय अधिकारों को अक्षुण्ण रखना सभी राजनैतिक संस्थाओं का उद्देश्य है और वे अधिकार है—स्वतंत्रता, सम्पत्ति, सुरक्षा और अत्याचार का विरोध करना।

३. राष्ट्र तत्वतः समस्त प्रभुसत्ताओं का मूल है; किसी व्यक्ति अथवा किसी संस्था को, ऐसे प्रभुत्व का अधिकार न होगा जो उसे स्पष्टरूपेण राष्ट्र से प्राप्त नहीं हुआ है।

इन उपर्युक्त सिद्धान्तों में ऐसा कुछ नहीं है, जो महत्वाकांक्षा को उत्तेजित करके राष्ट्र को अव्यवस्थित कर दे। इन सिद्धान्तों का प्रयोजन है राष्ट्र की योग्यताओं और बुद्धि का आवाहन करना, ताकि उनके द्वारा सर्वसामान्य का हित-संपादन हो, न कि विशेष प्रकार के व्यक्तियों अथवा वंशों का हित या अभ्युदय हो। राजतंत्रीय प्रभुसत्ता को, जो मानव-जाति की शत्रु और दुःख का स्रोत है, समाप्त कर दिया गया और वह स्वयं अपने प्राकृतिक एवं मूल स्थान, राष्ट्र को सुपुर्द कर दी गयी। यदि यूरोप भर में ऐसा ही हो जाय तो युद्ध के

कारण ही नष्ट हो जायं।

कहा जाता है कि फ्रांस के हेनरी चतुर्थ ने, जो कि एक विशाल एवं दयालु हृदय का व्यक्ति था, सन् १६१० ई० के आसपास यूरोप में युद्ध का उन्मूलन करने की योजना प्रस्तुत की। उस योजना में यह कहा गया था कि यूरोप की एक कांग्रेस (फ्रांस के लेखकों ने इसे 'प्रशान्त जनतंत्र' के नाम से पुकारा है) का निर्माण हो, जिसमें राष्ट्रों के प्रतिनिधि नियुक्त किये जाएँ, और यदि दो राष्ट्रों में कोई झगड़ा हो तो वही कांग्रेस पंचायत करे। जिस समय प्रस्ताव किया गया था, यदि उसी समय इस योजना को स्वीकार कर लिया गया होता, तो फ्रांस की क्रान्ति के आरम्भ-काल में इंगलैण्ड और फ्रांस में जो कर लगे हुए थे वे अपेक्षाकृत दस लाख स्टर्लिंग वार्षिक कम होते।

इसका कारण जानने के लिए कि इस प्रकार की योजना क्यों नहीं स्वीकृत की गयी (और युद्ध का अन्त करने के लिए नहीं, वरन् कई वर्षों के व्यर्थ व्यय के उपरान्त केवल युद्ध समाप्त करने के लिए कांग्रेस का आयोजन क्यों किया गया)? सरकारों के हितों को राष्ट्रों के हितों से भिन्न समझना आवश्क है।

जो एक राष्ट्र के लिए करों का कारण होता है, वही सरकार की आय का साधन भी होता है। प्रत्येक युद्ध का अन्त करों में वृद्धि और परिणामतः सरकार की आय में वृद्धि के साथ होता है। जिस रूप में आजकल युद्ध आरम्भ या समाप्त किये जाते हैं, उसके अनुसार युद्ध की किसी भी स्थिति में सरकारों के अधिकार बढ़ा दिये जाते हैं। चूँकि युद्ध करों तथा पदों पर नवीन नियुक्तियों की आवश्यकता का बहाना सुगमता-पूर्वक प्रस्तुत करता है, अतः अपनी इस उपादेयता के नाते वह प्राचीन सरकारों का पद्धति का प्रमुख अंश है। युद्ध को समाप्त करने की किसी भी पद्धति की स्थापना का, वह राष्ट्र के लिए अत्यधिक लाभप्रद क्यों न हो, अर्थ होगा इस प्रकार की सरकार से उसके सर्वाधिक लाभप्रद अंश को नष्ट कर देना। जिन तुच्छ विषयों को लेकर आजकल युद्ध प्रारम्भ किये जाते हैं, वे सरकारों की युद्ध-प्रथा को बनाये रखने की प्रवृत्ति एवं उत्कट इच्छा को प्रकट करते हैं, और उन सिद्धान्तों का भण्डाफोड़ करते हैं, जिन पर वे सरकारें काम करती हैं।

जनतंत्रीय देश युद्ध में क्यों नहीं कूदते? इसका कारण केवल यही है कि उनकी सरकार की प्रकृति ऐसी है कि उनके हित राष्ट्र के हितों से भिन्न नहीं

होते। कुव्यवस्थित होने तथा संसार-भर में फैले हुए वाणिज्य के बावजूद भी हालैण्ड लगभग एक शती तक बिना युद्ध के रहा, और जिस क्षण फ्रांस में सरकार का स्वरूप बदल दिया गया, उसी क्षण नवीन सरकार के साथ-साथ वहाँ शान्ति के जनतंत्रीय सिद्धान्त तथा राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था एवं उन्नति का उद्‌भव हुआ। अन्य राष्ट्रों में भी ऐसे परिवर्तनों के ऐसे ही परिणाम होंगे।

युद्ध प्राचीन पद्धति की सरकारों का सिद्धान्त है और एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के प्रति शत्रुता का जो भाव रखता है, वह युद्ध-प्रथा को बनाए रखने के लिए सरकारों की नीति मात्र है। एक सरकार अन्य सरकार पर विश्वासघात, षड्यन्त्र और राष्ट्र की भावना को उत्तेजित तथा उसे भयंकर शत्रुता के रूप में परिवर्तित कर देने वाली महत्वाकांक्षा का आरोप करती है। मनुष्य, मनुष्य का शत्रु नहीं है, और यदि है, तो सरकार की ग़लत पद्धति के माध्यम से ही। इसलिए राजाओं की महत्वाकांक्षाओं के बदले इस प्रकार की सरकारों के सिद्धान्तों के विरुद्ध स्वर उठाना चाहिए और एक व्यक्ति का सुधार करने के बदले पद्धति का सुधार करने में राष्ट्र की बुद्धि का उपयोग करना चाहिए।

प्राचीन सरकारों के सिद्धान्त तथा स्वरूप, जो आज भी प्रचलित हैं, अपने स्थापना-काल के विश्व की स्थिति के अनुकूल थे या नहीं यह बात दूसरी है। वे जितने पुरातन होते जायेंगे, वर्तमान वस्तु-स्थितियों के लिए वे उसी मात्रा में अनुपयुक्त होते जायेंगे। समय तथा परिस्थितियों एवं मतों में हुए परिवर्तन का जो प्रगतिशील प्रभाव हमारी रीतियों और आचारों पर पड़ा है, उसीने सरकारों की प्राचीन पद्धतियों में परिवर्तन अनिवार्य कर दिया है। विश्व की पूर्वकालीन स्थिति की अपेक्षा आज के युग में कृषि, वाणिज्य तथा शिल्प आदि के लिए, जिनके द्वारा राष्ट्र की सर्वाधिक उन्नति होती है, भिन्न प्रकार की सरकार-पद्धति और बुद्धि की आवश्यकता है।

मनुष्य-जाति की प्रबुद्धावस्था को देखते हुए यह समझ लेना कठिन नहीं है कि आनुवंशिक सरकारें अपने पतन-बिन्दु पर पहुँच रही हैं, और यूरोप में राष्ट्रीय प्रभुता एवं प्रतिनिधित्व पर स्थापित सरकार के विस्तृत आधार पर क्रान्तियाँ होने जा रही हैं। इसलिए उन्हें विप्लव के सुपुर्द कर देने की अपेक्षा उनकी अनिवार्यता को अनुभव करके बुद्धि और समझौते के आधार पर उनकी स्थापना करना अधिक बुद्धिमानी होगी।

इस समय हम जो कुछ देखते हैं, उसके आधार पर हम कह सकते हैं कि राजनैतिक-क्षेत्र में किसी प्रकार के सुधार को असम्भव नहीं मानना चाहिए। यह क्रान्तियों का युग है जिसमें सभी कुछ सम्भव है। राजदरबारों का षड्यन्त्र, जिसके द्वारा युद्ध की प्रथा जीवित रखी जाती है, राष्ट्रों के एक संगठन को अपने विनाश के लिए उत्तेजित कर सकता है। स्वतंत्र सरकार की प्रगति के संरक्षण और राष्ट्रों की संस्कृति की वृद्धि के लिए यूरोप में एक कांग्रेस की स्थापना, फ्रांस और अमेरिका की क्रान्तियों तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों की अपेक्षा, सम्भावना के अधिक निकट है।

मनुष्य के अधिकार

(भाग २)

[भूमिका]

आर्किमिडीज (Archimedes) ने यान्त्रिक शक्तियों के विषय में कहा था कि यदि हमें खड़े होने को स्थान मिल जाय तो हम सारे विश्व को उठा दें। वही बात बुद्धि और स्वतन्त्रता के बारे में भी कही जा सकती है। यन्त्र-शास्त्र में जो केवल सिद्धान्त के रूप में था, अमेरिका की क्रान्ति ने उसे राजनीति के क्षेत्र में प्रत्यक्ष दिखला दिया। प्राचीन विश्व की सरकारों की जड़ें इतनी गहराई तक घँसी हुई थीं, और मस्तिष्क के ऊपर अत्याचार एवं प्राचीन विचार इस प्रभाव के साथ जमे हुए थे कि एशिया, अफ्रीका और यूरोप में मनुष्य की राजनैतिक स्थिति में सुधार-कार्य का आरम्भ नहीं हो सकता था। सम्पूर्ण विश्व में स्वतन्त्रता की भावना को खदेड़ा गया, ज्ञान को विद्रोही माना गया, और डर की दासता ने मनुष्य को सोचने से विमुख कर दिया था।

किन्तु सत्य की प्रकृति इतनी अप्रतिहत है कि उसे केवल प्रकट होने की स्वतन्त्रता चाहिए। अन्धकार से अपनी भिन्नता प्रकट करने के लिए सूर्य को किसी नाम अथवा प्रमाण की आवश्यकता नहीं पड़ती। ज्योंही अमेरिका की सरकारें विश्व में प्रकट हुईं, उसी क्षण निरंकुश सरकारों को धक्का लगा

और मनुष्य अपनी मुक्ति का उपाय सोचने लगा। यदि सरकारों के सिद्धान्तों और व्यवहारों के प्रति क्रान्ति न हुई होती, तो केवल इंगलैण्ड के सम्बन्ध-विच्छेद के रूप में, अमेरिका की स्वतंत्रता का महत्व बहुत कम होता। अमेरिका ने क्रान्ति की, न केवल अपने लिए वरन् समस्त विश्व के लिए; और उसने अपने हितों की परिधि के बाहर भी देखा। जर्मनी के सिपाही भी, जिन्हें अमेरिका के विरुद्ध लड़ने के लिए किराये पर बुलाया गया था, अपनी हार का आनन्द मनाएँगे और इंगलैण्ड अपनी सरकार की दुष्टता पर शिकायत करते हुए अपनी असफलता पर भी प्रसन्न होगा।

जिस प्रकार राजनैतिक विश्व में अमेरिका ही एक ऐसा स्थान था, जहाँ सार्वलौकिक सुधार के सिद्धान्त स्थापित हो सकते थे, उसी प्रकार प्राकृतिक विश्व में भी वह सर्वोत्तम था। इसके सिद्धान्तों को उत्पन्न करने के लिए ही नहीं, वरन् उन्हें महान परिपक्वता प्रदान करने के लिए भी परिस्थितियों का समूह यहाँ एकत्रित हुआ था।

किसी दर्शक के नेत्रों के सम्मुख वह महाद्वीप जो दृश्य प्रस्तुत करता है, उसमें कुछ ऐसी शक्ति है जो महान विचारों को उत्पन्न और प्रोत्साहित करती है। प्रकृति उसके सम्मुख अपने विराट् रूप में प्रस्तुत होती है। यहाँ के प्रथम निवासी यूरोप के विभिन्न राष्ट्रों को छोड़कर आने वाले व्यक्ति थे। उनके धर्म भिन्न-भिन्न थे और प्राचीन विश्व के सरकारी उत्पीड़न के कारण, वहाँ से भाग कर वे एक नये विश्व में शत्रु नहीं, वरन् भाई के रूप में मिले। निर्जन प्रदेश की प्रथम बस्ती-सम्बन्धी अनिवार्य आवश्यकताओं ने उनके मध्य वह सामाजिकता उत्पन्न कर दी जिसे सरकारों के झगड़ों एवं षड्यन्त्रों से चिर-पीड़ित देशों ने अब तक उपेक्षित रखा था। ऐसी स्थिति में मनुष्य वही होता है, जो उसे होना चाहिए। वह अपनी जाति को प्राकृतिक शत्रु के रूप में नहीं, वरन् बन्धु के रूप में देखता है। कृत्रिम जगत के लिए यह एक उदाहरण है, जो यह प्रकट करता है कि ज्ञान की प्राप्ति के लिए मनुष्य को प्रकृति की गोद में लौटना होगा।

सुधार की प्रत्येक दिशा में अमेरिका ने जो तीव्र प्रगति की है, उसके आधार पर यह निर्णय करना विवेकपूर्ण होगा कि यदि एशिया, अफ्रीका और यूरोप की सरकारें अमेरिका के सिद्धान्त के समान किसी सिद्धान्त के अनुसार

काम किए होती, तो इस समय तक उन देशों की दशा अपेक्षाकृत अधिक अच्छी होती। युग-पर-युग बीतते रहे, किन्तु उनकी दयनीय दशा ज्यों-की-त्यों बनी रही।

यदि हम एक ऐसे दर्शक की कल्पना करें जो संसार के विषय में कुछ नहीं जानता है और जो केवल घूमने के लिए संसार में छोड़ दिया गया है, तो उसे संसार का अधिकांश भाग नया प्रतीत होगा; क्योंकि वहाँ के लोग प्रारम्भिक बस्तियों की कठिनाइयों और अभावों से संघर्ष करते हुए प्रतीत होंगे। वह यह नहीं समझ सकेगा कि पीड़ित व्यक्तियों के ये समुदाय—प्राचीन देशों में जिनका आधिक्य है—वे ही हैं, जिन्हें अब तक अपनी व्यवस्था करने का अवसर ही नहीं प्राप्त हो सका है; और इस बात को तो वह सोच ही नहीं सकेगा कि इसका कारण उन देशों की सरकारें हैं।

प्राचीन विश्व के अधिक दयनीय भागों को छोड़कर यदि हम उन भागों को देखें जो सुधार की उन्नत स्थिति में हैं, तो हमें सरकार के लोभी हाथ अब भी सम्पूर्ण औद्योगिक क्षेत्र में बढ़ते हुए और देश की सम्पत्ति का अपहरण करते हुए मिलेंगे। आविष्कारों का उपयोग निरन्तर 'राजस्व' (Revenue) अथवा कर-निर्धारण के लिए नवीन बहाने प्रस्तुत करने में हो रहा है। ऐसी सरकार देश की सम्पन्नता पर आँख गड़ाये रहती है और अवसर आते ही अपना भाग ले लेती है।

चूँकि क्रांतियाँ आरम्भ हो चुकी हैं, अतः यह आशा करना स्वाभाविक है कि भविष्य में और भी क्रांतियाँ होंगी। विस्मयजनक एवं निरन्तर बढ़ते हुए व्यय जिनके द्वारा प्राचीन सरकारों का कार्य-संचालन होता है, वे बहुसंख्यक युद्ध जिनमें प्राचीन सरकारें भाग लेती हैं अथवा जिन्हें उत्तेजित करती हैं, सार्वलौकिक संस्कृति और वाणिज्य के मार्ग में उन सरकारों द्वारा प्रस्तुत की गयी व्यग्रता और देश में सरकारों द्वारा किये जानेवाले अपहरण और अत्याचार विश्व की सम्पत्ति को समाप्त कर चुके हैं; साथ-ही-साथ विश्व का धैर्य भी समाप्त हो चला हैं। ऐसी स्थिति में, और ऐसे उदाहरणों के उपस्थित रहते हुए, क्रांतियों की आशा करनी ही चाहिए। वे वर्तमान समय में सार्वलौकिक चर्चा के विषय बन गयी हैं।

यदि सरकार की ऐसी पद्धतियों का आरम्भ हो सकता है, जिनका व्यय

अपेक्षाकृत कम हो और जिनके द्वारा सार्वजनिक हित की अधिक वृद्धि हो तो उनकी प्रगति को रोकने के लिए किये गये सारे प्रयत्न, अन्ततः व्यर्थ सिद्ध होंगे। समय के समान बुद्धि भी स्वयं अपना काम कर लेगी ; और हित के सम्मुख पूर्व-धारणा की हार होगी। यदि सार्वलौकिक शांति, संस्कृति और वाणिज्य मनुष्य के भाग्य में हैं, तो सरकारों की पद्धति में क्रांति के द्वारा ही उनकी प्राप्ति सम्भव है। सभी राजतन्त्रीय सरकारें सैनिक-सरकारें हैं। युद्ध करना उनका व्यापार है ; लूटना तथा राजस्व प्राप्त करना उनका उद्देश्य है। जब तक ऐसी सरकारों का अस्तित्व रहेगा ; तब तक शांति एक दिन के लिए भी पूर्ण सुरक्षित नहीं है।

मानवीय दुर्गति के क्षोभपूर्ण चित्र तथा अल्पकालीन विश्राम के आकस्मिक विलम्ब के अतिरिक्त राजतन्त्रीय सरकारों का इतिहास और क्या है ? युद्ध और मानव-हत्याओं से थक कर वे सरकारें कुछ समय के लिए विश्राम लेने लगीं, और उनके विश्राम को 'शान्ति' कहा जाने लगा। निश्चित रूप से ईश्वर का अभिप्राय मनुष्य को ऐसी स्थिति में रखने का नहीं था और यदि यही राजतन्त्र है तो इसे यहूदियों के पापों में से एक मानना उचित ही रहा।

विश्व में पहले जितनी क्रान्तियाँ हुईं उनमें कोई ऐसी बात नहीं थी जो मानव-समुदाय को अपनी ओर आकृष्ट कर सके। उनके द्वारा केवल व्यक्तियों और कार्यों में परिवर्तन हुए, सिद्धान्तों में नहीं। युग के कई सामान्य कार्यों के समान उनके उद्भव और विलय हुए। हम इस समय जो क्रान्तियाँ देखते हैं, उन्हें प्रतिक्रान्तियाँ कहना अनुपयुक्त न होगा।

कभी समय था जब कि विजय और अत्याचार ने मनुष्य के अधिकार छीन लिये जिन्हें वह फिर से प्राप्त कर रहा है। मनुष्य के सभी कामों का तरंगवत् उत्थान और पतन परस्पर विरुद्ध दिशाओं में होता रहता है, इस विषय में भी वही हो रहा है। तलवार के बल पर सरकारें, जिस वेग के साथ, पूर्व से पश्चिम की ओर आयी थीं उसकी अपेक्षा अधिक वेग के साथ, नैतिक सिद्धान्तों, सार्वलौकिक शान्ति-व्यवस्था तथा मनुष्यों के अपरिहार्य एवं पैतृक अधिकारों पर आधारित सरकार पश्चिम से पूर्व की ओर जा रही है। अपनी प्रगति द्वारा यह सरकार विशेष व्यक्तियों को नहीं, वरन् राष्ट्रों को अपनी ओर आकृष्ट करती है और मानव-जाति के नवीन युग की ओर संकेत कर रही है।

क्रान्तियों की सफलता को सर्वाधिक भय उस समय होता है जब उनके आधारभूत सिद्धान्तों की स्थापना के पूर्व ही तथा उनके परिणामस्वरूप प्राप्त होने वाले लाभालाभ के विषय में पर्याप्त सोचे-समझे बिना ही, उन्हें प्रारम्भ करने का प्रयास किया जाता है। 'सरकार' के सामान्य और रहस्यपूर्ण शब्द में राष्ट्र की परिस्थितियों से सम्बन्धित सब कुछ समाविष्ट कर लिया गया है। यद्यपि 'सरकार' अपनी भूलों और दुष्टताओं का उत्तरदायित्व अपने सर नहीं लेती, किन्तु अच्छाइयों और सम्पन्नताओं का श्रेय लूटने से चूकती भी नहीं। उद्योग-जन्य लाभों को अत्यन्त कौशल के साथ अपने कार्यों का फल सिद्ध करके वह उद्योग से उसकी प्रतिष्ठा छीन लेती है, और मनुष्य के सामान्य चरित्र में से उन गुणों का श्रेय स्वयं ले लेती है जिन्हें वह सामाजिक प्राणी के नाते प्राप्त करता है।

इसलिए, क्रान्तियों के इन दिनों में यह समझ लेना हितकर है कि सरकार के कार्यों के परिणामस्वरूप क्या प्राप्त होता है और सरकार के प्रयत्नों के बिना क्या प्राप्त होता है। इसके लिए अच्छा यह होगा कि हम समाज, सभ्यता तथा उनके परिणामों को सरकार से भिन्न मानकर उन पर विचार करें। इस प्रकार की खोज आरम्भ करने से हम कार्यों के उचित कारण निर्दिष्ट करने तथा सामान्य त्रुटियों का विश्लेषण करने में समर्थ हो सकेंगे।

समाज और सभ्यता

मानव-जाति का शासन करनेवाली व्यवस्था का अधिकांश सरकार का कार्य नहीं है। उसका मूल समाज के सिद्धान्तों एवं मनुष्य की प्राकृतिक रचना में है। इस व्यवस्था का अस्तित्व सरकार से पहले का है और यदि सरकार का औपचारिक स्वरूप उठा दिया जाय तो भी वह बना रहेगा।

व्यक्ति और व्यक्ति तथा सुसभ्य समाज के सभी भागों के बीच परस्पर आश्रयत्व और पारस्परिक हित का एक ऐसा सम्बन्ध-सूत्र है जो उन्हें एक साथ बाँधे रखता है। भूमिधर, कृषक, उत्पादक, व्यापारी तथा अन्य सभी धन्धों के व्यक्ति एक दूसरे के एवं सम्पूर्ण समाज के सहयोग से उन्नति करते हैं।

सामान्य हित उनके कार्यों का नियमन करते हैं; वे ही उनके क़ानून हैं। सामान्य व्यवहार जिन क़ानूनों को निर्दिष्ट करते हैं, वे सरकार के कानूनों की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होते हैं। संक्षेप में, समाज स्वयं अपने लिए प्रायः वह सभी कुछ कर लेता है जिसका श्रेय सरकार को मिलता है।

सरकार की कितनी मात्रा और कैसी प्रकृति मनुष्य के लिए उचित है, यह समझने के लिए आवश्यक है कि हम मनुष्य के चरित्र पर विचार करें। प्रकृति ने मनुष्य को सामाजिक जीवन के लिए रचा है, इसलिए उसने उसे सामाजिक जीवन के अनुकूल बनाया भी है। सभी दशाओं में प्रकृति ने मनुष्य की आवश्यकताओं को उसकी व्यक्तिगत शक्ति से अधिक रखा है। कोई भी व्यक्ति समाज के सहयोग के बिना अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में समर्थ नहीं है; और प्रत्येक व्यक्ति की वे आवश्यकताएँ सभी को समाज में आने के लिए विवश कर देती हैं, ठीक उसी प्राकृतिक ढंग से जिस प्रकार गुरुत्वा[illegible]-श[illegible]न केन्द्र की ओर उन्मुख होती है।

प्रकृति ने न केवल आवश्यकताओं के वैविध्य द्वारा मनुष्य को समाज में आने के लिए विवश किया, वरन् उसने मनुष्य के भीतर ऐसी सामाजिक स्नेह-पद्धति निहित कर रखी है जो यद्यपि मनुष्य के अस्तित्व के लिए नहीं, किन्तु उसके आनन्द के लिए आवश्यक है। मानव-जीवन में ऐसा कोई समय नहीं है जब कि समाज के प्रति मनुष्य का स्नेह समाप्त हो जाय। इस सामाजिक स्नेह का अस्तित्व मानव-अस्तित्व के साथ-साथ रहता है।

यदि हम ध्यान-पूर्वक मनुष्य की रचना, उसकी आवश्यकताओं के वैविध्य, पारस्परिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विभिन्न मनुष्यों की भिन्न-भिन्न प्रकार की बुद्धि और समाज-निर्माण तथा उसके परिणामस्वरूप होने वाले हितों की सुरक्षा-सम्बन्धी मनुष्य की प्रवृत्ति पर विचार करें, तो हम सुगमतापूर्वक यह जान सकेंगे कि जिसे हम सरकार कहते हैं उसका अधिकांश अनावश्यक तत्व है।

जिन स्थितियों में समाज और सभ्यता सुविधापूर्वक कार्य करने में समर्थ नहीं है, केवल उन्हीं स्थितियों में सरकार की आवश्यकता है। इस बात को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त प्रमाण दिये जा सकते हैं कि सरकार से जो कुछ उपयोगी वस्तु प्राप्त हो सकती है, वह बिना सरकार के, समाज की सामान्य सहमति के द्वारा प्राप्त की गयी है।

अमेरिका में युद्ध आरम्भ होने के दो वर्ष पूव से, तथा अमेरिका के कई राज्यों में तो इससे भी पहले से, सरकार का कोई व्यवस्थित स्वरूप नहीं था। प्राचीन सरकारें समाप्त कर दी गयीं और देश अपनी रक्षा में इतना व्यस्त था कि वह नवीन सरकार की स्थापना की ओर ध्यान नहीं दे सकता था। फिर भी इस कालावधि में यूरोप के किसी भी देश के समान, अमेरिका में, व्यवस्था और अनुरूपता बनी रही।

मनुष्य में अपने को परिस्थितियों के अनुकूल बना देने की क्षमता होती है। समाज में विभिन्न प्रकार की योग्यताएँ और साधन एक की अपेक्षा अधिक होते हैं, और इसलिए उसमें व्यक्ति की अपेक्षा उपर्युक्त प्राकृतिक क्षमता भी अधिक होती है। जिस क्षण औपचारिक सरकार को समाप्त कर दिया जाता है, उसी क्षण समाज कार्य करना आरम्भ कर देता है। एक सामान्य संगठन उत्पन्न होता है और सामान्य हितों के कारण सार्वजनिक सुरक्षा बनी रहती है।

यह कथन कि औपचारिक 'सरकार' का उन्मूलन करना समाज को भंग करना है, सत्य से पर्याप्त दूर है। वास्तविकता यह है कि औपचारिक 'सरकार' का उन्मूलन करने पर समाज अपेक्षाकृत अधिक संगठित होता है। समाज-व्यवस्था का वह सम्पूर्ण अंश, जो समाज ने सरकार को सौंप दिया था, 'सरकार' के भंग होने पर, पुनः समाज के पास लौट आता है और उसके माध्यम से कार्य करने लगता है।

मनुष्य अपनी प्राकृतिक प्रवृत्ति और पारस्परिक लाभ के कारण सामाजिक और सभ्य जीवन के अभ्यस्त हो गये हैं। अत: उनके जीवन में व्यवहार-गत सिद्धान्तों का प्राचुर्य रहता हैं जो सरकार-विषयक सभी परिवर्तनों में, जिन्हें वे सुविधाजनक या आवश्यक समझते हैं, उनका पथ-प्रदर्शन करता है। संक्षेप में, मनुष्य स्वभावतः ऐसा सामाजिक प्राणी है कि उसे समाज से अलग रखना नितान्त असम्भव है।

औपचारिक 'सरकार' सभ्य जीवन का अल्पांश है। मानव-बुद्धि द्वारा आविष्कृत सर्वोत्तम सरकार भी क्यों न स्थापित की जाय, वह वास्तविकता की अपेक्षा नाम और विचार की वस्तु अधिक होगी। समाज और सभ्यता के महान एवं मौलिक सिद्धान्त पर, सार्वलौकिक रूप में स्वीकृत सामान्य व्यवहार पर तथा हित के निरन्तर संचालन पर, जो लाखों स्रोतों में से होता हुआ सभ्य मनुष्यों

के सम्पूर्ण समुदाय को शक्ति प्रदान करता है, व्यक्ति की और पूरे समाज की सुरक्षा एवं उन्नति निर्भर है। सर्वाधिक व्यवस्थित सरकार के कार्यों द्वारा भी जो कुछ सुरक्षा एवं उन्नति प्राप्त होती है, वह अपेक्षाकृत अत्यल्प होती है।

सभ्यता जितनी पूर्ण होगी, सरकार की आवश्यकता उतनी ही कम होगी; क्योंकि उसी मात्रा में वह अपने कार्यों का नियमन करके शासन करेगा? किन्तु सरकारों का कार्य इसके विपरीत होता है। उनका व्यय उस मात्रा में बढ़ता है जिस मात्रा में उसे कम होना चाहिए। सभ्य जीवन के लिए केवल थोड़े से सामान्य क़ानूनों की आवश्यकता है और उनकी इतनी सार्वजनिक उपयोगिता होती है कि चाहे उन्हें सरकार द्वारा कार्यान्वित किया जाय या न किया जाय, उनका प्रभाव प्रायः वही रहेगा। यदि हम इस बात पर विचार करें कि वे कौन-कौन से सिद्धान्त हैं जो मनुष्यों को सर्वप्रथम समाज में आने के लिए विवश करते हैं, और वे कौन-कौन सी प्रवृत्तियाँ हैं जो बाद में उनके पारस्परिक सम्बन्धों का नियमन करती हैं, तो इसके पहले कि हम 'सरकार' तक पहुँचे, हमें यह ज्ञात हो जायगा कि समाज के विभिन्न भाग आपस की प्राकृतिक क्रिया द्वारा प्रायः सम्पूर्ण कार्य निष्पादित कर लेते हैं।

मनुष्य उन सभी विषयों में उससे कहीं अधिक संगति-प्रिय प्राणी है जितना कि वह अपने को समझता है, अथवा सरकार उससे जितना विश्वास करने की अपेक्षा रख सकती है। समाज के बड़-बड़े कानून प्रकृति के नियम हैं। व्यक्तियों के बीच अथवा राष्ट्रों के बीच होने वाले वाणिज्य के क़ानून पारस्परिक हित के नियम हैं। उनका पालन इसलिए नहीं होता कि सम्बन्धित पक्षों की सरकारों ने उन्हें मानने के लिए क़ानून बनाये हैं; वरन् इसलिए कि वैसा करने से उनके हितों का सम्पादन होता है।

किन्तु सरकार की क्रिया द्वारा प्रायः समाज की यह प्राकृतिक प्रवृत्ति अव्यवस्थित अथवा नष्ट कर दी जाती है। जब सरकार, सामाजिक सिद्धान्तों पर आधारित न होकर अपनी स्वतंत्र सत्ता स्वीकार करके पक्षपात और अत्याचार के द्वारा कार्य करने लगती है, तो वह उन दुराचारों का कारण बन उठती है जिन्हें उसे रोकना चाहिए।

यदि हम इंगलैण्ड में समय-समय पर होने वाले दंगों एवं विप्लव आदि पर विचार करें तो हमें यह ज्ञात होगा कि उनका कारण 'सरकार' का अभाव

नहीं था, वरन् 'सरकार' स्वयं उनका कारण थी। समाज को संगठित करने के स्थान पर उसने उसे विभाजित कर दिया। उसने समाज को उसके प्राकृतिक सम्बन्धों से वंचित कर दिया और असंतोषों तथा अव्यवस्थाओं को जन्म दिया जो अन्यथा न हुआ होता।

जिन संघोंमें सभी प्रकार के मनुष्य व्यापार अथवा उन सभी कामों के लिए एकत्र होते हैं जिनसे सरकार का कोई सम्बन्ध नहीं है या जिन संघों में वे केवल सामाजिक सिद्धांतों के आधार पर कार्य करते हैं, उनमें विभिन्न पक्ष अत्यन्त स्वाभाविक रूप से संघटित हो जाते हैं। तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यवस्था के साधन अथवा निमित्त होना तो दूर रहा, सरकारें प्राय: उनके विनाश का कारण होती हैं। सन् १७८० ई० के विप्लव के कारण केवल उन पक्षपातों के अवशेष थे, जिन्हें सरकार ने स्वयं प्रोत्साहन दिया था। किन्तु इंगलैण्ड के विषय में अन्य कारण भी हैं।

करों को विभिन्न साधनों का बाना पहना कर कितना ही परिवर्तित रूप क्यों न दे दिया जाय, किन्तु वे अपने आधिक्य और विषमता के परिणामों को लेकर अनिवार्यत: प्रकट हो ही जाते हैं। उनके द्वारा समुदाय के अधिकांश व्यक्ति दरिद्रता और असंतोष का शिकार बन जाते हैं, अत: वे निरन्तर विक्षोभ की स्थिति में रहते हैं, और चूँकि अभाग्यवश वे ज्ञान के साधनों से वंचित रहते हैं, इस लिए वे शीघ्र ही अत्यधिक हिंसा में प्रवृत्त हो जाते हैं। किसी दंगे का प्रत्यक्ष कारण चाहे कुछ भी हो, किन्तु वास्तविक कारण सुख का अभाव ही होता है। इससे प्रकट होता है कि सरकार की पद्धति में कोई ऐसी त्रुटि है जो उस सुख को क्षति पहुँचाती है और जिसके द्वारा समाज उपद्रवों से बचा रहता है।

तथ्य तर्क से श्रेष्ठ होता है। अमेरिका का उदाहरण उपर्युक्त विचारों की पुष्टि करता है। यदि विश्व में ऐसा कोई देश है, जहाँ सामान्य अनुमान के अनुसार एकता की सबसे कम आशा की जा सकती है, तो वह अमेरिका है। भिन्न-भिन्न राष्ट्रों से आकर लोग यहाँ बसे हैं; वे सरकार की विभिन्न प्रकृति और स्वरूपों के अभ्यस्त हैं; उनकी भाषाएँ और उनकी उपासना-पद्धतियाँ भिन्न-भिन्न हैं। अत: विभिन्न प्रकार के इन लोगों का एक होना अव्यावहारिक प्रतीत होगा। किन्तु मनुष्य के अधिकारों तथा सामाजिक सिद्धांतों के आधार पर 'सरकार-निर्माण' की साधारण क्रिया द्वारा सभी कठिनाइयाँ दूर हो गयीं और

अमेरिका के सभी भाग हार्दिक एकता के सूत्र में बँध गये हैं। वहाँ न तो निर्धन पीड़ित है, और न धनियों को अमामान्य अधिकार प्राप्त हैं। उनके कर थोड़े हैं, क्योंकि उनकी सरकार न्यायशील है; और चूँकि उन्हें दीन बनाने की कोई चीज़ नहीं है, इस लिए वहाँ उपद्रव अथवा अव्यवस्था के कारण उत्पन्न होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

बर्क के समान तत्ववेत्ता व्यक्ति, ऐसे जनों पर किस प्रकार शासन होना चाहिए इसकी कोई योजना ढूँढ़ निकाले होता। उसकी यह मान्यता होती कि कुछ को जाल-फसाद द्वारा, अन्यों को बल-प्रयोग द्वारा और सबको किसी 'आविष्कृत योजना' द्वारा शासित करना चाहिए। वह यह कहता कि अज्ञानता पर लादने के लिए अपूर्व बुद्धि को किराये पर लिया जाना चाहिए; और साधारण लोगों को मुग्ध करने के लिए तड़क-भड़क का प्रदर्शन करना चाहिए। अपने अन्वेषणों के आधिक्य में खोया हुआ वह व्यक्ति व्यवस्था-सम्बन्धी नाना प्रकार के निश्चय-पुर्नानिश्चय करता हुआ अन्त में प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने वाले सरल और सुगम मार्ग की उपेक्षा कर बैठता।

अमेरिका की क्रांति के महान लाभों में से एक लाभ यह है कि उसने सिद्धांतों का अन्वेषण किया और सरकारों के छल का भण्डाफोड़ कर दिया। अब तक जितनी क्रांतियाँ हुई थीं वे राष्ट्र के विस्तृत धरातल पर नहीं, वरन् केवल राज-दरबार की परिधि के भीतर ही हुईं। इन क्रांतियों के उभय पक्ष के व्यक्ति सदैव दरबारियों के वर्ग के होते रहे हैं, और उनकी सुधार-सम्बधी इच्छा चाहे जो कुछ रही हो, उन्होंने सावधानी के साथ उस पेशे के जाल को बचाये रखा।

सभी दशाओं में उन्होंने सरकार को रहस्यों द्वारा निर्मित एक ऐसी वस्तु के रूप में, जिसे केवल वे ही समझ सकते थे, प्रस्तुत करने की सावधानी रखी। उन्होंने इस सत्य को कि सरकार सामाजिक सिद्धांतों के अनुसार काम करने वाले राष्ट्रीय संघ के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, राष्ट्र की समझ से परे रखा; यद्यपि इसे जान लेना राष्ट्र के लिए ही लाभप्रद था।

अब तक मैंने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि मनुष्य की सामाजिक और सभ्यता की स्थिति अपने शासन और सुरक्षा के लिए प्रायः सभी आवश्यक कार्यों को सम्पन्न करने में समर्थ है। इसके बाद हमें वर्तमान प्राचीन सरकारों का

परीक्षण करके यह देखना चाहिए कि इन सरकारों के सिद्धांत और व्यवहार किस प्रकार के हैं।

सरकार की प्राचीन और नवीन पद्धतियाँ

प्राचीन सरकारों को प्रारम्भ करने वाले आधारभूत सिद्धांतों तथा उस स्थिति में जहाँ तक समाज, संस्कृति और वाणिज्य मानव-जाति को ले जाने में समर्थ हैं, जितना अंतर है उतना अन्यत्र कहीं नहीं हो सकता। प्राचीन पद्धति की सरकार स्वयं अपनी उन्नति के लिए सत्ता ग्रहण करती है और नयी पद्धति की सरकार को समाज के सार्वजनिक हित के लिए अधिकार सौंपा जाता है। प्रथम प्रकार की सरकार युद्ध की प्रथा को अक्षुण्ण रख कर अपना पोषण करती है और दूसरे प्रकार की सरकार राष्ट्र को सम्पन्न करने के वास्तविक साधन-स्वरूप शांति-व्यवस्था को प्रोत्साहन देती है। पहली, राष्ट्रीय पूर्वधारणाओं को बल प्रदान करती है, और दूसरी सार्वदेशीय वाणिज्य के साधन के रूप में सार्वदेशीय समाज को प्रगति प्रदान करती है। एक राजस्व (Revenue) की मात्रा से राष्ट्र की सम्पन्नता को मापती है और दूसरी करों की अल्पतम आवश्यक मात्रा द्वारा अपनी उत्तमता सिद्ध करती है।

बर्क ने 'पुराने और नये ह्विगों' के विषय में चर्चा की है। यदि इन व्यर्थ के नामों और भेदों से वे अपना मनोरंजन कर सकें तो मैं उनके आनन्द में बाधक नहीं बनूँगा। बर्क के लिए नहीं, वरन् एबे-सेएस (Abbe Sicyes) के लिए मैं इस अध्याय को लिख रहा हूँ। इन दूसरे सज्जन के साथ राजतंत्रीय सरकार के विषय में मेरा विवाद पहले से है, और चूँकि प्राचीन और नवीन सरकारों की तुलना करते समय राजतंत्रीय सरकार की चर्चा स्वाभाविक रूप से उठ पड़ती है, इस लिए मैं उनके सम्मुख अपने विचारों को रखने में इस अवसर का उपयोग कर रहा हूँ। समय-समय पर बर्क का उल्लेख करता रहूँगा।

यह सिद्ध किया जा सकता है कि आज जिसे सरकार की नवीन पद्धति कहते हैं, वह मनुष्य के मौलिक एवं स्वाभाविक अधिकारों पर आधारित होने के नाते, सिद्धान्ततः सभी पद्धतियों से प्राचीन है। किन्तु, चूँकि अत्याचार और शक्ति ने गत कई शताब्दियों तक उन अधिकारों के प्रयोग को रोक रखा था, इसलिए प्राचीन कहने की अपेक्षा उसे नवीन कहना ही भेद की दृष्टि से अधिक अच्छा होगा।

इन दो पद्धतियों का प्रथम सामान्य अन्तर यह है कि प्राचीन सरकार अंशतः या पूर्णतः आनुवंशिक होती है, और नवीन सरकार नितांत प्रतिनिधित्वात्मक होती है तथा वह सभी आनुवंशिक सरकारों को निम्नांकित कारणों से अस्वीकार करती है।

(१) आनुवंशिक सरकार मानव-जाति पर लादी गयी सरकार है।

(२) और आनुवंशिक सरकार उन सभी कामों के लिए अनुपयुक्त है जिनके लिए सरकार की आवश्यकता पड़ती है।

जहाँ तक पहले कारण का सम्बन्ध है, यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि अमुक अधिकार के बल पर आनुवंशिक सरकार स्थापित हुई। उसे स्थापित करने का अधिकार मानव-शक्ति की परिधि के भीतर भी नहीं है। व्यक्तिगत अधिकार का जहाँ तक प्रश्न है, मनुष्य को अपनी सन्तान के ऊपर कोई अधिकार नहीं हैं; और इसलिए किसी एक व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह को आनुवंशिक सरकार की स्थापना करने का अधिकार न था, और न हो सकता है। मरने के बाद यदि सन्तति के स्थान पर स्वयं हम लोग पुनः उत्पन्न होने वाले हों, तो भी हमें इस समय उन अधिकारों को स्वयं से छीनने का कोई अधिकार नहीं है जो दूसरे जन्म में हमें प्राप्त होंगे। फिर किस आधार पर, हम अन्यों के उन अधिकारों को छीन सकते हैं?

अब दूसरी बात पर विचार कीजिए; अर्थात् इस बात पर विचार कीजिए कि आनुवंशिक सरकार उन सभी कामों के लिए अनुपयुक्त है जिनके लिए सरकार की आवश्यकता पड़ती है। पहले हम यह देखें कि सरकार वास्तव में है क्या? फिर इसकी तुलना उन परिस्थितियों के साथ करें जिनके आधीन आनुवंशिक सरकारें रहती हैं। सरकार को सर्वदा प्रौढ़ रहना चाहिए। उसका निर्माण इस प्रकार होना चाहिए कि वह उन सभी आकस्मिक घटनाओं का नियन्त्रण कर सके जो मनुष्य को, व्यक्ति के रूप में, अपने आधीन रखती हैं। चूँकि आनुवंशिक उत्तराधिकार उन सभी आकस्मिक घटनाओं के आधीन है, इसलिए वह सरकार की सभी पद्धतियों में सर्वाधिक अनियमित और अपूर्ण है।

'मनुष्य के अधिकारों' को कुछ लोगों ने 'समतलन पद्धति' के नाम से संबोधित किया है। किन्तु, वास्तव में, केवल आनुवंशिक राजतन्त्रीय पद्धति

को इस नाम से पुकारना चाहिए क्योंकि यह मानसिक समतलन की पद्धति है। अविवेकपूर्ण ढंग से यह पद्धति मानव-चरित्र के प्रत्येक प्रकार को एक ही पद के लिए स्वीकार करती है। बुराई और अच्छाई, अज्ञान और ज्ञान, संक्षेप में सभी प्रकार के चरित्रों को, चाहे वे 'सु' हो या 'कु', यह पद्धति एक ही धरातल पर रखती है। एक के बाद दूसरे राजा गद्दी पर बैठते हैं; विवेकशीलों के रूप में नहीं, पशुओं के रूप में। उनके मानसिक अथवा नैतिक चरित्रों पर विचार नहीं किया जाता है।

जबकि राजतंत्रीय देशों में स्वयं सरकार इस प्रकार की तुच्छ 'समतलन पद्धति' पर निर्मित होती है, तो वहाँ के मनुष्यों की तुच्छ मानसिक स्थिति पर क्या हम आश्चर्य कर सकते है ? इस प्रकार की सरकार स्थिर प्रवृत्ति की नहीं होती। आज यह एक प्रकार की है, कल बदल सकती है। प्रत्येक उत्तराधिकारी की प्रकृति के अनुसार इसकी प्रकृति भी बदलती रहती है। यह उत्कट भावों और आकस्मिक घटनाओं के माध्यम से काम करने वाली सरकार है। यह शिशुओं, युवकों और निर्बल वृद्धों, अर्थात् सभी प्रकार के मनुष्यों द्वारा शासित होती है। सरकार की यह पद्धति प्रकृति के लाभप्रद क्रम के विपरीत काम करती है, क्योंकि समय-समय पर यह बच्चों को प्रौढ़ों के ऊपर और बचपन की अपरिपक्व बुद्धि को प्रौढ़ बुद्धि एवं अनुभव के ऊपर रख देती है। संक्षेप में आनुवंशिक सरकारें जितनी हास्यास्पद हैं उतनी अन्य किसी प्रकार की सरकार नहीं हो सकती।

यदि प्रकृति का यह निर्णय होता अथवा यह दैवी घोषणा होती और मनुष्य उसे जानता, कि सदाचार और बुद्धि का आनुवंशिक उत्तराधिकार से अनिवार्य सम्बन्ध है, तो आनुवंशिक सरकारों के विरुद्ध जो कुछ कहा जाता है उसका निराकरण हो जाता। किन्तु जब हम यह देखते हैं कि प्रकृति इस प्रकार कार्य करती है मानो वह आनुवंशिक पद्धति को अस्वीकार करती हुई उसका उपहास करती है; जब हम यह देखते हैं कि सभी देशों में उत्तराधिकारियों के मानसिक चरित्र मानव-बुद्धि के सामान्य स्तर से निम्न है; जब हम देखते हैं कि एक राजा अत्याचारी है, दूसरा मूर्ख, तीसरा पागल और चौथा एक साथ ही अत्याचारी, मूर्ख और पागल तीनों हैं; तो आनुवंशिक सरकार में आस्था रखना असम्भव हो जाता है।

एबे-सेएस (Abbe Sicyes) के लिए मुझे यह तर्क प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने आनुवंशिक सरकार के विषय में अपना मत देकर मुझे इस कष्ट से पहले ही बचा लिया है। वे कहते हैं:—यदि यह पूछा जाय कि आनुवंशिक अधिकार के बारे में मेरा क्या मत है, तो निस्संकोच मैं यह उत्तर दूंगा कि किसी अधिकार अथवा पद को विरासत का स्वरूप देना, अच्छे सिद्धान्त के रूप में, वास्तविक प्रतिनिधित्व के नियमों की बराबरी नहीं कर सकता। इस अर्थ में, सरकार की विरासत जिस मात्रा में सिद्धान्त की कालिमा है उसी मात्रा में वह समाज के ऊपर अत्याचार भी हैं। किन्तु, यदि निर्वाचन द्वारा स्थापित सभी राजतंत्रीय सरकारों और अधिनायकतंत्रीय सरकारों के इतिहास पर हम थोड़ा विचार करें तो क्या एक भी ऐसा उदाहरण है जहाँ निर्वाचन-पद्धति आनुवंशिक उत्तराधिकार-पद्धति की अपेक्षा अधिक बुरी नहीं रही है?

इस पर विवाद करना कि दो में से कौन अपेक्षाकृत अधिक त्रुटिपूर्ण पद्धति है दोनों को त्रुटिपूर्ण मान लेना है, और इस विषय में हम सब सहमत हैं। एबे-सेएस (Abbe Sicyes) ने उन दोनों में से जिस पद्धति को श्रेष्ठता प्रदान की हैं वह वास्तव में उसकी श्रेष्ठता नहीं, वरन् निन्दा है। किन्तु इस विषय पर इस प्रकार का तर्क अग्राह्य है; क्योंकि यह तर्क अन्ततः दैव पर अभियोग के रूप में परिणत हो जाता है। मानो, सरकार के विषय में दैव ने मनुष्यों को उन दो बुराइयों, जिनमें से श्रेष्ठ बुराई को एबे (Abbe) ने 'सिद्धान्त की कालिमा और समाज के ऊपर अत्याचार माना है', में से एक को चुनने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग ही नहीं छोड़ा है।

राजतन्त्रीय सरकार ने आज तक विश्व में जितने दुराचार किये हैं उन पर यदि विचार न किया जाय तो भी उसको आनुवंशिक सम्पत्ति बना देना, असैनिक सरकार (Civil Government) के रूप में उसकी व्यर्थता का सर्वाधिक प्रभावशाली प्रमाण है। जिस कार्य के लिए योग्यताओं और बुद्धि की आवश्यकता है, क्या हमें उसे पतृक सम्पत्ति मानना चाहिए? जिस कार्य के लिए योग्यताएँ और बुद्धि आवश्यक नहीं हैं, वह चाहे जो कुछ हो, अनावश्यक और व्यर्थ है।

आनुवंशिक उत्तराधिकार राजतन्त्र का उपहास है। इस आनुवंशिक

अधिकार ने राजतन्त्र के शीर्षस्थान पर एक शिशु अथवा मूर्ख का बैठाकर उसे अत्यन्त हास्यास्पद स्थिति में रख दिया है। इस पद्धति के अन्तर्गत साधारण शिल्पकार में तो कुछ गुणों का होना आवश्यक माना जाता है, किन्तु राजा होने के लिए केवल मनुष्य की आकृति की, साँस लेने वाले एक प्रकार के स्व-चालित यन्त्र की आवश्यकता होती है। इस प्रकार का अंधविश्वास कुछ और वर्षों तक चल सकता है, किन्तु वह मनुष्य की जाग्रत बुद्धि के समक्ष अधिक समय तक टिक नहीं सकता।

यदि बर्क महोदय को निवृत्ति-वेतन (Pension) मिलता है और जैसा कि मेरा विश्वास है उन्हें वह मिलता है, तो केवल एक निवृत्ति-वेतन पाने वाले व्यक्ति के रूप में नहीं, वरन् एक राजनीतिज्ञ के रूप में वे राजतन्त्र के प्रबल समर्थक हैं। मनुष्य-जाति के विषय में उनका मत अत्यन्त घृणास्पद है, और बदले में उनके प्रति लोगों का वैसा ही मत बन रहा है। उन्होंने मनुष्य-समाज को जाल, प्रतिमा और प्रदर्शन आदि से शासित होने वाले जीवधारियों का समुदाय समझ रखा है। किन्तु उन्होंने अमेरिका की प्रशंसा की है। उन्होंने सदैव इस बात को स्वीकार किया है कि इंगलैण्ड अथवा यूरोप के किसी भी देश के निवासियों की अपेक्षा अमेरिका के निवासी अधिक जाग्रत हैं।

यद्यपि आनुवंशिक और निर्वाचन पर आधारित राजतन्त्रीय सरकारों की तुलना, जैसी एबे (Abbe) ने की है, इस स्थल पर आवश्यक नहीं है; क्योंकि प्रतिनिधित्व की पद्धति दोनों को अस्वीकार करती है। किन्तु यदि मैं तुलना करूँ, तो मेरा निर्णय एबे (Abbe) के निर्णय से भिन्न होगा।

आनुवंशिक दावे सम्बन्धी झगड़ों के कारण होने वाले गृह-युद्ध संख्या में अधिक है और निर्वाचन के कारण होने वाले झगड़ों की अपेक्षा वह झगड़ अधिक भयानक तथा चिरस्थायी रहे हैं। फ्रांस के सभी गृह-युद्ध इसी आनुवंशिक पद्धति के कारण हुए। उन युद्धों का आरम्भ या तो उत्तराधिकार सम्बन्धी झगड़ों से हुआ या राज-प्रतिनिधि अथवा गोद के बच्चे को स्वीकार करने वाली आनुवंशिक पद्धति की अपूर्णता से हुआ।

इंगलैण्ड का इतिहास इस प्रकार की दुर्गतियों से भरा है। यार्क और लंकास्टर के घरानों के बीच उत्तराधिकार विषयक झगड़े पूरी एक शती तक चलते रहे। इसी प्रकार के अन्य झगड़े भी उस समय से होते रहे हैं। सन्

१७१५ ई० और १७४५ ई० के झगड़े इसी प्रकार के थे। स्पेन की राजगद्दी के उत्तराधिकार-विषयक झगड़े ने तो आधे यूरोप को उलझा रखा था। हालैण्ड की अव्यवस्थाओं के मूल में आनुवंशिक अधिकार ही है। यदि कोई सरकार, जिसके अन्तर्गत कोई आनुवंशिक पद है, अपने को स्वतन्त्र कहती है तो वह उस मांसगत कण्टक के समान है जो शरीर में ऐसी उत्तेजना उत्पन्न करता है जो उसीको निकाल फेंकने का प्रयत्न करती है।

इतना ही नहीं, सभी प्रकार के विदेशी युद्धों के मूल में भी यही कारण कार्य करता है। राजतन्त्र के साथ आनुवंशिक उत्तराधिकार के गठबन्धन द्वारा वंश-विशेष के स्थायी स्वार्थ की उत्पत्ति होती है। साम्राज्य और राजस्व (Revenue) की प्राप्ति उस सरकार का सतत उद्देश्य हो जाता है। निर्वाचन पर आधारित राजतन्त्र होते हुए भी पोलैण्ड को उन देशों की अपेक्षा कम युद्ध लड़ने पड़े जहाँ की सरकारें आनुवंशिक राजतन्त्रीय हैं। पोलैण्ड की सरकार ही एक ऐसी सरकार है, जिसने स्वेच्छा से देश की दशा को सुधारने का प्रयत्न किया है।

इस प्रकार सरकार की प्राचीन या आनुवंशिक पद्धति के कुछ दोषों पर प्रकाश डाल लेने के बाद, अब हम नवीन पद्धति अथवा प्रतिनिधि-पद्धति से उसकी तुलना करें।

प्रतिनिधि-पद्धति समाज तथा सभ्यता को अपना आधार और प्रकृति, बुद्धि एवं अनुभव को अपना पथ-प्रदर्शक मानती है।

सभी युगों में और सभी देशों में, अनुभव ने यह सिद्ध किया है कि मानसिक शक्तियों के वितरण में प्रकृति का नियन्त्रण करना असम्भव है। वह अपनी इच्छा से उनका वितरण करती है। किस नियम के अनुसार वह मानव-जाति में उन मानसिक शक्तियों का वितरण करती है, यह मनुष्य के लिए रहस्य ही बना रहता है। मानव-सौन्दर्य के समान ही बुद्धि को आनुवंशिक बनाने का प्रयत्न हास्यास्पद है।

बुद्धि मूलतः चाहे जो हो, वह एक निर्बीज पौधे के समान है। उत्पन्न होने पर इसका पोषण किया जा सकता है, किन्तु इच्छानुसार इसे उत्पन्न नहीं किया जा सकता। समाज के सामान्य समुदाय में सभी प्रकार के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उपयुक्त शक्ति कहीं न कहीं सदैव वर्तमान रहती है। आज कोई शक्ति

एक स्थल पर दिखलाई देती है, तो कल दूसरे स्थल पर और बहुत सम्भव है कि यह शक्ति क्रमशः विश्व के प्रत्येक कुल में जाकर लौट आयी हो।

यह प्रकृति की व्यवस्था है। अतः सरकार की व्यवस्था भी इसी प्रकार की होनी चाहिए; अन्यथा जैसा कि हम देख रहे हैं, सरकार अज्ञान में पड़कर भ्रष्ट हो जायगी। इसलिए आनुवंशिक-पद्धति मनुष्य की बुद्धि तथा अधिकारों के विपरीत है और साथ-ही-साथ अन्याय एवं मूर्खता है।

साहित्यिक जनतंत्र जिस प्रकार प्रतिभावान व्यक्ति को सुन्दर और सार्व-लौकिक अवसर प्रदान करने के कारण सर्वोत्तम कृतियों का निर्माण करता है, उसी प्रकार सरकार की प्रतिनिधि-पद्धति बुद्धि को सभी सम्भव स्थलों से एकत्रित करके सर्वोत्तम नियम बनाती है। यदि साहित्य और सभी विज्ञान पैतृक बना दिये जायं, तो वे जिस हास्यास्पद तुच्छता को प्राप्त होंगे उसका विचार करके मैं मन ही मन हँसता हूँ। सरकार के बारे में भी मेरा यही मत है। आनुवंशिक लेखक जितना असंगत है, उतना ही असंगत है आनुवंशिक शासक। मैं यह नहीं जानता कि होमर (Homer) या यूकलिड (Euclid) के पुत्र थे या नहीं; किन्तु इतना कहने का साहस करता हूँ कि यदि उन्हें पुत्र होते, और वे अपनी कृति अधूरी छोड़ गये होते तो वे पुत्र उन कृतियों को पूरा न कर पाते।

जीवन के किसी क्रम में जो व्यक्ति कभी प्रसिद्ध थे उनके वंशजों में आनुवंशिक सरकार की मूर्खता का जो प्रमाण मिलता है, क्या उससे भी बढ़कर किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता हैं? क्या ऐसा भी कोई दृष्टांत है जिसमें चरित्र नितांत विपरीत न हो गया हो। ऐसा लगता है कि मानसिक शक्तियों की लहर किसी स्रोत में, जहाँ तक प्रवाहित हो सकती थी वहाँ तक गयी और फिर अपना रास्ता बदलकर अन्यत्र प्रवाहित हुई। आनुवंशिक-पद्धति अत्यन्त अविवेकपूर्ण हैं, क्योंकि यह पद्धति शक्ति का ऐसा स्रोत स्थापित करती है जिसमें प्रवाहित होना बुद्धि को स्वीकार नहीं है। इस मूर्खता को बनाये रखने के कारण मनुष्य शाश्वत रूप से असंगति-पूर्ण कार्य करता है। वह उस आदमी को अपना राजा, मुख्य न्यायाधीश अथवा व्यवस्थापक स्वीकार कर लेता हैं जिसे वह एक सिपाही के भी पद पर नियुक्त नहीं करेगा।

सामान्य रूप से यह ज्ञात होता है कि क्रान्तियाँ प्रतिभा या गुणों को उत्पन्न करती है। किन्तु वास्तविकता यह है कि क्रान्तियाँ प्रतिभा और गुणों को उत्पन्न

नहीं करतीं; वरन् उन्हें प्रकाश में ला देती हैं। मनुष्य में बुद्धि की ऐसी सुप्त राशि है जो, यदि उसे कार्य करने के लिए उत्तेजित न किया गया तो, उसी शिथिल दशा में मनुष्य के साथ मृत्यु के गर्भ में विलीन हो जायगी। समाज के हित के लिए उसकी सभी शक्तियों को कार्य में नियोजित करना चाहिए। अतः सरकार की रचना इस प्रकार की हो जिससे शान्त एवं नियमित क्रिया द्वारा वे सभी योग्यताएँ प्रकाश में आवें जो क्रान्ति के अवसर पर अवश्यमेव प्रकट हुआ करती हैं।

आनुवंशिक सरकार की निःसत्व दशा में उपर्युक्त योग्यताओं का प्रकाशन नहीं हो सकता, केवल इसलिए नहीं कि यह उन्हें प्रकाश में आने से रोकती है, वरन् इसलिए भी कि वह शक्तिहीन बनाने की दिशा में कार्य करती हैं। किसी राष्ट्र का मस्तिष्क जब आनुवंशिक अधिकारों के समान, सरकार विषयक किसी राजनैतिक अन्धविश्वास को स्वीकार कर लेता है, तो वह सभी अन्य विषयों और कार्यों में अपनी शक्तियों का अधिकांश खो बैठता हैं।

आनुवंशिक उत्तराधिकार के अनुसार अज्ञान और ज्ञान दोनों के प्रति एक ही प्रकार की आज्ञाकारिता आवश्यक है। जब मानव मस्तिष्क एक प्रकार का अविवेकपूर्ण सम्मान प्रकट कर सकता है, तो वह मस्तिष्क की प्रतिष्ठा से नीचे खिसक आता है। फिर केवल तुच्छ बातों में ही बड़ा होने योग्य रह जाता है। वह स्वयं अपने साथ विश्वासघात करता है और उन चेतनाओं का गला घोट देता है जो वास्तविकता का पता लगाने की प्रेरणा देती हैं।

यद्यपि प्राचीन सरकारें मनुष्य की स्थिति का दयनीय चित्र प्रस्तुत करती हैं, किन्तु एक ऐसी प्राचीन सरकार है जो अन्य सभी से भिन्न है। मेरा अभिप्राय है अथीनिया के प्रजातन्त्र से। इतिहास ने जो कुछ प्रस्तुत किया है, उसमें सर्वाधिक प्रशंसनीय और कम निन्दनीय तत्व इसी महान असाधारण प्रजातन्त्र में दृष्टिगोचर होते हैं।

'बर्क' को सरकार के मौलिक सिद्धांतों का इतना अल्प ज्ञान है कि वे प्रजातंत्र (Democracy) और प्रतिनिधित्व को एक-सा समझते हैं। प्रतिनिधित्व प्राचीन प्रजातन्त्रों को अज्ञात था। उन दिनों जनसमुदाय एकत्रित होता था और (व्याकरण के प्रथम पुरुष के रूप में) नियम बनाता था।

प्राचीन युग का सरल प्रजातन्त्र सार्वजनिक सभा के अतिरिक्त और कुछ

नहीं था। इससे सरकार के सामान्य सिद्धांत एवं स्वरूप का बोध होता है। जब इन प्रजातन्त्रों में जनसंख्या की वृद्धि हुई तथा साम्राज्य का विस्तार हुआ तो प्रजातन्त्र का सरल स्वरूप अव्यावहारिक और स्थूल सिद्ध हुआ। उस समय लोगों को प्रतिनिधित्व-पद्धति का ज्ञान नहीं था। परिणाम यह हुआ कि वे प्रजातन्त्रीय सरकारें या तो अपने उस स्थान से गिर कर राजतन्त्रीय सरकारें बन गयीं अथवा उस समय प्रचलित अन्य सरकारों में खप गयीं।

यदि उस समय लोगों को प्रतिनिधि-पद्धति का ज्ञान होता जैसा कि इस समय हमें उसका ज्ञान है, तो इस बात का विश्वास करने का कोई कारण नहीं है कि जिन्हें हम राजतंत्रीय और कुलीनतन्त्रीय सरकारें कहते हैं, वे अस्तित्व में आ पातीं। जब साम्राज्य का इतना अधिक विस्तार हो गया और जनसंख्या इतनी अधिक हो गयी कि सरल प्रजातन्त्रीय सरकार प्रबन्ध करने में असमर्थ सिद्ध हुई तो उस समय समाज के विभिन्न भागों को एक करने की पद्धति के अभाव तथा गड़ेरियों और चरवाहों की शिथिल एवं ऐकान्तिक स्थिति ने उन अप्राकृतिक सरकार-पद्धतियों को उत्पन्न होने का अवसर प्रदान किया।

ग़लतियों के जिस कूड़ा-करकट में सरकार का विषय डाल दिया गया है, उसे साफ करना आवश्यक है। इसलिए मैं अब आगे कुछ अन्य प्रकार की सरकारों की चर्चा करूंगा।

राजदरबारियों और उनकी सरकारों की राजनीति उस सरकार की निन्दा करने की रही है जो उनकी दृष्टि में जनतन्त्रीय सरकार है। किन्तु जनतन्त्रीय सरकार क्या थी अथवा क्या है, यह समझाने का उन्होंने प्रयत्न नहीं किया। आइए, हम इस पर विचार करें।

जिसे 'जनतन्त्र' (Republic) कहा जाता है वह सरकार का प्रकार विशेष नहीं है। जनतन्त्र सम्पूर्णतः उस अभिप्राय, वस्तु या लक्ष्य का वैशिष्ट्य है जिसके लिए सरकार का निर्माण होना चाहिए और जिस पर उसे कार्य करना है। 'जनतन्त्र' अंग्रेज़ी शब्द रिपब्लिक (Republic) का पर्याय है। अंग्रेज़ी में 'रिपब्लिक' (जनतन्त्र) का अर्थ है 'लोक-कार्य' या 'लोक-हित' अथवा यदि इसका शाब्दिक अनुवाद किया जाय तो इसका अर्थ होगा 'लोक-वस्तु'।

इस शब्द का मूल सुन्दर है, क्योंकि इससे यह पता चलता है कि सरकार के गुण और कार्य किस प्रकार के होने चाहिए। इस अर्थ में यह शब्द (अर्थात्, 'जन-

तंत्र') राजतंत्र से प्रकृतितः विपरीत है। राजतंत्र का अर्थ है एक व्यक्ति की निरंकुश शक्ति, जिसका उपयोग वह लोक-हित के लिए नहीं, वरन् 'निज-हित' के लिए करता है।

प्रत्येक सरकार—जो 'जनतंत्र' के सिद्धांतों पर कार्य करती या दूसरे शब्दों में, जो 'लोक-हित' को अपना एक मात्र ध्येय नहीं बनाती—अच्छी सरकार नहीं है। लोक-हित के लिए (व्यक्तिगत और सामूहिक हितों के लिए) स्थापित और संचालित सरकार के अतिरिक्त जनतंत्रीय सरकार और क्या है? सरकार के स्वरूप विशेष से इसका सम्बन्धित होना आवश्यक नहीं है। किन्तु इसका सर्वाधिक प्राकृतिक सम्बन्ध प्रतिनिधि-पद्धति की सरकार से है; क्योंकि यह सरकार उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सर्वोत्तम समझी जाती हैं जिसके लिए राष्ट्र इसका भार वहन करता है।

विभिन्न प्रकार की सरकारों ने जनतंत्र की पद्धति को अपनाने का प्रयत्न किया है। पोलैण्ड अपनी सरकार को, जो निर्वाचन पर आधारित राजतन्त्र के साथ-साथ आनुवंशिक कुलीन तंत्र हैं, जनतंत्रीय सरकार कहता है। हालैण्ड भी अपनी सरकार को जनतंत्रीय सरकार कहता है, जो मुख्यतः आनुवंशिक कुलीनतंत्रीय सरकार है।

किन्तु अमेरिका की सरकार, जो पूर्ण रूपेण प्रतिनिधि-पद्धति पर आधारित है, गुण और कार्य में वास्तविक जनतंत्रीय सरकार है। राष्ट्र के सार्वजनिक कार्य के अतिरिक्त अमेरिका की सरकार का अन्य कोई कार्य नहीं है, और इसलिए इसे जनतन्त्रीय सरकार कहना उचित हैं। अमेरिका वालों ने इस बात का पूरा ध्यान रखा है कि सरकार का यही, और एक मात्र यही, उद्देश्य रहेगा। इसलिए उन्होंने सरकार विषयक आनुवंशिक उत्तराधिकार की प्रथा को अस्वीकार करके केवल प्रतिनिधि-पद्धति पर सरकार की स्थापना की।

जिन्होंने यह कहा है कि अधिक क्षेत्रफलवाले देशों के लिए सरकार का जनतंत्रीय स्वरूप ठीक नहीं है। उनकी पहली भूल तो यह है कि उन्होंने सरकार के कार्य को उसका स्वरूप समझ लिया। राज्य विस्तार चाहे जो हो और जनसंख्या चाहे जितनी हो, 'लोक-हित' का अर्थ तो एक ही रहेगा। दूसरी भूल यह है कि यदि सरकार के स्वरूप से उनका कुछ अभिप्राय था, तो वह सरल प्रजातंत्रीय स्वरूप से था। प्राचीन काल में प्रतिनिधित्व-विहीन प्रजातंत्रीय-पद्धति

की सरकारें थीं। इसीलिए बात यह नहीं है कि जनतन्त्र अधिक विस्तृत देश में स्थापित नहीं हो सकता। वास्तव में बात यह है कि सरल प्रजातंत्रीय स्वरूप में जनतंत्र अधिक विस्तृत देश के लिए अनुपयुक्त है। फिर यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि यदि कोई राष्ट्र अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत हो जाय तथा उसकी जनसंख्या में अधिक वृद्धि हो जाय, तो उस राष्ट्र के 'लोक हित' या सार्वजनिक कार्य करने के लिए किस प्रकार की सरकार सर्वोत्तम है।

ऐसी स्थिति में राजतन्त्र उपयुक्त न होगा, क्योंकि सरल प्रजातन्त्रीय सरकार के विपक्ष में जो तर्क हैं वे राजतन्त्र के विपक्ष में भी ठीक हैं।

कोई एक व्यक्ति किसी राज्य की, चाहे उसका क्षेत्रफल कुछ भी हो, सरकार की वैधानिक स्थापना के लिए सिद्धांतों की पद्धति निर्धारित कर सकता है। अपनी शक्तियों के आधार पर कार्य करनेवाले मस्तिष्क की क्रिया के अतिरिक्त यह और कुछ नहीं है। किन्तु राष्ट्र की विभिन्न एवं बहुसंख्यक परिस्थितियों तथा कृषि, व्यापार एवं वाणिज्य इत्यादि के विषय में उन सिद्धांतों को क्रियान्वित करने के लिए अन्य प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता है जो केवल समाज के विभिन्न भागों के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

वह ज्ञान क्या है? व्यावहारिक ज्ञान-राशि, जो किसी एक व्यक्ति की वस्तु नहीं हो सकती है, और इसलिए जनसंख्या की वृद्धि हो जाने पर, सरकार के प्रजातन्त्रीय स्वरूप के समान राजतन्त्रीय रूप भी, ज्ञान की अपूर्णता के कारण कम लाभप्रद है। सरल प्रजातंत्रीय सरकार क्षेत्रफल बढ़ जाने पर अव्यवस्थित हो जाती है और राजतन्त्रीय सरकार अज्ञान और अयोग्यता का शिकार हो जाती है। सभी बड़े-बड़े राजतन्त्र इस बात की सत्यता सिद्ध करते हैं। इसलिए सरकार के सरल प्रजातन्त्रीय स्वरूप का स्थान राजतन्त्रीय स्वरूप नहीं ले सकता, क्योंकि यह भी उसीके समान असुविधाजनक है।

राजतंत्रीय सरकार आनुवंशिक होने पर तो और भी अनुपयुक्त होगी। सरकार का यह स्वरूप ज्ञान का सर्वाधिक बहिष्कार करता है। प्रजातंत्रीय सिद्धांतों को माननेवाला उन्नत मस्तिष्क स्वेच्छा से बच्चों, मूर्खों तथा चरित्र की उन सभी विभिन्न तुच्छताओं के द्वारा शासित होने को तैयार नहीं हो सकता जो मानव-बुद्धि के अपमान स्वरूप इस पाशविक प्रथा की विशिष्टता है।

सरकार के कुलीनतंत्रीय स्वरूप में राजतन्त्र के सभी दुर्गुण और त्रुटियाँ

हैं; अन्तर केवल इतना है कि इसमें संख्या के अनुसार योग्यताओं की सम्भावना अपेक्षाकृत अधिक रहती है। फिर भी, उनके उचित प्रयोग और उपयोग का कोई निश्चय नहीं है।

अस्तु, प्रारंभिक सरल प्रजातंत्र ही वह आधार है, जिस पर बृहद् परिमाण की सरकार निर्मित हो सकती है। प्रारम्भिक सरल प्रजातन्त्रीय सरकार, साम्राज्य के अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत होने पर, सिद्धांतों के कारण नहीं, वरन् अपने स्वरूप के कारण अनुपयुक्त ठहरती है; और राजतंत्रीय तथा कुलीन-तन्त्रीय सरकारें उस स्थिति में अपनी ज्ञान विषयक अयोग्यता के कारण अनुपयुक्त हैं। अस्तु, प्रजातंत्र पर आधारित होकर तथा राजतंत्र एवं कुलीन-तन्त्र की भ्रष्ट पद्धतियों को अस्वीकार करके, प्रतिनिधि-पद्धति पर स्थापित सरकार एक साथ ही सरल प्रजातन्त्र की स्वरूप विषयक अपूर्णताओं तथा राजतन्त्रीय एवं कुलीनतन्त्रीय सरकारों की ज्ञान सम्बन्धी अक्षमताओं को दूर करने में, प्रकृतितः समर्थ है।

प्रारम्भिक सरल प्रजातन्त्र में समाज अन्य किसी माध्यम के बिना अपना शासन स्वयं करता था। प्रजातन्त्र से प्रतिनिधित्व का योग करा देने पर सरकार की एक ऐसी पद्धति का जन्म होता है जो सभी विभिन्न हितों और साम्राज्य तथा जनसंख्या की किसी भी सीमा-विस्तार को संगठित करने तथा समेटने में समर्थ है।

इसी पद्धति पर अमेरिका की सरकार आधारित है। वहाँ की सरकार प्रजातंत्र के साथ प्रतिनिधि-पद्धति का योग है। इस पद्धति ने सरकार के स्वरूप को इस प्रकार के माप से स्थिर किया है कि वह सभी दशाओं में सिद्धान्त के सीमा-विस्तार के समानान्तर चलता है। एथेन्स में जो छोटे आकार का था, अमेरिका में वही बृहद् पैमाने पर होगा। पहला प्राचीन विश्व का आश्चर्य था और दूसरा वर्तमान युग का आदर्श होने जा रहा है। यह सरकार के सभी स्वरूपों में सर्वाधिक बोधगम्य एवं व्यवहार-ग्राह्य है, तथा आनुवंशिक पद्धति पर आधारित सरकार की अज्ञानता और असुरक्षा एवं प्रारम्भिक सरल प्रजातन्त्र की असुविधाओं से मुक्त है।

प्रतिनिधित्व-प्रणाली द्वारा शीघ्र ही जिस प्रकार की सरकार का निर्माण होता है उसके अतिरिक्त अन्य किसी ऐसी सरकार-पद्धति को सोच निकालना

असम्भव है, जो इतने विस्तृत भू-भाग और हितों की इतनी बृहद् परिधि में कार्य कर सके। फ्रांस की सरकार इस विशाल पद्धति का केवल लघु रूप है। प्रतिनिधित्व-प्रणाली पर स्थापित प्रजातन्त्र (अर्थात् जनतन्त्र) सभी सम्भव स्थितियों में अपने को तदनुकूल बना लेता है। छोटे देशों में भी यह सरल प्रजातन्त्र से श्रेष्ठ है। प्रतिनिधित्व-प्रणाली द्वारा एथेन्स स्वयं अपने प्रजातन्त्र को श्रेष्ठ बना सकता था।

हम जिसे सरकार कहते हैं अथवा हमें जिसे सरकार कहना चाहिए, वह उस सामान्य केन्द्र के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, जहाँ समाज के सभी भाग एक में मिलते हैं। यह कार्य प्रतिनिधित्व-प्रणाली के अतिरिक्त अन्य किसी ऐसी प्रणाली द्वारा सम्पन्न नहीं हो सकता, जो समाज के विभिन्न हितों के लिए अधिक उपयोगी हो।

यह पद्धति सम्पूर्ण समाज और उसके अंगों के हितों के लिए आवश्यक ज्ञान को एक केन्द्र में लाती है। यह सरकार को निरन्तर प्रौढ़ता की स्थिति में रखती है। इसका शासन बच्चों या अशक्तों द्वारा नहीं होता। यह प्रणाली ज्ञान और शक्ति के पार्थक्य को स्वीकार नहीं करती। यह जनतन्त्रीय पद्धति, जैसा कि प्रत्येक सरकार को होना चाहिए, एक व्यक्ति के कारण होने वाले सभी आकस्मिक परिवर्तनों से मुक्त है। इसी नाते यह राजतन्त्र से श्रेष्ठ है।

राष्ट्र की आकृति मनुष्य की आकृति नहीं है। राष्ट्र एक वृत्त है जिसमें एक केन्द्र होता है, जहाँ सभी अर्द्धव्यास मिलते हैं। राष्ट्र का वह केन्द्र प्रतिनिधित्व द्वारा निर्मित होता है। जिसे हम राजतन्त्र कहते हैं उसमें यदि प्रतिनिधित्व का समावेश कर दिया जाय तो इस प्रकार जो सरकार बनेगी, वह केन्द्र-भ्रष्ट सरकार होगी। प्रतिनिधित्व स्वतः राष्ट्र द्वारा सौंपा गया राजतन्त्र है। इसलिए वह दूसरे को सहभागी बनाकर अपना अधःपतन नहीं कर सकता।

'बर्क' ने अपने संसदीय भाषणों एवं प्रकाशित ग्रंथों में, दो या तीन अवसरों पर ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जिनका कोई अर्थ नहीं है। 'सरकार' के विषय में वे कहते हैं कि जनतन्त्र को आधार और राजतन्त्र को शोधक मानने की अपेक्षा राजतंत्र को आधार और जनतन्त्र को शोधक मानना अधिक अच्छा है। यदि 'बर्क' का अभिप्राय यह है कि बुद्धि के द्वारा मूर्खता का सुधार करना, मूर्खता के द्वारा बुद्धि का सुधार करने की अपेक्षा अधिक ठीक

हैं, तो मुझे उनसे केवल इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं कहना है कि क्यों न मूर्खता को पूर्णत: अस्वीकार कर दिया जाए।

किन्तु 'बर्क' जिसे राजतंत्र कहते हैं, वह है क्या ? क्या वे समझायेंगे ? प्रतिनिधित्व को सभी लोग समझ सकते हैं और यह भी समझते हैं कि इसमें विभिन्न प्रकार के ज्ञान और योग्यताओं का आवश्यक रूप से समावेश होना चाहिए। किन्तु राजतंत्र में उन गुणों की कौन सी सुरक्षा है ? अथवा जब एक बच्चा राजा होता है तो राजतंत्र में बुद्धि कहाँ रहती है। वह सरकार के बारे में क्या जानता है। फिर राजा कौन है ? राजतंत्र कहाँ है ? यदि राजा का काम राज प्रतिनिधि द्वारा निष्पादित होता है, तो राजतन्त्र उपहास सिद्ध होता है।

राज-प्रतिनिधि द्वारा शासन जनतन्त्रीय शासन का एक हास्यास्पद प्रकार है। स्वयं राजतन्त्र इससे अधिक क्या है ? राजतन्त्रीय सरकार के उतने विभिन्न स्वरूप हैं जितने स्वरूपों की कल्पना की जा सकती है। इसमें स्थिरता का कोई लक्षण नहीं है, जो कि सरकार में होना चाहिए। प्रत्येक नये राजा का गद्दी पर बैठना एक क्रान्ति है, और प्रत्येक राज-प्रतिनिधि का शासन प्रतिक्रान्ति है। सम्पूर्ण रूप से राजतन्त्र राजदरबार के गुटों और षड्यन्त्रों का, बर्क स्वयं जिसके उदाहरण हैं, अविरल दृश्य ह।

राजतन्त्र को सरकार के लिए संगत बनाने के निमित्त राजगद्दी पर बैठने वाले प्रत्येक उत्तराधिकारी को बच्चा नहीं, वरन जन्म से ही वयस्क होना चाहिए; और वह वयस्क भी कैसा, सालोमन (Salomon) के समान। कितनी हास्यास्पद बात है कि जब तक अवयस्क उत्तराधिकारी वयस्क नहीं हो जाते, तब तक राष्ट्र प्रतीक्षा करे और शासन में व्यवधान उपस्थित हो।

यह दूसरी बात है कि मेरी समझ कम है अथवा मैं किसी के द्वारा अनुचित रूप से प्रभावित नहीं किया जा सकता या मुझे किसी प्रकार का कम या अधिक घमण्ड है; किन्तु इतना निश्चित है कि जिसे हम राजतन्त्र कहते हैं उसको मैं मूर्खता एवं घृणास्पद मानता हूँ। मैं उसकी तुलना एक ऐसे वस्तु से करता हूँ जो परदे की आड़ में रखी हुई है और जिसके बारे में बाहर लम्बी-चौड़ी चर्चाएं हो रही हैं; किन्तु यदि किसी प्रकार से वह परदा हट जाय और लोग उसे देखें तो हँसने लगें।

सरकार की प्रतिनिधि-पद्धति में इस प्रकार की कोई बात सम्भव नहीं है।

राष्ट्र के समान ही, इस सरकार में भी शरीर और मस्तिष्क की शाश्वत आन्तरिक शक्ति रहती है। यह पद्धति विश्व के विशाल रंगमच पर सुन्दर एवं गौरवपूर्ण ढंग से अवतरित होती है। उसके गुण अथवा दोष सभी जानते रहते हैं। जाल-फरेब अथवा रहस्य के द्वारा इसका परिचालन नहीं होता। इसका कार्य छल-प्रपंच की भाषा में नहीं, वरन् एक ऐसी भाषा में होता है जिसे प्रत्येक हृदय समझ सकता है।

राजतंत्र की मूर्खता को न देखना विवेक की उपेक्षा करना अथवा बुद्धि को पतित करना है। प्रकृति अपने सभी कार्यों में व्यवस्था रखती है। किन्तु यह एक ऐसी शासन-पद्धति है, जो प्रकृति के विपरीत कार्य करती है। यह शक्तियों की प्रगति को एकदम उलट देती है। इसके अनुसार प्रौढ़ एवं वृद्ध अनुभवी व्यक्ति बच्चों के द्वारा शासित हो सकते हैं और मूर्खता बुद्धि पर शासन कर सकती है। दूसरी ओर प्रतिनिधि-पद्धति सदैव प्रकृति के स्थिर नियमों तथा व्यवस्था के अनुरूप रहती है।

उदाहरण स्वरूप अमेरिका की संघीय सरकार को लीजिए। उसमें कांग्रेस के किसी भी सदस्य की अपेक्षा, प्रेसीडेण्ट को व्यक्ति के रूप में, अधिक अधिकार प्राप्त है। पैंतीस वर्ष से कम अवस्था का व्यक्ति उस पद के लिए निर्वाचित नहीं हो सकता। पैंतीस वर्ष की अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते मनुष्य की विवेक शक्ति प्रौढ़ हो जाती है। देश के मनुष्यों तथा उनकी सभी वस्तुओं से परिचित होने का उस व्यक्ति को पर्याप्त अवसर प्राप्त हो जाता है, और देश को भी उसे पहचानने का पूर्ण समय मिलता है।

किन्तु राजतंत्रीय-व्यवस्था में, एक राजा के मर जाने पर उत्तराधिकारी के रूप में चाहे जो हो, उसे राष्ट्र और सरकार के शीर्ष-पद पर नियुक्त कर दिया जाता है। क्या हम इसे बुद्धिमानी का कार्य कह सकते हैं? क्या वह किसी राष्ट्र के गौरवपूर्ण चरित्र और उचित मर्यादा के अनुकूल है। एक बच्चे को राष्ट्र-पिता कहना कहाँ तक उचित है? अन्य सभी विषयों में इक्कीस वर्ष की अवस्था तक एक व्यक्ति अवयस्क माना जाता है। इस समय के पूर्व एक एकड़ भूमि का भी प्रबन्ध उसके ज़िम्मे नहीं सौंपा जाता, किन्तु यह कहते हुए आश्चर्य होता है कि अठारह वर्ष की आयु में भी उसे राष्ट्र का भार सौंपा जा सका है।

चाहे किसी भी दृष्टिकोण से देखा जाय, इतना स्पष्ट है और कम-से-कम

मेरे लिए तो अवश्य स्पष्ट है कि राजतन्त्र केवल पानी का बुलबुला है, अथवा धन पाने के लिए केवल दरबार की चाल है। इस छलपूर्ण पद्धति में जितना अधिक व्यय होता है, वह जनतन्त्रीय सरकार की विवेकपूर्ण पद्धति में सम्भव नहीं है। जहाँ तक केवल सरकार का प्रश्न है, इस पर अधिक व्यय नहीं करना पड़ता। अमेरिका की संघीय सरकार का, जिसके विषय में कहा जा चुका है कि यह प्रतिनिधि-पद्धति पर स्थापित है और इंगलैण्ड की अपेक्षा लगभग दस गुने बड़े देश का शासन कर रही है, व्यय केवल छः सौ हजार डालर या एक सौ तीस हजार पौंड स्टर्लिंग है।

मैं समझता हूँ कि कोई भी मर्यादावान व्यक्ति यूरोप के किसी राजा के चरित्र की तुलना सेनापति वाशिंगटन के चरित्र से नहीं कर सकता। फिर भी, फ्रांस और इंगलैण्ड में भी अमेरिका की संघीय सरकार के सम्पूर्ण व्यय का आठ गुना केवल एक व्यक्ति के लिए खर्च होता है। इसके लिए उचित कारण बताना असम्भव है। अमेरिका की सामान्य जनता, विशेषतः गरीब जनता, फ्रांस तथा इंगलैण्ड की सामान्य जनता की अपेक्षा कर देने में अधिक सक्षम है। किन्तु प्रतिनिधि-पद्धति राष्ट्र भर में ज्ञान का इस प्रकार विस्तार कर देती है कि जनता को छला नहीं जा सकता। उस स्थिति में राजदरबार की चाल काम नहीं कर सकती है। इस पद्धति में रहस्य को कोई स्थान नहीं है। प्रतिनिधियों के समान ही, उन प्रतिनिधियों को चुनने वाले व्यक्ति भी कार्य-प्रकृति से अवगत रहते हैं; इसलिए यदि कोई चाल है तो उसका पता सभी को लग जायगा। राष्ट्र में कोई रहस्य नहीं रह सकता। दूसरी ओर राजतन्त्र के रहस्य, व्यक्तिगत रहस्य के समान ही, उसके दुर्गुण हैं।

प्रतिनिधि-पद्धति में प्रत्येक कार्य का उचित कारण सभी को स्पष्ट होना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति का सरकार में अधिकार है और वह सरकार विषयक जानकारी को अपने कार्य का एक आवश्यक अंग मानता है। इसमें उसका स्वार्थ निहित है; क्योंकि सरकार के कार्यों का प्रभाव उसकी सम्पत्ति पर पड़ता है। वह व्यय और लाभ की तुलना करता है और सब से बड़ी बात यह है कि वह उन लोगों के, जिन्हें अन्य सरकारों में नेता कहा जाता है, अन्धानुकरण की प्रथा को स्वीकार नहीं करता।

मनुष्य की बुद्धि को अन्धी बना देने और उसमें यह विश्वास उत्पन्न करने

पर ही अधिक राजस्व (Revenue) प्राप्त किया जा सकता है कि सरकार एक विचित्र रहस्यमयी वस्तु है। राजतन्त्र के द्वारा इस लक्ष्य की पूर्ति होती है। राजतन्त्र शासन की महन्ती है।

एक स्वतन्त्र देश की सरकार यदि उचित रूप से कहा जाय तो, व्यक्तियों में नहीं, वरन् कानूनों में है। उन कानूनों को कार्यान्वित करने में अधिक व्यय नहीं होता और जब उन्हें कार्यान्वित किया जाता है तो असैनिक सरकार (Civil Government) का सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न हो जाता है, इसके अतिरिक्त सब कुछ राजदरबार की 'आविष्कृत योजना' है।

संविधान

यह स्पष्ट है कि जब हम 'संविधान' और 'सरकार' की चर्चा करते हैं तो हम उन्हें भिन्न और पृथक् मानते हैं। संविधान, सरकार का नहीं, वरन् सरकार का निर्माण करनेवाले लोगों का कार्य है और बिना संविधान के सरकार अधिकार-विहीन शक्ति है।

राष्ट्र के ऊपर प्रयुक्त अधिकारों का कोई मूल-स्रोत होना चाहिए। ये अधिकार या तो सौंपे हुए होने चाहिए अथवा मान लिये गये। इन दो साधन-स्रोतों के अतिरिक्त अधिकार के अन्य कोई मूल-स्रोत नहीं हैं। सौंपे हुए सभी अधिकार थाती (Trust) हैं और सभी मान लिये गये अधिकार अपहरण। समय इन दो प्रकार के अधिकारों की प्रकृति और उनके गुण को बदल नहीं सकता।

इस विषय पर विचार करते समय हम अमेरिका की परिस्थितियों को उसी रूप में पाते हैं जो विश्व के आरम्भ में रहा होगा; और सरकार के उद्गम की जाँच उन्हीं तथ्यों के माध्यम से शीघ्र समाप्त हो जाती है जो हमारे समय में ही प्रकट हुए हैं। सरकार के उद्गम की जानकारी प्राप्त करने के लिए हमें प्राचीनता के अन्ध प्रदेश में भटकने की कोई आवश्यकता नहीं है, और न तो अनुमान करने की ही आवश्यकता है। हम एकाएक उस बिन्दु पर पहुँचते हैं, जहाँ से सरकार आरम्भ होती दिखलायी पड़ती है, मानो हम लोग विश्व के आरम्भ में खड़े हैं। हमारे सम्मुख इतिहास की नहीं, वरन् किसी 'आविष्कृत

योजना' द्वारा अक्षत और परम्परा की त्रुटियों से मुक्त तथ्यों की वास्तविक पुस्तक खुली पड़ी है।

मैं, इस स्थल पर, अमेरिकी संविधान के प्रारम्भ की संक्षिप्त चर्चा करूँगा जिससे सरकार और संविधान का अन्तर पर्याप्त रूप से स्पष्ट हो जाय।

पाठकों को इस बात का पुनर्बोध करा देना अनुचित न होगा कि अमेरिका के 'संयुक्त राज्य' में तेरह, परस्पर-पृथक्, राज्य हैं। इन तेरह राज्यों में से प्रत्येक ने, चार जुलाई सन् १७७६ ई० की स्वातन्त्र्य-घोषणा के उपरान्त स्वयं अपने लिए एक सरकार स्थापित की। प्रत्येक राज्य ने, अन्य राज्यों से स्वतन्त्र रूप में, अपनी सरकार की रचना की; किन्तु एक ही सामान्य सिद्धान्त से सभी परिचालित थे। जब कई राज्य-सरकारों की स्थापना समाप्त हुई, तब उन्होंने संघीय सरकार के, जो सभी राज्यों के हित अथवा उन राज्यों के पारस्परिक व्यवहारों से सम्बन्धित विषयों या वैदेशिक राष्ट्रों से सम्बन्ध रखनेवाले विषयों में उन सभी राज्यों के ऊपर कार्य करती है, निर्माण का कार्य आरम्भ किया। मैं उन राज्यों में से एक राज्य की सरकार (पेंसिलवेनिया की सरकार) का एक उदाहरण देते हुए 'संघीय सरकार' की चर्चा करूँगा।

पेंसिलवेनिया का प्रदेश, यद्यपि विस्तार में वह इंगलैण्ड के ही समान है, उस समय बारह 'काउण्टियों' में विभक्त था। इंगलिश सरकार के साथ संघर्ष आरम्भ होने के पूर्व, उनमें से प्रत्येक ने एक समिति निर्वाचित की थी। फिलाडेल्फिया का नगर, जिसने भी एक समिति नियुक्त कर रखी थी, सर्वाधिक उपयुक्त सूचना-केन्द्र था। अतः कई समितियों के लिए वह पारस्परिक विचार-विनिमय का केन्द्र बन उठा। जब सरकार के निर्माण का कार्य आरम्भ करने को हुआ, तो फिलाडेल्फिया की समिति ने सभी काउण्टी-समितियों के सम्मेलन का प्रस्ताव किया। सन् १७७६ ई० के उत्तरार्द्ध में, फिलाडेल्फिया नगर में सभी समितियों का सम्मेलन हुआ।

यद्यपि इन समितियों का निर्वाचन जनता द्वारा हुआ था, किन्तु वे स्पष्ट रूप से इस कार्य के लिए नियुक्त नहीं हुई थीं और न तो संविधान बनाने का अधिकार ही उन्हें सौंपा गया था। अमेरिका के अधिकार सम्बन्धी सिद्धांत के अनुसार, वे समितियाँ संविधान बनाने का अधिकार अपनी ही इच्छा से मान नहीं सकती थीं। अतः वे उस विषय पर केवल परस्पर विचार-विमर्श कर

सकती थीं तथा कार्यक्रम की रूप-रेखा निर्धारित कर सकती थीं। इसलिए सम्मेलन ने केवल यह प्रस्ताव प्रस्तुत किया कि प्रत्येक काउण्टी से छः प्रतिनिधि संविधान बनाने के अधिकार के साथ, फिलाडेल्फिया की सभा में सम्मिलित हों और संविधान बना लेने पर उसे जनता के सम्मुख विचारार्थ रखें।

इस सभा ने, बेंजैमिन फ्रैंकलिन जिसके सभापति थे, पर्याप्त सोच-विचार के बाद संविधान बनाया, जिसे प्रकाशित कर के विचारार्थ जनता के सम्मुख रखा गया; और सभा की बैठक कुछ समय के लिए स्थगित कर दी गयी।

स्थगन-काल के समाप्त होने पर सभा की बैठक पुनः आरम्भ हुई। उसके समर्थन में जनता का सामान्य मत ज्ञात हो चुका था, अतः उस संविधान को स्वीकार कर लिया गया। उस पर हस्ताक्षर कर के तथा उसे मुद्रांकित कर के जनता की ओर से उसकी घोषणा की गयी।

तत्पश्चात् सभा ने सरकार बनानेवाले प्रतिनिधियों के निर्वाचन की तिथि तथा सरकार की कार्यारम्भ-तिथि निर्धारित की। इस कार्य को सम्पन्न करने के बाद वह सभा भंग हो गयी और उसके सदस्य अपने-अपने घर और पेशे में लौट आये।

इस संविधान में पहले अधिकारों की घोषणा की गयी; इसके पश्चात् सरकार का स्वरूप और अधिकार निश्चित किये गये। न्यायालय तथा जूरियों के अधिकार, निर्वाचन-पद्धति, निर्वाचकों की संख्या और प्रतिनिधियों की संख्या के अनुपात, सभा का कार्य-काल, राष्ट्रीय धन के व्यय की उद्ग्रहण (Levying) एवं लेखन-पद्धति तथा सार्वजनिक अधिकारियों की नियुक्ति-पद्धति आदि का निर्णय उस संविधान में किया गया।

इस संविधान की कोई धारा इसके आधार पर निर्मित होने वाली सरकार के विवेक द्वारा न तो परिवर्तित की जा सकती थी और न उल्लंघित ही। यह संविधान उस सरकार के लिए क़ानून था। किन्तु अनुभव से लाभ न उठाना बुद्धिमानी नहीं है। इसलिए कि ग़लतियों की राशि संचित न हो जाय और इसलिए भी कि सरकार और प्रदेश की परिस्थितियों का साथ सर्वदा बना रहे, संविधान ने यह तय किया कि प्रत्येक सात वर्षों के बाद एक परिषद् निर्वाचित हो, जो संविधान पर पुनर्विचार करे और आवश्यकतानुसार उसमें परिवर्द्धन, परिवर्तन एवं संशोधन करे।

यहाँ हम एक नियमित पद्धति का दर्शन करते हैं। हम एक ऐसी सरकार का दर्शन करते हैं जिसका निर्माण संविधान के आधार पर हुआ है तथा देश के व्यक्तियों ने, अपने मूल रूप में, जिसकी स्थापना की। इस स्थल पर हम यह भी देखते हैं कि संविधान सरकार का नियन्त्रण करनेवाला क़ानून है। हम कह सकते हैं कि वह संविधान प्रदेशों की राजनैतिक बाइबिल था। कदाचित् ही कोई ऐसा घर था जिसमें इसकी एक प्रति न रही हो। सरकार के प्रत्येक सदस्य के पास इसकी एक प्रति थी। जब कभी किसी विधेयक के सिद्धान्त अथवा किसी अधिकार के सीमा-विस्तार पर विवाद आरम्भ होता था, तो सभा के सदस्य तुरन्त अपनी जेब से संविधान की प्रति निकाल कर उस अध्याय को पढ़ने लगते थे जिसका सम्बन्ध विवादग्रस्त विषय से होता था।

इस प्रकार राज्यों में से एक राज्य की सरकार का उदाहरण देने के उपरान्त मैं उन सभी कार्यवाहियों का उल्लेख करूँगा जिनके द्वारा 'संयुक्त राज्य' के संघीय संविधान ने अपना स्वरूप प्राप्त किया।

सन् १७७४ ई० के सितम्बर और सन् १७७५ ई० के मई महीनों की अपनी दो बैठकों में विभिन्न प्रदेशों की, बाद में जिन्हें राज्य कहा गया, विधान-सभाओं से भेजे गये 'प्रतिनिधियों की सभा' के अतिरिक्त 'कांग्रेस' और कुछ नहीं थी; और सामान्य स्वीकृति तथा लोक-संस्था के रूप में काम करने की आवश्यकता से उत्पन्न होने वाले अधिकारों के अतिरिक्त इसके अन्य कोई अधिकार नहीं थे। 'कांग्रेस' ने अमेरिका के घरेलू कामों से सम्बन्धित प्रत्येक विषय में विभिन्न प्रादेशिक सभाओं के सम्मुख केवल अपने मत प्रस्तुत किये और उन प्रादेशिक सभाओं ने अपने विवेक के अनुसार उन्हें स्वीकार अथवा अस्वीकार किया।

'कांग्रेस' की ओर से कुछ भी ऐसा नहीं किया गया जो अनिवार्य हो। फिर भी इस स्थिति में यूरोप की किसी भी सरकार की अपेक्षा इसे लोगों की श्रद्धा और स्नेह-पूर्ण आज्ञाकारिता अधिक प्राप्त थी। फ्रांस की 'राष्ट्रीय सभा' के समान ही, यह उदाहरण इस तथ्य को प्रकट करता है कि सरकार की शक्ति स्वयं इसके भीतर निहित नहीं है, वरन् राष्ट्र के उस अनुराग और लोकाभिरुचि में है जिसका अनुभव लोगों को सरकार का भार वहन करने में होता है। जब सरकार में इस शक्ति का अभाव होता है तो उसमें शिशु की

निर्बलता होती है और वह यद्यपि फ्रांस की प्राचीन सरकार के समान, कुछ समय तक कुछ व्यक्तियों को कष्ट पहुँचा सकती है ; किन्तु अपने पतन के मार्ग का निर्माण वह स्वयं करती है।

स्वतन्त्रता की घोषणा के उपरान्त, जिस सिद्धान्त पर प्रतिनिधि-सरकार की स्थापना होती है, उसके अनुसार यह आवश्यक हो गया कि कांग्रेस के अधिकार की व्याख्या और स्थापना की जाय। प्रश्न यह नहीं था कि उस समय कांग्रेस ने अपने विवेक के सहारे जिस अधिकार का उपयोग किया उसके अधिकार उससे अधिक हों या कम। यह केवल कार्यवाही की सचाई थी।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए संघटन-अधिनियम (Act of Confederation), जो एक प्रकार का अपूर्ण संघीय संविधान था, प्रस्तावित हुआ और पर्याप्त सोच-विचार के उपरान्त सन् १७८१ ई० में इसे स्वीकार किया गया। किन्तु यह 'कांग्रेस' का काम नही था ; क्योंकि यह बात प्रतिनिधि-पद्धति पर स्थापित सरकार के सिद्धान्तों के विपरीत थी कि कोई संस्था अपने अधिकार स्वयं तय करे। 'कांग्रेस' ने, सर्व प्रथम सभी राज्यों को उन अधिकारों से अवगत कराया जिन्हें 'संघ' को सौंपना उसे इसलिए आवश्यक जँचा कि उन अधिकारों के बलपर 'संघ' उन सभी कर्तव्यों और सेवाओं को कर सके जिनकी अपेक्षा उससे की जाती है। राज्यों ने उन अधिकारों को 'कांग्रेस' में केन्द्रित करना स्वीकार कर लिया।

यह स्पष्ट कर देना अनुचित न होगा कि उपर्युक्त दोनों दृष्टान्तों में प्रजा-पक्ष और राजा-पक्ष के बीच समझौते जैसी कोई बात नहीं है। यह समझौता एक सरकार के निर्माण के निमित्त किया गया लोगों का आपसी समझौता था।

राष्ट्र की जनता से समझौता करने में सरकार का एक पक्ष है। इसे मानने का अर्थ हुआ कि हम यह मानते हैं कि सरकार उस समय अस्तित्व में आयी जिस समय अस्तित्व में आने का उसे कोई अधिकार नहीं था। जनता और उन लोगों में, जो शासन-कार्य करते हैं, समझौते की केवल एक बात है ; और वह यह है कि जब तक जनता यह चाहती है कि वे शासन-कार्य सम्पन्न करें तब तक वह उन्हें पारिश्रमिक देती रहे।

सरकार व्यापार नहीं है जिसे अपने हित के लिए स्थापित करने का अधिकार एक व्यक्ति अथवा मनुष्यो की किसी संस्था को है, वरन् सम्पूर्ण रूप से यह उन

लागों के अधिकारों की थाती (Trust) है, जिन्होंने इसे सौंपा है और जो किसी भी समय इसे वापस ले सकते हैं। सरकार के निजी अधिकार कोई नहीं हैं; वह केवल कर्तव्य करती है।

इस प्रकार संविधान की प्रारंभिक रचना के दो उदाहरण देने के बाद, मैं इस बात को स्पष्ट करूँगा कि उन दोनों में, उनकी प्रथम स्थापना के बाद से किस प्रकार के परिवर्तन हुए।

अनुभव ने बताया कि प्रादेशिक सरकारों में प्रादेशिक संविधानों द्वारा न्यस्त अधिकार आवश्यकता से अधिक हैं, और 'संघटन-अधिनियम' द्वारा 'संघीय सरकार' को दिये गये अधिकार अत्यधिक कम हैं। दोष सिद्धान्त में नहीं, वरन् अधिकार के वितरण में था।

'संघीय सरकार' के नवीन रूप-विधान की आवश्यकता और औचित्य को लेकर समाचार-पत्रों एवं पुस्तिकाओं में बहुत कुछ लिखा गया। पारस्परिक बातचीत अथवा प्रेस के माध्यम से की गयी सार्वजनिक चर्चा के कुछ पश्चात् वर्जीनिया की सरकार ने वाणिज्य-विषयक कुछ असुविधाओं का अनुभव करके 'महाद्वीपीय सम्मेलन' बुलाने का प्रस्ताव किया, जिसके परिणामस्वरूप सन् १७८६ ई० में पाँच या छः प्रादेशिक सभाओं के प्रतिनिधि मेरीलैण्ड (Maryland) के अनापोली (Annapolis) नामक स्थान में मिले।

प्रतिनिधियों के इस सम्मेलन ने यह सोच कर कि सुधार-कार्य को करने का हमें पर्याप्त अधिकार नहीं है, केवल अपना यह सामान्य मत स्पष्ट कर दिया कि कार्य उचित है और उसे सम्पन्न करने के लिए अनुगामी वर्ष में सभी राज्यों की एक 'सभा' होनी चाहिए।

सन् १७८७ ई० की मई का महीना था, जब फिलाडेल्फिया में उस सभा की बैठक हुई; और सेनापति वाशिंगटन उसके अध्यक्ष निर्वाचित हुए। उस समय तक सेनापति वाशिंगटन का सम्बन्ध किसी 'प्रादेशिक सरकार' अथवा 'कांग्रेस' से नहीं था। युद्ध की समाप्ति के बाद वे एक साधारण नागरिक के समान रहने लग गये थे। उस सभा ने सभी विषयों पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया; विभिन्न प्रकार के विवादों और परीक्षणों के उपरान्त 'संघीय संविधान' के कई अंशों के विषय में सभी सदस्य परस्पर सहमत हुए। अब दूसरा प्रश्न यह था कि इस संविधान को अधिकार देने और उसे कार्यान्वित करने का ढंग क्या हो।

इस कार्य के लिए सभा के उन सदस्यों ने, राजदरबारियों के गुट के समान, न तो हालैण्ड से किसी को बुलाया और न जर्मनी से; वरन् उन्होंने उसे सम्पूर्ण राष्ट्र की बुद्धि और अभिरुचि के ऊपर छोड़ दिया।

उन्होंने सर्वप्रथम यह आदेश दिया कि संविधान प्रकाशित किया जाय। दूसरी बात उन्होंने यह तय की कि प्रत्येक राज्य उस प्रस्तावित संविधान पर विचार करने और उसे सुधारने अथवा अस्वीकार करने के लिए स्पष्ट रूप से एक सभा निर्वाचित करे; और ज्योंही किन्हीं नौ राज्यों से स्वीकृति प्राप्त हो जाय, उसी क्षण से वे राज्य नवीन संघीय सरकार के लिए अपने सदस्यों की आनुपातिक संख्या चुनने का उपक्रम करें। इस कार्य के सम्पन्न हो जाने पर प्राचीन संघीय सरकार समाप्त हो जाय।

तदनुसार सभी राज्यों ने अपनी-अपनी सभा निर्वाचित की। इनमें से कुछ ने अत्यधिक बहुमत के द्वारा और दो या तीन ने सर्वसम्मति से संविधान को स्वीकार किया; अन्यों में अत्यन्त विवाद हुआ और मतभेद रहा।

मेसाच्यूसे (Massachusetts) की सभा में, जिसकी बैठक बोस्टन (Boston) में हुई थी, लगभग तीन सौ सदस्यों में बहुमत केवल उन्नीस या बीस मत से अधिक नहीं रहा। किन्तु निर्वाचित प्रतिनिधि-पद्धति पर आधारित सरकार की ऐसी प्रकृति है कि बहुमत को शान्तिपूर्वक स्वीकार करके सारा कार्य किया जाता है।

विवादोपरांत जब वह सभा समाप्त हुई और मत लिये जा चुके तो विरोधी सदस्यों ने उठकर कहा—"यद्यपि हम लोगों ने इस संविधान के विपक्ष में तर्क प्रस्तुत किये और मत दिये, क्योंकि उसके कुछ अंश हम लोगों को उचित नहीं जंचे; किन्तु चूंकि मतदान ने प्रस्तावित संविधान के पक्ष में निर्णय दिया, अतः हम लोग इसका व्यावहारिक समर्थन उसी रूप में करेंगे जिस रूप में हम उस समय करते यदि हम उसके पक्ष में मत दिये होते।"

ज्योंही नौ राज्यों ने अपनी सहमति व्यक्त की, (शेष राज्यों ने भी अपनी सभाओं के निर्वाचन के पश्चात् इसी मार्ग का अनुसरण किया) उसी समय प्राचीन 'संघीय सरकार' के स्थान पर नवीन सरकार की स्थापना हुई, और सेनापति वाशिंगटन उसके सभापति हुए। इसी स्थल पर मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि इन महाशय का चरित्र और सेवाएँ, उन सभी लोगों को, जिन्हें राजा कहा जाता है, लज्जित करने में समर्थ हैं।

वे राजा मानव-जाति के पसीने एवं परिश्रम के आधार पर इतना अधिक वेतन पाते हैं, जिसके लिए न उनमें कोई योग्यता है और न उन्होंने कोई ऐसी सेवा ही की है; दूसरी ओर, सेनापति वाशिंगटन अपनी शक्ति भर प्रत्येक प्रकार की सेवा कर रहे हैं और प्रत्येक आर्थिक पुरस्कार को अस्वीकार कर रहे हैं। प्रधान सेनापति के रूप में उन्होंने कोई वेतन स्वीकार नहीं किया और 'संयुक्त राज्य' के प्रेसीडेण्ट के रूप में वे कोई वेतन स्वीकार नहीं करते हैं।

नवीन संघीय संविधान के निश्चित हो जाने के बाद पेंसिलवेनिया की सरकार ने यह सोच कर कि इसके संविधान के कुछ अंश बदल दिये जाने चाहिए, एक सभा निर्वाचित की ; प्रस्तावित परिवर्तन प्रकाशित किये गये और सार्वजनिक सहमति के बाद उन्हें स्वीकार किया गया।

इन संविधानों के निर्माण अथवा परिवर्तन में असुविधाएँ या तो अत्यधिक कम हुईं अथवा बिलकुल नहीं हुईं। सामान्य कार्य-क्रम में कोई व्यवधान उपस्थित नहीं हुआ और लाभ अधिक हुआ। किसी राष्ट्र के अधिकांश लोग गलती को बने रहने देने की अपेक्षा उसे सुधार देना अधिक अच्छा समझते हैं ; और जब सार्वजनिक विषयों पर खुला विवाद होता है तथा उस पर स्वतंत्र सार्वजनिक निर्णय होता है तो, यदि वह निर्णय अत्यधिक शीघ्रता में नहीं किया गया है, वह कभी गलत नहीं होगा।

सांविधानिक परिवर्तन की उपर्युक्त दोनों स्थितियों में, तत्कालीन सरकारों ने किसी भी प्रकार का भाग नहीं लिया। सांविधानिक परिवर्तन अथवा रचना सम्बन्धी पद्धति या सिद्धांत विषयक विवादों में सरकार को भाग लेने का कोई अधिकार है भी नहीं।

संविधान और उनके आधार पर निर्मित सरकारों की स्थापना, सरकार के अधिकारों को क्रियान्वित करने वाले व्यक्तियों के हित के लिए नहीं होती है। उन सभी विषयों में, काम करने और निर्णय करने का अधिकार उन्हें रहता है जो उसके लिए वेतन देते हैं, न कि उन्हें जो वेतन पाते है।

संविधान, सरकार में काम करने वालों का नहीं, वरन् एक राष्ट्र की सम्पत्ति है। अमेरिका में जनता के द्वारा ही संविधानों की स्थापना की घोषणा की गयी है। फ्रांस में 'जनता' के स्थान पर 'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग होता है, किन्तु दोनों स्थितियों में संविधान सरकार का पूर्वगामी और सर्वदा उससे भिन्न है।

इंगलैण्ड में, हम बड़ी सुगमतापूर्वक इसे समझ सकते हैं कि, 'राष्ट्र' को छोड़ कर शेष सभी का कुछ-न-कुछ संविधान है। प्रत्येक समाज, सभा अथवा संघ जिसकी स्थापना हो चुकी है, सर्वप्रथम कई मौलिक सिद्धांतों पर सहमत हुआ है और उसने उनके अनुसार अपने-अपने स्वरूप का निर्माण किया है; यही उसका संविधान है। तत्पश्चात् उसने अपने कर्मचारियों की, जिनके अधिकारों का उल्लेख उसके संविधान में किया गया है, नियुक्ति की और फिर सभा, समाज अथवा संघ का कार्य आरम्भ हुआ। उन पदाधिकारियों को चाहे जो नाम दिया जाय, संविधान के मौलिक सिद्धांत में वृद्धि करने, घटाने या परिवर्तन करने का उन्हें कोई अधिकार नहीं है; केवल वे ही लोग ऐसा कर सकते हैं जिन्होंने उस समाज, सभा अथवा संघ की रचना की है।

प्रतिनिधि पद्धति पर निर्मित सरकार

(Government by Representation)

और

पूर्व दृष्टांत पर आधारित सरकार

(Government by Precedent)

शक्ति की पाशविक प्रवृत्ति को नियंत्रित और नियमित करने वाले संविधान के अभाव के कारण, इंगलैण्ड में कई कानून अविवेकपूर्ण एवं अत्याचारात्मक हैं और उनका प्रशासन अनिश्चित तथा शंकास्पद है।

जर्मनी के साथ राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित होने के समय से ऐसा प्रतीत होता है कि इंगलैण्ड की सरकार का, जिसे 'इंगलिश सरकार' कहना मैं अपेक्षाकृत कम पसन्द करता हूँ, ध्यान वैदेशिक कार्यों और कर-वृद्धि के साधनों में इस प्रकार पूर्णतः तल्लीन है कि मानों इस सरकार का और कोई काम नहीं है। घरेलू कार्यों की उपेक्षा की जाती है, और वहाँ नियमित क़ानून जैसी कोई चीज़ कदाचित् ही है।

प्रायः प्रत्येक विषय को इस समय 'पूर्व दृष्टांत' (Precedent) के बल पर निश्चित करना चाहिए, चाहे वह अच्छा हो या बुरा, अथवा वह अनुकूल हो या प्रतिकूल;

इस प्रकार का अभ्यास इतना सामान्य हो गया है कि उसके कारण यह संदेह होने लगा है कि इसके मूल में अत्यधिक गहरी राजनीति काम कर रही है।

अमेरिका की क्रांति और विशेषकर फ्रांस की क्रांति के बाद से पूर्वगामी परिस्थितियों और समय द्वारा प्राप्त, इस 'पूर्व दृष्टांत सम्बन्धी सिद्धांत' का उपदेश इंगलैण्ड में पूर्वनिश्चित व्यवहार हो गया है। सामान्यतया वे 'पूर्व दृष्टांत' जिन सिद्धांतों और मतों पर आधारित है ठीक उनके विपरीत सिद्धान्तों और मतों पर उन्हें आधारित होना चाहिए था, और जितने अधिक कालान्तर से उन दृष्टांतों को लिया जायगा, उनके विषय में उतना ही अधिक सन्देह होगा।

किन्तु उन दृष्टांतों और प्राचीन राजाओं के प्रति अंधविश्वासपूर्ण सम्मान का योग करके—जैसा कि महन्त, शव या 'अवशेष' (Relics) का प्रदर्शन करते हैं और उन्हें पवित्र कहते हैं—मनुष्यों को छला जाता है। सरकारें इस समय इस प्रकार कार्य कर रही हैं कि मानो वे मनुष्य में एक भी विचार जाग्रत करने से डरती हैं। वे मनुष्य की शक्तियों को नष्ट करने और क्रान्ति के दृश्यों से उसका ध्यान हटाने के निमित्त, चुपचाप पूर्व दृष्टान्तों की कब्र की ओर उसे लिये जा रही हैं।

वे सरकारें इस बात को समझती हैं कि मनुष्य, जितना वे चाहती हैं उसकी अपेक्षा अधिक–क्षिप्रता के साथ ज्ञान तक पहुँच रहा है, और उनकी पूर्व दृष्टांत वाली नीति उनके डरों का मापदण्ड है। प्राचीन समय की धार्मिक महन्ती के समान इस राजनैतिक महन्ती का भी एक समय था, और अब यह अपने विनाश की ओर द्रुतगति से जा रही है। जीर्ण 'अवशेष' और प्राचीन दृष्टान्त, महन्त और सम्राट, सभी साथ-साथ नष्ट होंगे।

पूर्व दृष्टांत पर स्थापित सरकार सर्वाधिक अधम शासन-पद्धतियों में से एक है। कई स्थितियों में पूर्व दृष्टान्त को चेतावनी के रूप में कार्य करना चाहिए, न कि उदाहरण के रूप में; और उनकी उपेक्षा करनी चाहिए, न कि उनका अनुकरण। किन्तु इसके स्थान पर होता यह है कि उन दृष्टान्तों की राशि को संविधान और कानून के लिए स्वीकार कर लिया जाता है।

पूर्व दृष्टांत का यह सिद्धांत या तो मनुष्य को अज्ञान की स्थिति में रखने की नीति है, अथवा वह इस तथ्य की व्यावहारिक स्वीकृति है कि जिस मात्रा में सरकार की उम्र अधिक होती जाती है, उसी अनुपात में उसकी बुद्धि का

क्षय होता जाता है और वह केवल पूर्व दृष्टान्तों के आधार पर चल सकती है, जिस प्रकार लंगड़े बैसाखी आदि का सहारा लेकर चलते हैं।

यह बात समझ में नहीं आती कि जिन्हें गर्वपूर्वक उनके पूर्वजों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान कहा जाता है, वे ही व्यक्ति मृतकों की बुद्धि की छाया मात्र प्रतीत होते हैं। प्राचीनता को कितने निराले ढंग से प्रस्तुत किया जाता है! अपने अभिप्रायों के अनुसार, प्राचीनता के विषय में कभी कहा जाता है कि वह अन्धकार और अज्ञानता का युग था और कभी कहा जाता है कि विश्व को इससे प्रकाश मिलता है।

यदि पूर्व दृष्टान्त के सिद्धान्त का अनुसरण करना है तो सरकार का खर्च वही नहीं रहना चाहिए। जिनको कुछ काम नहीं करना है, उन्हें अधिक वेतन देने की क्या आवश्यकता है? यदि सब कुछ पूर्व दृष्टान्त के आधार पर ही होना है, तो विधान की आवश्यकता समाप्त हो गयी, और शब्दकोष के समान 'दृष्टान्त' प्रत्येक विषय को निश्चित कर देगा। अस्तु, या तो सरकार अपनी वृद्धावस्था की निर्बलता को प्राप्त हो चुकी है और उसे पुनर्नवीन करने की आवश्यकता है, अथवा इसकी बुद्धि का उपयोग करने के सभी अवसर बीत चुके हैं।

इस समय हम देखते हैं कि यूरोप भर में, विशेषतः, इंगलैण्ड में राष्ट्र एक दिशा में देख रहा है और सरकार दूसरी दिशा में देख रही है; एक आगे की ओर और दूसरा पीछे की ओर। यदि सरकार को पूर्व दृष्टान्तों के आधार पर चलना है, जब कि राष्ट्र प्रगति पर चल रहा है, तो एक-न-एक दिन उन दोनों का अन्तिम विच्छेद होकर रहेगा; जितनी शीघ्रता एवं सभ्यता के साथ वे दोनों इस विषय को तय कर लें उनके लिए वह उतना ही अच्छा होगा।[1]

१ इंगलैण्ड में कृषि, उपयोगी कलाओं, उत्पादन और वाणिज्य आदि की उन्नति सरकार की पूर्व दृष्टांतों का अनुसरण करनेवाली बुद्धि के विपरीत हुई है। इस उन्नति का कारण है व्यक्तियों तथा अनेक संस्थाओं का—जिसमें सरकार का कोई योग अथवा सहारा नहीं है—साहस और उद्योग।

योजना बनाते समय अथवा उसके अनुसार कार्य करते समय किसी व्यक्ति ने सरकार के विषय में कुछ भी नहीं सोचा। वह सरकार से केवल यही आशा करता था कि वह उसे काम करने देगी। दो या तीन मंत्रियों के समर्थक समाचारपत्र लगातार इस राष्ट्रीय उन्नति के भाव को यह कहकर क्षति पहुँचा रहे थे कि यह उन्नति वास्तव में एक मन्त्री के कारण हो रही है। वे समाचारपत्र इस मेरी पुस्तक का श्रेय भी उसी मन्त्री को दे सकते हैं।

यह स्पष्ट हो जाने के बाद कि संविधान सरकार से भिन्न है, अब हम संविधान के भागों पर विचार करें।

भागों के विषय में सम्पूर्ण की अपेक्षा मत-वैभिन्य अधिक होता है। सरकार के संचालन के निमित्त एक राष्ट्र को संविधान की आवश्यकता है। यह एक ऐसी सरल बात है जिसे सभी व्यक्ति, जो प्रत्यक्ष रूप से राजदरबारी नहीं है, स्वीकार करेंगे। किन्तु उस संविधान के विभिन्न भागों के विषय में नाना प्रकार के मत और प्रश्न उठते हैं।

किन्तु यदि इस विषय की चर्चा को ऐसे क्रम से रखा जाय कि उसे भलीभाँति समझा जा सके तो हमारी कठिनाई कम हो जायगी।

पहली बात यह है कि एक राष्ट्र को संविधान बनाने का अधिकार है।

दूसरी बात यह है कि राष्ट्र अपने इस अधिकार का प्रयोग पहली बार न्यायपूर्ण ढंग से करता है या नहीं। इतना सत्य है कि राष्ट्र के पास जो न्यायबुद्धि है उसीके अनुसार वह अपने अधिकार का प्रयोग करता है, और ऐसा ही निरन्तर करते रहने से भूलें दूर की जा सकेंगी।

जब राष्ट्र में इस अधिकार को स्थापित किया जाता है, तब यह डर नहीं है कि वह अपनी क्षति के लिए इसका प्रयोग करेगा। राष्ट्र यह कभी नहीं चाहेगा कि वह ग़लती करे।

यद्यपि अमेरिका के सभी संविधान एक ही सामान्य सिद्धांत पर आधारित हैं, किन्तु जहाँ तक उनके विभिन्न भागों का अथवा सरकार को दिये गये अधिकारों के वितरण का प्रश्न है, कोई दो राज्यों के संविधानों में नितान्त अभिन्नता नहीं है। कुछ अधिक और कुछ कम जटिल हैं।

संविधान बनाते समय सर्वप्रथम यह विचार करना आवश्यक है कि किन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सरकार की आवश्यकता पड़ती है। तत्पश्चात्, यह सोचना चाहिए कि उन लक्ष्यों की प्राप्ति के सर्वोत्तम और सब से कम व्यय वाले साधन कौन-से हैं।

'राष्ट्रीय संस्था' के अतिरिक्त सरकार और कुछ नहीं है, और इस संस्था का लक्ष्य है सार्वजनिक हित—व्यक्तिगत और सामूहिक हित। प्रत्येक व्यक्ति की इच्छा रहती है कि वह अपना काम करे तथा अपने परिश्रम और सम्पत्ति का भोग सुख, शान्ति एवं सुरक्षापूर्वक कम-से-कम व्यय पर कर सके। यदि

सरकार से व्यक्ति की इस इच्छा की पूर्ति हो जाती है तो उन सभी लक्ष्यों की प्राप्ति हो जाती है, जिनके लिए सरकार की स्थापना होनी चाहिए।

तीन भिन्न-भिन्न भागों में बाँटकर सरकार के विषय में विचार करने की प्रथा—जैसी बन चली है—वे हैं विधान-विभाग, कार्यपालिका-विभाग और न्याय-विभाग।

किन्तु यदि ठीक ढंग से देखा जाय तो वास्तव में असैनिक सरकार (Civil Government) की शक्ति को केवल दो विभागों में बाँट सकते हैं: विधायिनी-शक्ति अथवा क़ानून बनाने की शक्ति, और दूसरी कार्यपालिका-शक्ति अर्थात् उन क़ानूनों को कार्यान्वित करने वाली शक्ति। इसलिए असैनिक सरकार का प्रत्येक कार्य इन दो में से किसी एक प्रकार में रखा जा सकता है।

जहाँ तक क़ानूनों को कार्यान्वित करने का प्रश्न है, जिसे हम न्यायिक शक्ति (Judicial Power) कहते हैं, वास्तव में वही प्रत्येक देश की कार्यपालिका-शक्ति है। यह वह शक्ति है जिससे प्रत्येक व्यक्ति न्याय की प्रार्थना करता है और जिसके कारण क़ानून का पालन होता है। इंगलैण्ड में, अमेरिका तथा फ्रांस में भी, यह शक्ति मजिस्ट्रेट से आरम्भ होकर क्रमशः सभी उच्च न्यायालयों के माध्यम से कार्य करती है।

मैं दरबारियों से यह कहूँगा कि वे यह समझावें कि राजतंत्र को कार्यपालिका-शक्ति (Executive Power) कहने का तात्पर्य क्या है। वास्तव में कार्यपालिका-शक्ति केवल एक संज्ञा है जिसके अन्तर्गत सरकार के कार्य निष्पादित होते हैं।

अपने सिद्धान्तों के औचित्य और राष्ट्र की उस अभिरुचि के—जो उनके प्रति होती है—द्वारा ही क़ानूनों को बल प्राप्त करना चाहिए। यदि इसके अतिरिक्त उन्हें अन्य किसी प्रकार से अधिकार प्राप्त करना पड़ा, तो इसका अर्थ होगा कि सरकार की पद्धति में कहीं अपूर्णता है। जिन क़ानूनों को कार्यान्वित करना कठिन होता है, वे सामान्य रूप से अच्छे नहीं हो सकते।

जहाँ तक विधायिनी शक्ति (Legislative power) के प्रबन्ध की बात है, भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न पद्धतियाँ प्रचलित हैं। अमेरिका में इसे दो सदनों में विभक्त किया गया है। फ्रांस में केवल एक सदन है। किन्तु दोनों देशों में निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा ही इन सदनों का निर्माण होता है।

बात यह है कि स्वेच्छापूर्वक माने गये अधिकार के चिरकालीन अत्याचार के कारण मानव-जाति को सरकार के सर्वोत्तम सिद्धांतों और पद्धतियों को खोज निकालने के लिए आवश्यक परीक्षण करने के अवसर इतने कम प्राप्त हो सके हैं कि सरकार विषयक जानकारी अभी आरम्भ हो रही है, और बहुत-सी बातों को तय करने के लिए अभी अनुभव की आवश्यकता है।

दो सदनों के विरोध में निम्नांकित तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं।

(१) विधान-मण्डल के केवल एक भाग का मतदान द्वारा किसी विषय का निर्णय करना असंगत है; क्योंकि सम्पूर्ण विधान-मण्डल की दृष्टि से वह विषय उस समय केवल विचाराधीन रहता है और बाद में उसकी नवीन व्याख्याएँ हो सकती हैं।

(२) विधान-मण्डल के प्रत्येक सदन में स्वतंत्र रूप से मतदान द्वारा निर्णय करने में इस बात की संभावना रहती है, और अभ्यास में प्रायः यही होता भी है कि अल्पमत बहुमत पर शासन कर बैठे। कभी-कभी तो यह असंगति अधिक हो जाती है।

(३) दोनों सदनों का स्वेच्छापूर्वक एक दूसरे पर अंकुश रखना अथवा उसका नियन्त्रण रखना असंगत है; क्योंकि उचित निर्वाचन के सिद्धांत के आधार पर यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि उन दोनों में से कौन दूसरे की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान अथवा अच्छा है। वे एक दूसरे को बुरे कामों में ही नहीं, अच्छे कामों में भी रोक सकते हैं। इसलिए हम जिन्हें अधिकार का उचित उपयोग करने की बुद्धि नहीं प्रदान कर सकते अथवा जिनके प्रति हमें यह विश्वास नहीं है कि वे अधिकारों का उचित प्रयोग करेंगे, उन्हें अधिकार देने से जो संकट उत्पन्न होता है हमें उसके प्रति सतर्क रहना चाहिए।

एक सदन के विरोध में यह तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि यह किसी निर्णय में अत्यधिक शीघ्रता कर सकता है। किन्तु इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि जब उस देश का संविधान उन अधिकारों की व्याख्या तथा उन सिद्धांतों की स्थापना कर देता है जिनके आधार पर विधान-मण्डल को कार्य करना है, तो इस दिशा में अपेक्षाकृत अधिक प्रभावशाली निग्रह वर्तमान है। एक उदाहरण लीजिए; इंगलैण्ड में जार्ज प्रथम के राज्य काल के आरम्भ में सभाओं की कार्य-अवधि को बढ़ाने के विषय में इंगलैण्ड की संसद् ने एक क़ानून स्वीकार किया। यदि उसी प्रकार का कोई विधेयक अमेरिका के विधान-मण्डल में

प्रस्तुत किया जाय तो उसके विषय में सांविधानिक निग्रह प्रस्तुत है ; संविधान में यह उल्लिखित है:—'आप यहाँ तक जा सकते हैं, इसके आगे नहीं ।'

किन्तु एक सदन के विरोध में दिये गये तर्क और साथ-ही-साथ दो सदनों के कारण उत्पन्न होनेवाली असंगतियों अथवा कुछ मूर्खताओं का निवारण करने के निमित्त निम्नांकित पद्धतियों को प्रस्तावित किया गया है :—

(१) प्रतिनिधित्व केवल एक हो ।

(२) उस प्रतिनिधित्व को चिट्ठी द्वारा दो या तीन भागों में बाँट दिया जाय ।

(३) प्रत्येक प्रस्तावित विधेयक पर क्रमशः उन सभी भागों में चर्चा हो, जिससे वे सभी एक दूसरे को सुन सकें ; किन्तु मतदान न हो । तदुपरांत सभी प्रतिनिधि एकत्र होकर सामान्य चर्चा करें और मतदान द्वारा किसी निर्णय पर पहुँचें ।

इस प्रस्तावित सुधार के साथ एक अन्य सुझाव इसलिए प्रस्तावित किया गया है कि प्रतिनिधित्व निरन्तर नवीन होता रहे और वह यह है कि एक वर्ष के बाद एक तिहाई प्रतिनिधियों का कार्य-काल समाप्त कर दिया जाय और नये निर्वाचन द्वारा नये प्रतिनिधियों का चुनाव हो ।

दूसरे वर्ष के बाद प्रतिनिधियों के दूसरे तृतीयांश का कार्य-काल समाप्त कर दिया जाय और उनके स्थान की पूर्ति पूर्ववत् हो । प्रत्येक तीसरे वर्ष सामान्य निर्वाचन हो ।

किन्तु संविधान के विभिन्न भाग चाहे जिस रूप में व्यवस्थित किये जायं, दासता से स्वतन्त्रता की भिन्नता प्रकट करने के लिए एक सामान्य सिद्धांत है ; वह यह है कि सब प्रकार की आनुवंशिक सरकारें मानव-जाति के लिए दासता है, और प्रतिनिधित्व पर आधारित सरकार स्वतन्त्रता है ।

अमेरिका में केवल राष्ट्रपति का पद ही एक ऐसा पद है जो किसी भी विदेशी के लिए वर्जित है; और इंगलैण्ड में यही एक पद है जिस पर एक विदेशी नियुक्त किया जाता है । इंगलैण्ड में एक विदेशी संसद् का सदस्य नहीं हो सकता, किन्तु वह राजा हो सकता है । यदि विदेशियों का वर्जन करने के लिए कोई कारण है, तो उनका वर्जन केवल उन पदों के विषय में होना चाहिए जहाँ सर्वाधिक शरारतें की जा सकती हैं और जहाँ, अनुराग और स्वार्थ के प्रत्येक प्रोत्साहन द्वारा सर्वाधिक विश्वास प्राप्त किया जाता है ।

किन्तु राष्ट्र, संविधान बनाने के महान कार्य में अग्रसर हो रहे हैं, अतः वे सरकार के उस विभाग की, जिसे कार्यपालिका-विभाग (executive) कहा जाता है, प्रकृति एवं कार्य पर अपेक्षाकृत अधिक यथार्थता के साथ विचार करेंगे। विधान-विभाग और न्यायिक-विभाग क्या है, इसे प्रत्येक व्यक्ति जानता है; किन्तु इन दोनों से भिन्न, इंगलैण्ड में जिसे कार्यपालिका-विभाग (executive) कहा जाता है वह या तो राजनैतिक आधिक्य है अथवा अज्ञात वस्तुओं का गोलमाल है। केवल एक ऐसे प्रशासकीय विभाग की आवश्यकता है जिसके पास राष्ट्र के विभिन्न भागों से अथवा विदेशों से सूचनाएँ या प्रतिवेदन राष्ट्रीय प्रतिनिधियों के सम्मुख प्रस्तुत करने के लिए भेजे जायं। किन्तु इस विभाग को कार्यपालिका-विभाग कहना संगत नहीं; और हम इसे विधान-मण्डल की अपेक्षा सर्वदा कम महत्व का मानेंगे। कानून बनाने का अधिकार किसी देश का सब से बड़ा अधिकार है; इसलिए विधान-मण्डल के अतिरिक्त सभी कुछ प्रशासकीय विभाग हैं।

संविधान के विभिन्न भागों के संघटन और सिद्धांतों की व्यवस्था के बाद उन व्यक्तियों की व्यवस्था का महत्व है, जिन्हें राष्ट्र सांविधानिक अधिकारों के निष्पादन का कार्य सौंपता है।

एक राष्ट्र यदि किसी व्यक्ति को किसी विभाग में नियुक्त करता है अथवा कोई विभाग उसे सौंपता है, तो राष्ट्र को उस व्यक्ति के समय और उसकी सेवाओं को उसीके व्यय पर स्वीकार करने का अधिकार नहीं है; और यह बात भी तर्कसम्मत नहीं है कि सरकार के किसी भाग की सहायता के लिए व्यवस्था की जाय और अन्य के लिए न की जाय।

माना कि सरकार के किसी विभाग के सौंपे जाने का सम्मान स्वयं ही पर्याप्त पुरस्कार है, किन्तु यही बात प्रत्येक व्यक्ति के विषय में होनी चाहिए। यदि किसी देश के विधान-मण्डल के सदस्यों को अपने व्यय पर राष्ट्र की सेवा करनी है, तो जिसे कार्यपालिका-विभाग कहते हैं, चाहे वह राजतन्त्रीय हो अथवा अन्य प्रकार का, उसे भी उसी रूप में राष्ट्र की सेवा करनी चाहिए। एक को वेतन देना और दूसरे से अवैतनिक सेवा स्वीकार करना असंगत है।

अमेरिका में सरकार के प्रत्येक विभाग को समुचित वेतन दिया जाता है, किन्तु किसी को अनावश्यक वेतन नहीं दिया जाता है। दूसरी ओर, इंगलैण्ड में

सरकार के एक विभाग के निर्वाह के लिए सर्वाधिक अनावश्यक व्यवस्था की जाती है और दूसरे भाग के लिए कोई व्यवस्था नहीं है ; परिणाम यह है कि एक के पास भ्रष्टाचार का साधन प्रस्तुत हो जाता है और दूसरा भ्रष्ट होने की स्थिति में रख दिया जाता है। जैसी व्यवस्था अमेरिका में है, यदि वैसी ही व्यवस्था इंगलैण्ड में हो जाय तो वहाँ जो व्यय होता है उसके चौथाई से भी कम खर्च पर भ्रष्टाचार के बहुलांश का उपचार किया जा सकता है।

अमेरिकी संविधान में दूसरा सुधार-कार्य है व्यक्तित्व-निष्ठा-शपथ को कुत्सित समझना। राज्य-निष्ठा-शपथ (Oath of allegiance) केवल राष्ट्र के प्रति होनी चाहिए। एक व्यक्ति को राष्ट्र के प्रतीक-रूप में मानना अनुचित है। राष्ट्र का सुख सर्वोपरि है। अतः किसी व्यक्ति के नाम पर अथवा प्रतीकात्मक पद्धति से राज्य-निष्ठा-शपथ लेकर उसे गूढ़ नहीं बनाना चाहिए। फ्रांस में प्रचलित नागरिक शपथ, 'राष्ट्र, क़ानून और राजा' के नाम पर ली जाती है। यह शपथ अनुचित है। यदि शपथ लेना आवश्यक है तो, जैसा कि अमेरिका में होता है, केवल राष्ट्र के प्रति शपथ ग्रहण करने की प्रथा होनी चाहिए।

क़ानून अच्छे हो सकते हैं और नहीं भी हो सकते हैं। किन्तु इस शपथ के अवसर पर, राष्ट्र के सुख को बढ़ाने में सहायक होने के अतिरिक्त क़ानून का और कोई अर्थ नहीं हो सकता और इसलिए 'राष्ट्र' शब्द में 'क़ानून' का अर्थ निहित है। उपर्युक्त शपथ का शेष अंश इसलिए अनुचित है कि सभी प्रकार की व्यक्ति-निष्ठा शपथों की प्रथा समाप्त कर देनी चाहिए। ऐसी शपथें, एक ओर तो अत्याचार के अवशेष हैं और दूसरी ओर दासता हैं। शपथ के समय अपनी सृष्टि का पतन देखने के लिए 'सृष्टिकर्त्ता' के नाम का उल्लेख नहीं होना चाहिए। किन्तु यदि उसका नाम, जैसा कि कहा जा चुका है, राष्ट्र के प्रतीक स्वरूप लिया जाता है तो वह इस अवसर पर आवश्यकता से अधिक है।

किन्तु सरकार की प्रथम स्थापना के अवसर पर शपथ-ग्रहण के लिए चाहे जो क्षमा-प्रार्थना की जाय, किन्तु बाद में यह प्रथा समाप्त होनी चाहिए। यदि सरकार को शपथ का बल चाहिए तो यह इस बात का प्रमाण है कि वह सरकार संभालने योग्य नहीं है, और न उसे संभालना चाहिए। सरकार को

जो होना चाहिए, यदि उसे वही बना दीजिए, तो वह अपना भार स्वयं संभाल लेगी।

विषय के इस पक्ष की चर्चा को समाप्त करते हुए मैं यह कहूँगा कि नये संविधान ने पुनर्विचार, परिवर्तन और संशोधन की जो व्यवस्था स्वीकार की है, वह सांविधानिक स्वतंत्रता की निरन्तर सुरक्षा और प्रगति के लिए किये गये सर्वाधिक सुधारों में से एक है।

भावी पीढ़ियों को सृष्टि के अन्त पर्यन्त नियंत्रित रखने तथा उनके अधिकारों से उन्हें सर्वदा के लिए वंचित करने की मान्यता को जो, 'बर्क' के राजनीतिक मत का आधार-सिद्धान्त है, इस समय इतना घृणास्पद माना जाता है कि उसे विवाद का विषय बनाना उचित नहीं है।

सरकार-विषयक जानकारी अभी आरम्भ हो रही है। अब तक शक्ति का प्रयोग मात्र होने के कारण सरकार ने अधिकारों की सफल जाँच का निषेध किया और वह पूर्णतः सम्मति के रूप में रही है। जब तक स्वतंत्रता का शत्रु ही उसका निश्चय करने वाला था, तब तक सरकार के सिद्धान्तों की उन्नति वास्तव में कम हुई होगी।

अमेरिका और फ्रांस के संविधानों ने या तो पुनर्विचार के लिए एक समय निश्चित कर दिया है अथवा सुधार विषयक पद्धति का निर्णय कर दिया है।

सिद्धान्तों का, मतों और व्यवहारों से सम्बन्ध स्थापित करने की कोई ऐसी व्यवस्था करना कदाचित् असम्भव है जिसमें कई वर्षों के बाद परिस्थितियों की प्रगति कुछ अंशों में व्यतिक्रम न उत्पन्न कर दे अथवा उसे असंगत न सिद्ध कर दे। इसलिए सुधारों को हतोत्साहित करने या क्रान्तियों को उत्तजना प्रदान करने वाली असुविधाओं को राशिगत होने से रोकने के लिए सबसे अच्छा मार्ग यही है कि जैसे ही कोई असुविधा दिखलाई पड़े वैसे ही उसका नियमन कर दिया जाय।

मनुष्य के अधिकार सभी पीढ़ियों के मनुष्य के अधिकार हैं, उन पर किसी का एकाधिपत्य नहीं हो सकता। जो अनुसरणीय है वह योग्यता के बल पर अनुसरणीय बना रहेगा; और इसीमें उसकी सुरक्षा निहित है, न कि किसा शर्त में। जब एक व्यक्ति अपने उत्तराधिकारियों के लिए अपनी सम्पत्ति

छोड़ता है तो उसे स्वीकार करने के लिए कोई बन्धन नहीं लगाता। फिर संविधानों के विषय में हम अन्यथा व्यवहार क्यों करें ?

वर्तमान समय की स्थिति के अनुकूल, संविधान की जो सर्वोत्तम योजना सम्भव है, कुछ वर्षों के बाद उसकी उत्तमता बहुत कुछ कम हो सकती है। सरकार के विषय में मनुष्य को नित नवीन ज्ञान प्राप्त हो रहा है। वर्तमान प्राचीन पद्धति की सरकारों की अशिष्टता ज्योंही समाप्त होगी, उसी क्षण राष्ट्रों की पारस्परिक नैतिक स्थिति बदल जायगी।

मनुष्य को ऐसी अशिष्ट शिक्षा नहीं दी जायगी कि वह अपनी जाति के अन्य प्राणियों को शत्रु समझे, केवल इसलिए कि संयोगवश उन्होंने एक ऐसे देश में जन्म लिया है, जहाँ मनुष्यों को भिन्न-भिन्न वर्गों के अन्तर्गत रखा जाता है। चूँकि संविधान का सम्बन्ध वैदेशिक और घरेलू परिस्थितियों से रहेगा, इसलिए वैदेशिक अथवा घरेलू किसी भी परिवर्तन के अनुकूल व्यवस्था करना संविधान का महत्वपूर्ण अंग है।

हम इंगलैण्ड और फ्रांस की पारस्परिक राष्ट्रीय प्रकृति में परिवर्तन देख रहे हैं जो कि यदि अतीत के कुछ वर्षों पर विचार करें तो स्वयं एक क्रान्ति है। कौन जानता था या विश्वास कर सकता था कि फ्रांस की राष्ट्रीय सभा का इंगलैण्ड में सार्वजनिक समर्थन होगा अथवा दोनों राष्ट्र परस्पर मैत्री-सम्बन्ध के इच्छुक होंगे।

इससे प्रकट होता है कि मनुष्य को यदि सरकारों द्वारा भ्रष्ट नहीं किया जाय तो वह प्रकृतितः मनुष्य का मित्र है और उसकी प्रकृति अपने वास्तविक रूप में बुरी नहीं है। ईर्ष्या और क्रूरता की जिस भावना को, उन दोनों देशों की सरकारों ने उत्तेजित किया और कर-निर्धारण के लिए उपयोगी बनाया, वह इस समय बुद्धि, हित और मानवता के आदेशों को स्वीकार कर रही है।

राजदरबारों की चालें अब सबकी समझ में आने लग गयी हैं और रहस्याडम्बर तथा प्रदर्शनों का वह इन्द्रजाल, इस समय अपनी विनाशावस्था में है। उसे प्राणघातक प्रहार मिल चुका है, और यद्यपि इसके अन्त में अभी कुछ विलम्ब है, किन्तु इसका अंत निश्चित है।

मनुष्य की सभी वस्तुओं के समान ही, सरकार को भी सर्वदा सुधार का विषय होना चाहिए। किन्तु युगों से इस पर मानव-जाति में सर्वाधिक अज्ञानी

और दुष्ट मनुष्यों का एकाधिपत्य रहा है। उनके कुप्रबन्ध का प्रमाण इससे अधिक क्या हो सकता है कि प्रत्येक राष्ट्र ऋण तथा करों के भार से कराह रहा है और सारा विश्व बड़ी तीव्र गति से झगड़ों में डाल दिया गया है।

सरकारें अभी-अभी इस निकृष्ट स्थिति से बाहर निकल रही हैं, इसलिए सरकार-विषयक सुधार किस सीमा तक जा सकता है, यह निश्चित करने का अभी अवसर नहीं है।

सरकार के मूल तत्वों की विवेचना

मनुष्य के लिए 'सरकार' की चर्चा सर्वाधिक मनोरंजक है। मनुष्य चाहे धनी हो या निर्धन, उसकी सुरक्षा और अधिकांश अंशों में उसकी उन्नति का सम्बन्ध सरकार से है। इसलिए सरकार-विषयक सिद्धान्तों से अवगत होना तथा यह जान लेना कि उन सिद्धान्तों का प्रयोग किस प्रकार होना चाहिए, मनुष्य का स्वार्थ और कर्तव्य है।

पीढ़ियों ने प्रत्येक कला और विज्ञान का अध्ययन किया, उसकी उन्नति की तथा अपने प्रगतिशील परिश्रम द्वारा उसे पूर्णता की स्थिति तक पहुँचा दिया। किन्तु 'सरकार' विषयक विज्ञान अपनी प्रारम्भिक दिशा में ही पड़ा रहा। अमेरिकी क्रान्ति के आरम्भ काल तक 'सरकार' के सिद्धान्तों में कोई सुधार नहीं हुआ और उनके प्रयोग में भी कदाचित् ही कोई सुधार हुआ था। फ्रांस को छोड़कर यूरोप के अन्य देशों में अज्ञानता के सुदूर युगों में स्थापित सरकार के स्वरूप और पद्धतियाँ आज दिन भी प्रचलित हैं; उनकी पुरातनता ने सिद्धान्तों का स्थान ले लिया है। उनके मूल विषय में अथवा उनके अस्तित्व के अधिकारों का अनुसंधान करना निषिद्ध है। यदि कोई यह पूछे कि यह कैसे हुआ तो उत्तर अत्यन्त सरल होगा कि वे सरकारें ग़लत सिद्धान्त पर स्थापित हैं और वास्तविकता का पता लगाने के प्रत्येक प्रयत्न को रोकने में अपनी पूरी शक्ति का प्रयोग करती हैं।

मानव-जाति पर प्रभाव डालने, उसे लूटने तथा दास बनाने के लिए सरकार-विषयक विज्ञान को जिस रहस्यावरण से ढँका गया है उसके बावजूद भी,

स्थिति में हुआ; और वर्तमान युद्ध मनुष्य के अधिकारों पर आधारित प्रतिनिधि-पद्धति तथा अपहरण पर आधारित आनुवंशिक-पद्धति के मध्य होने वाला संघर्ष है। जिसे राजतंत्र और कुलीनतंत्र कहते हैं, वे आनुवंशिक पद्धति के गौण तत्व या लक्षण हैं, और यदि वह पद्धति समाप्त हो जाय तो वे अपने आप समाप्त हो जायेंगे।

यदि राजतंत्र और कुलीनतंत्र आदि शब्द न प्रयुक्त हों अथवा इनके स्थान में किन्हीं अन्य शब्दों का प्रयोग किया जाय, तो भी सरकार की आनुवंशिक पद्धति में, यदि वह आरम्भ रहे, कोई परिवर्तन नहीं होगा। किसी भी नाम के अन्तर्गत यह पद्धति वैसी ही रहेगी, जैसी है।

वर्तमान युग की क्रांतियाँ प्रतिनिधि-पद्धति पर आधारित होने के कारण, आनुवंशिक-पद्धति के विरुद्ध अपना चरित्रगत वैशिष्ट्य निश्चित रूप से प्रकट करती हैं। अन्य कोई भेद सम्पूर्ण सिद्धांत को समाविष्ट नहीं कर पाता है।

अस्तु, विषय का सामान्य आरम्भ कर देने के पश्चात् अब मैं, सर्व प्रथम, आनुवंशिक-पद्धति का परीक्षण करूंगा; क्योंकि समय के विचार से यह पद्धति अपेक्षाकृत अधिक प्राचीन है। प्रतिनिधि-पद्धति वर्तमान युग का आविष्कार है। इसलिए कि मेरे मत के बारे में किसी प्रकार की शंका उत्पन्न न हो सके, मैं इसी स्थल पर स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि रेखागणित में एक भी ऐसा सिद्धांत नहीं है जिसमें गणित सम्बन्धी सत्य इस सत्य से अधिक हो कि आनुवंशिक सरकार को अस्तित्व में रहने का कोई अधिकार नहीं है। इसलिए जब हम एक व्यक्ति से आनुवंशिक अधिकारों का प्रयोग छीन लेते हैं तो हम उससे वह छीन लेते हैं जिसे धारण करने का न तो उसे अधिकार था, न वह किसी कानून या प्रथा के द्वारा उसे प्राप्त हो सकता था, और न उसका प्राप्त हो सकना कभी सम्भव ही है।

आनुवंशिक-पद्धति के विपक्ष में अब तक जितने तर्क प्रस्तुत किये गये हैं, वे मुख्यतः उसकी मूर्खता तथा अच्छी सरकारों के कार्यों के लिए उसकी अयोग्यता पर आधारित रहे हैं। हमारे विवेक और कल्पना के सम्मुख इससे बढ़ कर मूर्खता और क्या प्रस्तुत हो सकती है कि एक राष्ट्र की सरकार—जैसा कि प्रायः होता है—एक ऐसे बालक के हाथों में पड़े जो निश्चित रूप से अनुभवहीन और प्रायः मूर्ख से कुछ ही अच्छा होता है। राष्ट्र के प्रत्येक प्रतिभासम्पन्न, चरित्रवान और प्रौढ़ व्यक्ति का यह अपमान है।

जिस क्षण हम आनुवंशिक-पद्धति पर तर्क आरम्भ करते हैं, उसी क्षण वह उपहासास्पद हो जाती है; मस्तिष्क में उसके विषय में केवल एक विचार उठने दीजिए, सहस्रों विचार उसका अनुगमन करेंगे। तुच्छता, शारीरिक या मानसिक दुर्बलता, बचपना, गम्भीरता, नैतिक चरित्र का अभाव संक्षेप में सभी गम्भीर अथवा हास्योत्पादक दोष एक साथ इस पद्धति को उपहासास्पद सिद्ध करते हैं। इस पद्धति के उपहास को पाठकों की कल्पना पर छोड़ कर, मैं प्रश्न के अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण अंश की चर्चा कर रहा हूँ; और वह यह है कि क्या इस प्रकार की पद्धति को बने रहने का अधिकार है।

इस बात की संतोषजनक जानकारी के लिए कि किसी वस्तु को बने रहने का अधिकार है, हमें यह जान लेना आवश्यक है कि उसे उत्पन्न होने का अधिकार था या नहीं। यदि उसे पैदा होने का अधिकार नहीं था, तो स्पष्ट है कि उसे बने रहने का अधिकार भी नहीं है। आनुवंशिक पद्धति किस अधिकार से आरम्भ हुई? कोई व्यक्ति इस प्रश्न पर केवल विचार करना आरम्भ कर दे, और उसे पता चलेगा कि वह कोई भी संतोषजनक उत्तर नहीं पा सकता।

किसी व्यक्ति अथवा वंश का, अपने को तथा अपनी संतानों को सर्वप्रथम, एक राष्ट्र का शासक बनाने तथा अपनी परम्परा स्थापित करने का अधिकार, ठीक वही अधिकार रहा जो रोबेस्पेर (Robespierre) को फ्रांस में था। यदि रोबेस्पेर को कोई अधिकार नहीं था तो उपर्युक्त किसी व्यक्ति या वंश को भी कोई अधिकार नहीं था; और यदि किसी व्यक्ति या वंश को कोई अधिकार था, तो रोबेस्पेर को अधिकार क्यों नहीं था? किसी वंश में अधिकारगत श्रेष्ठता को—जिसके आधार पर वंशपरम्परागत सरकारें आरम्भ हो सकती थीं—ढूँढ़ निकालना असम्भव है। जहाँ तक अधिकार का प्रश्न है, केपेट (Capet), रोबेस्पेर, मॅरट (Marat) आदि सभी एक धरातल पर हैं। यह अधिकार केवल एक का नहीं है।

यह विचार कि वंशपरम्परागत सरकार किसी एक वंश के ऐकान्तिक अधिकार के रूप में उत्पन्न नहीं हो सकती थी स्वतंत्रता की दिशा में एक कदम है। दूसरी विचारणीय बात यह है कि क्या एक बार उत्पन्न हो कर समय के प्रभाव से यह अधिकार का रूप ले सकती है।

इसे स्वीकार करना मूर्खता को स्वीकार करना होगा; क्योंकि यह या तो

समय को सिद्धांत के स्थान पर रखना हुआ, अथवा समय को सिद्धांत से श्रेष्ठ मानना हुआ। किन्तु वास्तविकता यह है कि सिद्धांत के प्रति समय का उतना ही सम्बन्ध और प्रभाव है जितना समय के प्रति सिद्धांत का। आज से सहस्रों वर्ष पूर्व जो गलती आरम्भ हुई वह इस समय के लिए भी ऐसी ग़लती है मानो सहस्रों वर्षों का प्रमाण प्राप्त किये हुए है।

सिद्धांतों के लिए समय निरन्तर नवीन बना रहता है। सिद्धांतों पर समय का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है; वह सिद्धांतों की प्रकृति एवं गुणों में रत्ती भर भी परिवर्तन नहीं कर पाता है। किन्तु सहस्रों वर्षों से हमें क्या प्रयोजन है ? हमारा जीवन-काल उसका एक अल्प अंश है और जिस समय जीवन आरम्भ करते हैं, यदि उस समय किसी गलती का अस्तित्व देख लेते हैं, तो हमारे लिए वह गलती उसी समय आरम्भ होती है, और उसका विरोध करने का हमें वही अधिकार है जो तब होता यदि उस गलती का पूर्व अस्तित्व न रहा होता।

आनुवंशिक सरकार किसी एक वंश में प्राकृतिक अधिकार स्वरूप आरम्भ नहीं हो सकती थी और न तो आरम्भ होने के बाद ही समय द्वारा परम्परागत अधिकार प्राप्त कर सकती थी। इसलिए अब हमें यह देखना है कि क्या कानून के द्वारा, इस प्रकार की सरकार के निर्माण एवं स्थापना का, जैसा कि इंगलैण्ड में हुआ है, अधिकार राष्ट्र को है या नहीं ? मेरा उत्तर है—'नहीं' और इस उद्देश्य से बनाया गया कोई भी कानून या सविधान राष्ट्र के प्रत्येक तत्कालीन एवं सभी अनुगामी पीढ़ियों के अधिकारों के प्रति विश्वासघात है।

मैं क्रमशः इन दोनों पर अपना विचार व्यक्त करूँगा; पहले इस प्रकार के क़ानून बनाते समय उपस्थित अवयस्कों के विषय में और तत्पश्चात् अनुगामी पीढ़ियों के बारे में।

एक राष्ट्र के अन्तर्गत सद्यः-प्रसूत शिशु से लेकर आसन्न-मृत्यु वृद्ध पर्यन्त सभी अवस्थाओं के व्यक्ति आ जाते हैं। इनमें से एक अंश अवयस्क होगा और दूसरा वयस्क। साधारणतः अवयस्क संख्या में अधिक होते हैं, अर्थात् इक्कीस वर्ष से कम अवस्था वाले व्यक्तियों की संख्या इक्कीस वर्ष से अधिक अवस्था वाले व्यक्तियों की संख्या से अधिक होती है।

मैं जिस सिद्धान्त की स्थापना करना चाहता हूँ उसके लिए यह संख्यागत अन्तर आवश्यक नहीं है, किन्तु इससे उस सिद्धान्त के औचित्य को बल अवश्य

मिलता है। यदि अवस्था में अधिक व्यक्तियों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक हो, तो इस दशा में भी यह सिद्धान्त उतना ही ठीक होगा।

अवयस्कों के अधिकार उतने ही दिव्य हैं जितने वयस्कों के। उनमें अन्तर केवल अवस्थागत है। अधिकारों के विषय में उनमें कोई अन्तर नहीं है। आज जो अवयस्क है, वयस्क होने पर उन्हें विरासत के रूप में जो अधिकार प्राप्त होंगे, उन्हें अक्षुण्ण बनाये रखना चाहिए। अवयस्कों के अधिकार वयस्कों के पवित्र संरक्षण में रहते हैं।

अवयस्क अपने अधिकारों को सौंप नहीं सकता, और संरक्षक उसका अधिकार छीन नहीं सकता है। परिणामतः राष्ट्र के वयस्क व्यक्तियों को, जो इस समय क़ानून बनाने वाले हैं और जीवन की यात्रा में उनकी अपेक्षा थोड़े आगे हैं जो अभी अवयस्क हैं तथा जिनको कुछ ही दिनों के बाद स्थान देना होगा, आनुवंशिक सरकार अथवा यदि स्पष्ट रूप से कहा जाय, शासकों के आनुवंशिक उत्तराधिकार की स्थापना करने का अधिकार नहीं है और न हो सकता है। यह एक ऐसा प्रयत्न है जो राष्ट्र के अवयस्कों को क़ानून बनाने के समय उनके उन अधिकारों से वंचित रखता है, जिन्हें वे वयस्क होने पर विरासत के रूप में पायेंगे; साथ-ही-साथ यह उन्हें एक ऐसी शासन-पद्धति के आधीन रख देने का प्रयास है जिसे अपनी आवश्यकता की स्थिति में वे न तो अपनी स्वीकृति दे सकते हैं और न अस्वीकार कर सकते हैं।

यदि एक व्यक्ति जो इस प्रकार के क़ानून बनाने के समय अवयस्क है, कुछ वर्षों पूर्व पैदा हुआ होता ताकि वह क़ानून बनाने के समय इक्कीस वर्ष की अवस्था का होता, तो उस क़ानून का विरोध करने, उसके अत्याचारात्मक सिद्धान्त एवं औचित्य प्रकट करने और उसके विपक्ष में मत देने का उसका अधिकार सब प्रकार से मान्य होता।

इसलिए यदि कोई क़ानून उसे वयस्कता प्राप्त करने पर, उन्हीं अधिकारों का प्रयोग करने से रोकता है जिनका प्रयोग करने का उसे अधिकार उस समय वयस्क रहने पर होता, तो निस्सन्देह यह एक ऐसा क़ानून है, जो, राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति के, जो क़ानून बनाने के समय अवयस्क होगा—अधिकारों को छीननेवाला एवं समाप्त कर देनेवाला है और परिणामस्वरूप इस प्रकार के क़ानून को बनाने का अधिकार नहीं हो सकता है।

अब मैं अनुगामी पीढ़ियों के विचार से आनुवंशिक सरकार की चर्चा आरंभ कर रहा हूँ और यह दिखाने जा रहा हूँ कि इस विषय में, जैसा कि अवयस्कों के विषय में कहा जा चुका है, राष्ट्र को आनुवंशिक सरकार की स्थापना का अधिकार नहीं है।

राष्ट्र—यद्यपि उसका अस्तित्व निरन्तर है—सतत नूतनता की स्थिति में रहता है। यह कभी भी स्थिर नहीं रहता। प्रत्येक दिन नये-नये जन्म होते हैं; अवयस्क वयस्कता की ओर बढ़ते हैं और वृद्ध व्यक्ति रंगमंच से अंतर्धान होते रहते हैं। पीढ़ियों की इस सतत प्रवाहित धारा में किसी भी अंश की अन्य की अपेक्षा अधिकारगत श्रेष्ठता नहीं है। यदि हम किसी भी श्रेष्ठता की कल्पना करें भी तो किस समय अथवा विश्व की किस शताब्दी में हम उस श्रेष्ठता की स्थापना करें ? उसके लिए कौन-सा कारण निश्चित करें ? किस प्रमाण पर उसे सिद्ध करें और किस कसौटी पर उसकी परख करें ?

यदि हम थोड़ा विचार करें तो हमें यह ज्ञात होगा कि हमारे पूर्वज हमारे समान ही, केवल अपने जीवन भर के लिए अधिकारों के महान निःशुल्क क्षेत्र के उपभोक्ता थे। उन्हें उसका ऐकान्तिक स्वामित्व नहीं प्राप्त था और न हमें ही प्राप्त है। सभी युगों के सम्पूर्ण मानव-परिवार का इससे सम्बन्ध है। यदि हम अन्यथा सोचते हैं तो हम या तो दास हैं या अत्याचारी। यदि हम यह सोचते हैं कि हमें किसी पूर्व पीढ़ी को बाँधने का अधिकार था तो हम दास हैं और यदि हम यह सोचते हैं कि हमें अनुगामी पीढ़ियों को बाँधने का अधिकार है तो हम अत्याचारी हैं।

'पीढ़ी' शब्द यहाँ किस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, इसे स्पष्ट करने का प्रयास करना कदाचित् विषयान्तर न होगा।

सामान्य शब्द के रूप में इसका अर्थ पर्याप्त रूप से स्पष्ट है। पिता, पुत्र और पौत्र इत्यादि पृथक्-पृथक् पीढ़ियाँ हैं। किन्तु, जब हम उस पीढ़ी की चर्चा करते हैं, जिससे उन व्यक्तियों का बोध होता है जिन्हें क़ानूनी अधिकार प्राप्त है तथा जो उसी प्रकार की अनुगामी पीढ़ियों से भिन्न है, तो उस 'पीढ़ी' शब्द द्वारा उन सभी व्यक्तियों का बोध होता है, जो गणना के समय इक्कीस वर्षों के बीच की अवधि तक अधिकार में रहेगी, अर्थात् उस पीढ़ी का अधिकार तब तक बना रहेगा जब तक अवयस्कों, जो उस समय तक वयस्क हो जायेंगे, की संख्या

पहली पीढ़ी के शेष व्यक्तियों की संख्या की अपेक्षा अधिक न हो जायँ।

एक उदाहरण लीजिए; यदि फ्रांस में, इस समय या किसी दूसरे समय चौबीस लाख आदमी हैं, तो बारह लाख पुरुष होंगे और बारह लाख स्त्रियाँ। बारह लाख पुरुषों में से छः लाख वयस्क, अर्थात् इक्कीस वर्ष की अवस्था के होंगे और छः लाख अवयस्क। शासन का अधिकार उन छः लाख वयस्कों को होगा।

किन्तु प्रत्येक दिवस कुछ-न-कुछ परिवर्तन प्रस्तुत करेगा। इक्कीस वर्षों में उन अवयस्कों में से प्रत्येक, जो उस समय तक जीवित रहेगा, वयस्क हो जायगा, और जो पहले वयस्क थे, उनमें से अधिकांश अपनी जीवन-लीला समाप्त कर चुकेंगे। उस समय जीवित रहने वाले एवं कानूनी अधिकार प्राप्त व्यक्तियों में बहुमत उन लोगों का होगा, जिन्हें इक्कीस वर्षों पूर्व कोई क़ानूनी अधिकार नहीं था। वे क्रमशः पिता और प्रपिता बन चलेंगे और अन्य इक्कीस वर्षों या इससे कुछ कम समय में अवयस्कों की दूसरी पीढ़ी, वयस्कता प्राप्त करके, उनका स्थान ग्रहण करेगी। भविष्य में क्रम इसी प्रकार चलता रहेगा।

यही स्थिति निरन्तर रहेगी। सभी पीढ़ियाँ अधिकारों के विषय में समान है। इसलिए यह स्पष्ट है कि आनुवंशिक 'सरकार' की स्थापना करने का अधिकार किसी एक पीढ़ी को नहीं है; क्योंकि वंशपरम्परा के आधार पर 'सरकार' की स्थापना करना अर्थात् यह आदेश देना कि भविष्य में विश्व का शासन किस प्रकार होगा और कौन करेगा, एक प्रकार से अन्यों की अपेक्षा अपने अधिकार को श्रेष्ठ मान लेना है।

जहाँ तक अधिकार की बात है, प्रत्येक युग और प्रत्येक पीढ़ी को प्रत्येक स्थिति में अपने लिए काम करने की वही स्वतंत्रता है, और होनी चाहिए जो पूर्वगामी पीढ़ी और युग को थी। मृत्यु के उपरांत शासन करने की कल्पना और मिथ्याभिमान सर्वाधिक उपहासास्पद एवं क्रूर अत्याचार है। मनुष्य, मनुष्य की सम्पत्ति नहीं है; और न तो अनुगामी पीढ़ियाँ किसी एक पीढ़ी की सम्पत्ति हैं।

इंगलैण्ड की संसद् का इतिहास इस प्रकार का एक उदाहरण प्रस्तुत करता है, जो किसी भी देश में प्राप्त होने वाले सिद्धान्त के अभाव और विधान विषयक अज्ञानता के सर्वाधिक उदाहरण स्वरूप याद रखने योग्य है। घटना इस प्रकार है:—

सन् १६८८ ई० में इंगलैण्ड की संसद् ने विलियम और मेरी नामक दम्पत्ति को हालैण्ड से बुलाया और उन्हें इंगलैण्ड की गद्दी पर बैठा दिया। इतना कर लेने के उपरान्त, उस संसद् ने विलियम और मेरी की सन्तानों को देश के शासन का अधिकार देने के अभिप्राय से एक क़ानून बनाया जो इस प्रकार है— "हम आध्यात्मिक और लौकिक कुलीन और लोक सभा के सदस्य, इंगलैण्ड की जनता के नाम पर अत्यन्त विनम्रता एवं विश्वास के साथ अपने को, अपने उत्तराधिकारियों को और भावी सन्तानों को सर्वदा के लिए, विलियम और मेरी, उनके उत्तराधिकारियों तथा उनकी अनुगामी पीढ़ियों के आधीन रखते हैं।" जैसा कि एडमण्ड बर्क ने उद्धृत किया है, एक दूसरे अनुगामी क़ानून में, उपर्युक्त संसद् ने इंगलैण्ड की तत्कालीन जनता के नाम पर, उस जनता को, उसके उत्तराधिकारियों और उसकी सभी अनुगामी पीढ़ियों को, समय के अन्त पर्यन्त विलियम-मेरी, उनके उत्तराधिकारियों और उनकी सभी अनुगामी पीढ़ियों के साथ (कानून के बन्धन में) बाँधने का प्रयत्न किया।

इस प्रकार के विधान बनाने वालों की अज्ञानता पर हँस देना ही पर्याप्त नहीं है, वरन् उनके सिद्धान्त विषयक अभाव की निन्दा करना आवश्यक है। सन् १७८६ ई० में फ्रांस की संविधान-सभा ने वही ग़लती की जो इंगलैण्ड की संसद् ने की थी; उसने उस वर्ष के सांविधानिक विधेयक के रूप में कैपेट (Capets) वंश में आनुवंशिक उत्तराधिकार को स्थापित करना स्वीकार किया।

इसे सर्वदा स्वीकार करना होगा कि प्रत्येक राष्ट्र को वर्तमान समय में अपने इच्छानुसार अपना शासन करने का अधिकार है। किन्तु आनुवंशिक सरकार मनुष्यों की दूसरी पीढ़ी का शासन करने के लिए है; और उसे जिनका शासन करना है, उनका या तो अस्तित्व ही नहीं है अथवा वे अवयस्क हैं। अत: उनके लिए इस सरकार की स्थापना करने के अधिकार का भी अस्तित्व नहीं है; और इस प्रकार के अधिकार को मान लेना सन्तानों के अधिकार के प्रति विश्वासघात है।

मैं आनुवंशिक उत्तराधिकार पर स्थापित सरकार की चर्चा यहीं समाप्त करके अब निर्वाचन और प्रतिनिधित्व द्वारा स्थापित सरकार की, जिसे संक्षेप में 'प्रतिनिधि सरकार' कह सकते हैं, चर्चा आरम्भ कर रहा हूँ।

अपवर्जनात्मक तर्क (Reasoning by exclusion) के अनुसार यदि

आनुवंशिक 'सरकार' को अस्तित्वाधिकार प्राप्त नहीं है, और यह सिद्ध किया जा सकता है, तो 'प्रतिनिधि-सरकार' अपने आप मान्य हो जाती है।

निर्वाचन और प्रतिनिधित्व के आधार पर निर्मित सरकार पर विचार करते समय, इस बात की जाँच करने में हम केवल अपना मनोविनोद नहीं करते कि इसका उद्भव कब, कैसे अथवा किस अधिकार से हुआ। इसका उद्भव-स्रोत निरन्तर प्रत्यक्ष है। मनुष्य स्वयं इस अधिकार का मूल-स्रोत और साक्षी है। इसका सम्बन्ध मनुष्य के अस्तित्व विषयक अधिकार से है और मनुष्य ही इसका आगम-पत्र (Title deed) है।

'प्रतिनिधि-सरकार' का सत्य और एकमात्र सत्य आधार है—अधिकारों की समानता। प्रतिनिधियों के चुनाव में प्रत्येक व्यक्ति को एक मत देने का अधिकार है; एक से अधिक मत देने का अधिकार किसी को नहीं है। मत देने या निर्वाचन करने और निर्वाचित होने के अधिकार से ग़रीबों को वंचित करने का अधिकार धनियों को ठीक उसी प्रकार नहीं है, जिस प्रकार उन्हें मत देने या निर्वाचन करने और निर्वाचित होने के अधिकार से वंचित करने का अधिकार ग़रीबों को नहीं है। जिस किसी भी पक्ष के द्वारा ऐसे अधिकार का प्रयत्न अथवा प्रस्ताव हो, वह बलप्रयोग की बात होगी—अधिकार की नहीं। दूसरे को उसके अधिकार से वंचित करने वाला कोई है कौन? दूसरा भी उसे उसके अधिकार से वंचित कर सकता है।

जिसे हम 'कुलीन तंत्र' कहते हैं उसमें अधिकार-वैषम्य का भाव अन्तर्निहित है; किन्तु इस वैषम्य की स्थापना करने वाले व्यक्ति कौन हैं? क्या धनी अपने को स्वयं अलग रखेंगे? नहीं। क्या ग़रीब अपने को अलग रखेंगे? नहीं। फिर किस अधिकार से किसी को वर्जित किया जा सकता है? क्या किसी व्यक्ति अथवा मनुष्यों के किसी वर्ग को वर्जित करने का अधिकार हो सकता है। निश्चित रूप से, उन्हें किसी अन्य को वर्जित करने का अधिकार नहीं हो सकता। न तो गरीब इस प्रकार का अधिकार धनी को सौंपेगा, और न धनी गरीब को। अस्तु, ऐसा अधिकार मान लेना केवल स्वेच्छाचारी अधिकार मान लेना नहीं है, वरन् डाका डालने का अधिकार भी मान लेना है।

व्यक्तिगत अधिकार—प्रतिनिधियों के लिए मत देने का अधिकार जिनमें से एक है—मनुष्य की दिव्यतम सम्पत्ति है। जो व्यक्ति किसी अन्य की सम्पत्ति या

अधिकारों को छीनने में अपनी आर्थिक सम्पत्ति का उपयोग करता है, अथवा उस आर्थिक सम्पत्ति के कारण प्राप्त सामर्थ्य के बल पर अन्य की सम्पत्ति वा अधिकारों को छीनने की बात सोचता है, वह अपनी सम्पत्ति का उपयोग अग्न्यास्त्रों के समान करता है, और यह उचित है कि उससे उसकी वह सम्पत्ति छीन ली जाय।

समाज में कुछ व्यक्तियों के संघ द्वारा, अन्यों को उनके अधिकारों से वंचित करने के लिए वैषम्य की सृष्टि की जाती है। जब कभी संविधान के किसी अनुच्छेद अथवा किसी कानून में यह निश्चित किया जाता है कि मत देने या निर्वाचन करने और निर्वाचित होने का:अधिकार केवल उन लोगों को होगा जिनके पास एक निश्चित परिमाण में संपत्ति होगी; तो जिनके पास उस परिमाण में सम्पत्ति नहीं है, उन्हें अधिकार-वंचित करने के लिए यह उन लोगों का संघटन है जिनके पास उस परिमाण में सम्पत्ति है। यह तो समाज के स्वतः निर्मित अंश के रूप में अपने तईं अन्यों को वंचित करने का अधिकार मान लेना हुआ।

यह मानी हुई बात है कि जो व्यक्ति अधिकार-साम्य का विरोध करते हैं, वे यह नहीं चाहते कि उन्हें अधिकार से वंचित किया जाय। इस स्थिति में 'कुलीन तन्त्र' (Aristocracy) उपहास की वस्तु ठहरती है। कुलीनों के मिथ्याभिमान को एक अन्य स्वार्थ-पूर्ण विचार से प्रोत्साहन प्राप्त होता है, और वह यह है कि 'अधिकार-साम्य' के विरोधी (अर्थात् कुलीन) सोचते हैं कि वे एक ऐसे सुरक्षित खेल में भाग ले रहे हैं जिसमें हानि का नहीं, वरन् लाभ का ही अवसर है। जिन अधिकारों का वे विरोध करते हैं यदि उनसे अधिक अधिकार उन्हें न प्राप्त हो सकें, तो कम-से-कम उतने अधिकार उन्हें मिलेंगे ही।

इस प्रकार का विचार उन सहस्त्रों व्यक्तियों के लिए प्राण-घातक सिद्ध हो चुका है, जिन्होंने समान अधिकार से सन्तुष्ट न होकर अधिक के लिए प्रयत्न किया; और परिणाम यह हुआ कि उनके सभी अधिकार नष्ट हो गये तथा जिस अपमानजनक वषम्य की स्थापना का उन्होंने प्रयत्न किया उसका उन्होंने स्वयं अनुभव किया।

सम्पत्ति को मताधिकार की कसौटी बनाना सभी प्रकार से भयानक,

अशिष्ट, कभी-कभी उपहासास्पद और सर्वथा अनुचित है। यदि मताधिकार लिए आवश्यक सम्पत्ति का परिमाण या मूल्य अधिक हुआ तो अधिकांश जनता मताधिकार से वर्जित हो जायगी और सरकार तथा उसका समर्थन करने वाले लोगों का विरोध करने के लिए संघटित होगी। चूंकि शक्ति बहुमत में रहती है, इसलिए वह ऐसी सरकार और उसके समर्थकों को जब चाहे पदच्युत कर सकती है।

इस भय के निवारण हेतु, संपत्ति के अल्प परिमाण को मताधिकार की कसौटी निर्धारित करना स्वतन्त्रता का अपमानपूर्ण प्रदर्शन है। क्योंकि इस प्रकार, स्वतन्त्रता आकस्मिक घटना और क्षुद्रता की वस्तु होगी। जब एक गर्भिणी घोड़ी भाग्यवश एक घोड़ा या खच्चर—जिसका मूल्य मताधिकार के लिए निश्चित धन के बराबर हो—पैदा करके अपने स्वामी को मताधिकार प्रदान कर सकती है, अथवा अपनी मृत्यु से अपने स्वामी से उसका मताधिकार छीन सकती है, तो इस अधिकार के मूल्य का अस्तित्व किसमें माना जायगा। जब हम यह सोचते हैं कि योग्यता के बिना सम्पत्ति को कई प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है, और बिना अपराध के उसे खोया जा सकता है, तो संपत्ति को अधिकार की कसौटी निर्धारित करने के विचार को हमें घृणित समझना चाहिए।

मताधिकार से वंचित करना, उन वंचित किये जाने वाले व्यक्तियों के नैतिक चरित्र के लिए कलंक है। समाज के किसी भाग को अन्य भागों के विषय में इस प्रकार की व्यवस्था करने का कोई अधिकार नहीं है। कोई भी बाह्य परिस्थिति इसका औचित्य सिद्ध नहीं कर सकती। न तो सम्पत्ति नैतिक चरित्र का प्रमाण है, और न गरीबी नैतिक चरित्र के अभाव का प्रमाण है।

इसके विपरीत सम्पत्ति, प्रायः बेईमानी का अनुमान-सिद्ध प्रमाण है, और निर्धनता निर्दोषता का अस्वीकारात्मक प्रमाण है। इसीलिए, यदि अल्प या अधिक परिमाण में, सम्पत्ति को कसौटी निर्धारित करना है तो जिस साधन के द्वारा उसका अर्जन हुआ है, उसे भी कसौटी मानना चाहिए।

मताधिकार से अपवर्जन (Exclusion) केवल एक स्थिति में न्याय-संगत है, और वह यह है कि इसका प्रयोग उन लोगों के लिए दण्ड स्वरूप किया जाय जो अन्यों से इस अधिकार को छीन लेने का प्रस्ताव करें। प्रतिनिधियों

को निर्वाचित करने के लिए मत देने का अधिकार वह मौलिक अधिकार है, जिसके द्वारा अन्य सभी अधिकारों का रक्षण होता है।

इस अधिकार को छीन लेना मनुष्य को दासता की स्थिति में रख देता है; क्योंकि दासता का अर्थ है दूसरे की इच्छा के आधीन होना और वह, जिसे प्रतिनिधि के निर्वाचन में मताधिकार नहीं है, इसी स्थिति में है। इसलिए मनुष्यों के किसी वर्ग को मताधिकार से वंचित करने का प्रस्ताव सम्पत्ति-अपहरण के प्रस्ताव के समान ही अपराध-पूर्ण है।

अधिकार के साथ कर्तव्य-भावना का योग होना चाहिए। पारस्परिक क्रिया द्वारा अधिकार कर्तव्य हो जाते हैं। मैं जिस अधिकार का उपभोग करता हूँ, वह अधिकार दूसरों के उसी अधिकार की रक्षा करने के रूप में, मेरा कर्तव्य हो जाता है, और मेरे अधिकार की रक्षा करना उसका अपना कर्तव्य हो जाता है। जो व्यक्ति कर्तव्यों का उल्लंघन करते हैं, न्यायतः उनका अधिकार ज़ब्त हो जाना चाहिए।

यदि राजनैतिक दृष्टिकोण से देखा जाय तो 'सरकार' की शक्ति और स्थायी सुरक्षा, उसको संभालने में अभिरुचि रखने वाले व्यक्तियों की संख्या की आनुपातिक है। इसलिए समानाधिकार के द्वारा सम्पूर्ण समाज में उस अभिरुचि को उत्पन्न करना सच्ची राजनीति है; क्योंकि अपवर्जन (Exclusion) भय पैदा करता है। मनुष्यों को मताधिकार से अपवर्जित करना सम्भव है, किन्तु अपवर्जन के विरुद्ध क्रान्ति करने के अधिकार से उन्हें अलग रखना असंभव है, और जब सभी अधिकार छीन लिये जाते हैं तो क्रान्ति करने के अधिकार को पूर्ण बना दिया जाता है।

जब मनुष्यों को यह विश्वास दिलाया जा सकता था कि उन्हें कोई अधिकार नहीं है; अधिकार केवल मनुष्य के वर्ग विशेष के होते हैं या 'सरकार स्वयं' अपने अधिकार से अस्तित्व में है, उस समय अधिकारपूर्वक उनका शासन करना कठिन नहीं था। मनुष्यों की अज्ञानता और अन्धविश्वासपूर्ण शिक्षा ने इस दिशा में पूर्ण सहयोग प्रदान किया।

किन्तु जब कि, अज्ञानता दूर हो गयी है और उसीके साथ अन्धविश्वास भी मिट चला है, जबकि मनुष्य यह सोचते हैं कि प्रकृति स्वेच्छा से जिन सम्पत्तियों को पैदा करती है, उनके अतिरिक्त विश्व की सभी सम्पत्तियों के

प्रारम्भिक साधन हैं—कृषक और निर्माणकर्त्ता; जबकि उन्हें अपनी उपयोगिता और समाज के सदस्य विषयक अपने अधिकार के कारण अपने महत्त्वों का बोध होता है, तो उसका पूर्ववत् शासन करना अब सम्भव नहीं है। जाल का पता जब एक बार लग जाता है तो उसकी पुनरावृत्ति नहीं की जा सकती है, और यदि फिर भी उसे करने का प्रयत्न किया गया तो वह प्रयत्न या तो उस जाल का उपहास होगा अथवा उसके विनाश का निमंत्रण।

यह निश्चित है कि सम्पत्ति असमान होगी। उद्योग, प्रतिभागत श्रेष्ठता, प्रबन्ध-दक्षता, अत्यधिक उड़ाऊपन, सुअवसर तथा कुअवसर अथवा इनके साधन, निरन्तर सम्पत्तिगत विषमता की सृष्टि करते रहेंगे। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं, जो धन से घृणा तो नहीं करते, किन्तु धन-प्राप्ति के साधन या कठोर परिश्रम को नत मस्तक होकर न तो स्वीकार करेंगे और न अपनी स्वतंत्रता और आवश्यकता के अतिरिक्त धन के लिए व्याकुल होंगे। दूसरी ओर ऐसे व्यक्ति हैं जिनमें सभी प्रकार के साधनों द्वारा धन अर्जन करने की उत्कट आकांक्षा रहती है, जिनके जीवन का मुख्य लक्ष्य है धन की प्राप्ति और जो धर्म के समान धन की उपासना करते है। सम्पत्ति को ईमानदारी के साथ अर्जित करना चाहिए; अपराधपूर्ण ढंग से उसका उपयोग नहीं होना चाहिए; किन्तु जब ऐकान्तिक अधिकारों के लिए इसे कसौटी बना दिया जाता है तो इसका उपयोग निरन्तर अपराधात्मक होता है।

ऐसी संस्थाओं में जो केवल आर्थिक हैं—जैसे बैंक या वाणिज्य-संघ, उसके सदस्यों के अधिकार सम्पूर्णतः उनके द्वारा उस संस्था में लगायी गयी पूँजी पर आधारित होते हैं। उन संस्थाओं के शासन में पूँजीगत अधिकारों के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार के अधिकारों का प्रतिनिधित्व नहीं होता। वे पूंजी के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानती।

किन्तु प्रतिनिधि-पद्धति पर व्यवस्थित 'असैनिक-सरकार' रूपी संस्था की स्थिति इससे भिन्न है। इस प्रकार की 'सरकार' को प्रत्येक वस्तु और राष्ट्रीय समाज के सदस्य के रूप में प्रत्येक व्यक्ति की, चाहे उसके पास सम्पत्ति हो या न हो, जानकारी रहती है। इसलिए सिद्धान्ततः प्रत्येक व्यक्ति और सभी प्रकार के अधिकारों का—सम्पत्ति को प्राप्त करने और उसे रखने का अधिकार जिन में से एक है, किन्तु सर्वाधिक आवश्यक नहीं है–प्रतिनिधित्व होना चाहिए।

मनुष्य-शरीर की रक्षा सम्पत्ति-रक्षा की अपेक्षा दिव्यतर है। इसके अतिरिक्त, अपनी जीविका-प्राप्ति के लिए किसी प्रकार का काम अथवा सेवा करने या अपने परिवार का पालन-पोषण करने की शक्ति प्रकृतितः सम्पत्ति है। उसके लिए वही सम्पत्ति है; उसने उसे प्राप्त किया है और उसकी यह सम्पत्ति उसी प्रकार रक्षणीय है, जिस प्रकार उस शक्ति से रहित अन्य किसी व्यक्ति की बाह्य सम्पत्ति रक्षा की वस्तु हो सकती है।

मेरा यह विश्वास रहा है कि समाज के प्रत्येक भाग से यथासम्भव शिकायत के प्रत्येक कारण और हिंसा की प्रत्येक प्रवृत्ति को दूर करना सम्पत्ति की, वह अल्प हो या अधिक, सर्वाधिक सुरक्षा है; और यह समानाधिकार के द्वारा ही सम्भव है। जब अधिकार को सुरक्षा प्राप्त होगी, तो परिणाम स्वरूप सम्पत्ति भी सुरक्षित रहेगी। किन्तु जब सम्पत्ति को असमान अथवा ऐकान्तिक अधिकारों का निमित्त बना दिया जायगा, तो सम्पत्ति रखने का अधिकार निर्बल पड़ जायगा तथा क्रोध एवं उपद्रव को उत्तेजना प्राप्त होगी। क्योंकि, यह विश्वास करना अप्राकृतिक है कि जिस सम्पत्ति के प्रभाव से समाज के अधिकारों को क्षति पहुँचती है उस समाज के अन्तर्गत वह सम्पत्ति सुरक्षित रह सकती है।

प्रकृति समय-समय पर अरिस्टाटल (Aristotle), सुकरात (Socrates) और प्लेटो (Plato) जैसे योग्य एवं विश्वविख्यात असाधारण व्यक्तियों को उत्पन्न किया करती है। ये महानुभाव वास्तव में महान या कुलीन थे। किन्तु जब सरकार कुलीन व्यक्तियों (Nobles) की निर्माण-शाला स्थापित करती है तो उसका यह कार्य बुद्धिमानों का निर्माण करने के कार्य जैसा ही मूर्खतापूर्ण है। सरकार के बनाये हुए सभी कुलीन नकली हैं।

'कुलीन' की संज्ञा को यदि केवल बचपना मान लिया जाय तो कदाचित् इसका अपमान कुछ कम हो जाय। हम प्रदर्शनों को निस्सार समझकर क्षमा कर देते हैं, उसी प्रकार पदवियों के प्रदर्शन को क्षमा कर सकते हैं। किन्तु 'कुलीनों' का मूल प्रदर्शन से बुरा है। उस वर्ग का उद्भव अपहरण के पेट से हुआ है। सभी देशों में प्रारम्भिक कुलीन लुटेरे थे और बाद के चाटुकार।

सभी लोग इस बात को जानते हैं कि इंगलैण्ड (अन्य देशों में भी यही बात मिलेगी) में आज जो बड़ी-बड़ी रियासतें हैं, वे सभी विजय (Conquest)

के समय वहाँ के शान्त निवासियों से छीनी गयी थीं। इतनी बड़ी रियासतों को सचाई के साथ प्राप्त करने की सम्भावना नहीं थी। यदि यह पूछा जाय कि उन रियासतों को किस प्रकार से प्राप्त किया गया तो उसका एकमात्र उत्तर होगा, अपहरण के द्वारा। इतना निश्चित है कि उन रियासतों को व्यापार, वाणिज्य उद्योग, कृषि अथवा अन्य किसी श्लाघ्य कार्य द्वारा नहीं प्राप्त किया गया था।

फिर उन्हें कैसे प्राप्त किया गया? 'कुलीन जन'? आपको अपने उद्भव पर लज्जा होनी चाहिए; क्योंकि आपके पूर्वज चोर थे। वे अपने युग के राबेसपेर (Robespierres) और जैकोबिन (Jacobins) थे। डाका डालने के बाद उन्होंने काल्पनिक नामों और पदवियों के अन्तर्गत अपने वास्तविक नामों को छिपाकर, अपने अपमान का परिमार्जन करने का प्रयत्न किया। आततायियों का यही शाश्वत आचरण है।

जिस प्रकार सम्पत्ति ईमानदारी से प्राप्त किये जाने पर, अधिकारों की समानता द्वारा सर्वाधिक रूप से सुरक्षित रहती है, उसी प्रकार छल से प्राप्त होने पर उसकी सुरक्षा अधिकारों के एकाधिपत्य पर निर्भर रहती है। जिस व्यक्ति ने अन्य की सम्पत्ति का अपहरण किया है, उसका दूसरा प्रयत्न होगा उस अन्य व्यक्ति से सम्पत्ति प्राप्त करने के अधिकार रूपी शस्त्रों को छीन लेना। डाकू जब विधान बनानेवाला हो जाता है, तो वह अपने को सुरक्षित समझता है। इंगलैण्ड की सरकार का वह अंश, जिसे राज्य-सभा कहा जाता है, मूलतः उन लोगों से बना था जिन्होंने वही लूट-कार्य किया था, जिसकी मैं चर्चा कर रहा हूँ। उन्होंने जिन सम्पत्तियों का अपहरण किया था उन्हें बचाने का यह एक संघटन था।

किन्तु 'कुलीन तन्त्र' (Aristocracy) के उद्भव-विषयक अपराध के अतिरिक्त, मनुष्य के नैतिक और प्राकृतिक चरित्र पर इसका हानिकर प्रभाव पड़ा है। दासता के समान यह भी मानव-शक्तियों को निर्बल बना देता है; क्योंकि जिस प्रकार दासता में झुका हुआ मस्तिष्क चुपचाप अपनी लचीली शक्ति खो बैठता है, उसी प्रकार जब मानव-मस्तिष्क का पोषण मूर्खता द्वारा होता है तो वह अपनी शक्तियों के प्रदर्शन के लिए असमर्थ होकर निर्बल पड़ जाता है। तुच्छ बातों में आनन्द लेनेवाले मस्तिष्क का महान होना असम्भव है। उद्देश्यों का बचपना मनुष्य को खा जाता है।

मौलिक सिद्धांतों के चिन्तन द्वारा अपनी देशभक्ति को समय-समय पर नवीन बनाना सभी अवस्थाओं, विशेषकर क्रांति की दशा में आवश्यक है; और वह आवश्यकता तब तक बनी रहती है, जब तक सही विचार अभ्यास के द्वारा अपनी स्थापना स्वयं नहीं कर लेते। वस्तुओं के मूल तक जाकर उनकी जानकारी प्राप्त करना, उन्हें ठीक रूप से समझना है और उनके उद्भव एवं विकास-क्रम को सदैव ध्यान में रखने से हम उन्हें कभी भूल नहीं सकते।

अधिकारों के मूल का अन्वेषण इस बात को प्रकट करेगा कि अधिकार एक व्यक्ति के द्वारा अन्य व्यक्ति को अथवा मनुष्यों के एक वर्ग के द्वारा अन्य वर्ग को दिये गये दान नहीं हैं। पहला दाता कौन हो सकता था? या किस सिद्धांत के अनुसार अथवा किस आधार पर उसे दान देने का अधिकार हो सकता था?

'अधिकारों का घोषणा-पत्र' न तो घोषणा करनेवाले की सृष्टि है और न उनका दान। यह उस सिद्धांत का प्रकाशन है, जिस पर व्यक्तियों का अस्तित्व है; साथ-ही-साथ अधिकारों का पूरा विवरण प्रस्तुत किया गया है। प्रत्येक नागरिक-अधिकार का आधार कोई-न-कोई प्राकृतिक अधिकार है, और मनुष्यों के बीच उन अधिकारों की पारस्परिक सुरक्षा का सिद्धांत इसके अंतर्गत है। चूंकि मनुष्य के मूल के अतिरिक्त अधिकारों का कोई अन्य मूल ढूंढ़ निकालना असम्भव है, अत: यह स्पष्ट है कि अधिकारों का सम्बन्ध मनुष्य के अस्तित्वाधिकार से है, और इसलिए सभी मनुष्यों के अधिकार समान होने चाहिए।

अधिकारों की समानता स्पष्ट और सरल है। प्रत्येक व्यक्ति इसे समझ सकता है। अपने अधिकारों को समझने पर वह अपने कर्तव्यों को भी समझ सकता है; क्योंकि जहाँ सभी के अधिकार समान हैं, वहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकारों की सर्वाधिक सफल सुरक्षा के रूप में अन्यों के अधिकारों के रक्षण की आवश्यकता को पूर्णत: स्वीकार करेगा।

किन्तु यदि संविधान के निर्माण में, हम अधिकार-साम्य के सिद्धांत से हट जाते हैं अथवा उसमें कुछ संशोधन करने का प्रयत्न करते हैं, तो हम आपत्तियों की एक ऐसी भूल-भुलैयाँ में पड़ जायेंगे, जहाँ से लौट आने के अतिरिक्त निकलने का कोई उपाय नहीं होगा। हमें कहाँ रुकना है? अथवा किस सिद्धांत के

आधार पर हम उस 'बिन्दु' का पता लगायेंगे जहाँ हमें रुकना है और जो एक ही देश के मनुष्यों के—जिनका कुछ ही अंश स्वतन्त्र होगा—बीच अन्तर स्थापित करेगा।

यदि सम्पत्ति को कसौटी बनाया जाता है, तो यह स्वतन्त्रता के प्रत्येक नैतिक सिद्धांत से पूर्णतः दूर चला जाना होगा; क्योंकि तब तो अधिकार का सम्बन्ध केवल वस्तु से होगा, और मनुष्य उस वस्तु का केवल अभिकर्त्ता (Agent) होगा। इसके अतिरिक्त, सम्पत्ति को कसौटी बनाने का अर्थ है उसे झगड़े का कारण बना देना। उसका परिणाम यह होगा कि सम्पत्ति अपने विरुद्ध युद्ध को उत्तेजना प्रदान ही नहीं करेगी, वरन् उसका औचित्य भी सिद्ध करेगी। मैं इस सिद्धांत को मानता हूँ कि जिनके पास सम्पत्ति नहीं है, उनके अधिकारों को छीनने के लिए, जब सम्पत्ति का उपयोग किया जाता है, तो उसका वह उपयोग ऐसी स्थिति में अग्न्यास्त्रों के उपयोग के समान ही अन्यायपूर्ण उद्देश्य के लिए होता है।

जहाँ तक अधिकारों का सम्बन्ध है, प्रकृति के राज्य में सभी व्यक्ति समान हैं; किन्तु शक्ति का जहाँ तक प्रश्न है, सभी समान नहीं हैं। निर्बल व्यक्ति बलवान से अपनी रक्षा स्वयं नहीं कर सकते। इस स्थिति में 'नागरिक-समाज' की संस्था का उद्देश्य शक्ति-साम्य स्थापित करना है, जो अधिकार-साम्य के समानान्तर हो तथा उससे उन अधिकारों की सुरक्षा हो। यदि उचित रूप से बनाये जायँ तो एक देश के क़ानूनों का यही उद्द्श्य होता है।

प्रत्येक व्यक्ति अपनी रक्षा के लिए अपनी शक्ति की अपेक्षा क़ानून की शक्ति को अधिक सफल समझकर उसकी सहायता लेता है, और इसलिए सरकार और विधान के, जिसके द्वारा सभी लोग शासित होंगे और न्याय प्राप्त करेंगे, निर्माण में सभी मनुष्यों का समान अधिकार होना चाहिए। अमेरिका और फ्रांस के समान विशाल देशों और समाजों में, इस व्यक्तिगत अधिकार का उपयोग केवल निर्वाचन और प्रतिनिधित्व द्वारा हो सकता है; और 'प्रतिनिधि-सरकार' की यहीं से उत्पत्ति होती है।

अब तक मैंने अपनी चर्चा को केवल सिद्धान्त की बातों में सीमित रखा। सर्वप्रथम मैंने यह सिद्ध किया कि आनुवंशिक सरकार को अस्तित्व विषयक अधिकार नहीं है; किसी भी अधिकार सम्बन्धी सिद्धान्त पर इसकी स्थापना

नहीं हो सकती और यह सरकार सब सिद्धान्तों का उल्लंघन करती है। दूसरी बात जो मैंने स्पष्ट की वह यह है कि निर्वाचन और प्रतिनिधित्व-पद्धति पर स्थापित सरकार का मूल मनुष्य के प्राकृतिक और शाश्वत अधिकारों में है।

मनुष्य अपने इस अधिकार का उपयोग कई रूपों में कर सकता है। प्राकृतिक जीवन की स्थिति में अपना विधान वह स्वयं बना सकता है। छोटे-छोटे प्रजातंत्रीय देशों का, जहाँ कि कानून बनाने के लिए सभी लोग एकत्रित हो सकते हैं, मनुष्य विधान विषयक शक्ति के अपने अंश को स्वयं में रख सकता है और प्रतिनिधियों की 'राष्ट्रीय सभा' में उसका प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों के निर्वाचन में वह अपने इस अधिकार का प्रयोग कर सकता है। किन्तु सभी दशाओं में अधिकार का मूल एक ही है। जैसा कि कहा जा चुका है अधिकार विषयक उपर्युक्त तीन प्रकार के उपयोगों में से प्रथम शक्ति में अपूर्ण है; दूसरा केवल छोटे-छोटे प्रजातन्त्रीय देशों में ही व्यवहार्य है, किन्तु अधिकार-प्रयोग का तीसरा प्रकार मानवीय सरकार की स्थापना के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है।

सिद्धांत के बाद मत का प्रश्न उठता है और इन दोनों का अंतर जान लेना आवश्यक है। मनुष्यों के अधिकार समान होने चाहिए। यह मत की बात नहीं, वरन् अधिकार की बात है और परिणामतः सिद्धांत की बात है; क्योंकि मनुष्य अपने अधिकारों को आपस में एक दूसरे से दानस्वरूप प्राप्त नहीं करता, वरन् वे उसके निजी अधिकार हैं। समाज संरक्षक हैं, न कि दाता। अमेरिका और फ्रांस के समान विशाल समाजों में सरकार विषयक व्यक्तिगत अधिकार का उपयोग निर्वाचन और प्रतिनिधित्व के अतिरिक्त अन्य किसी रूप से नहीं हो सकता। इसलिए उस स्थिति में जब कि सरल प्रजातन्त्र अव्यवहार्य है, प्रतिनिधि-पद्धति ही एक मात्र सरकार-पद्धति है, जो सिद्धांतानुकूल है।

किन्तु सरकार-यंत्र के विभिन्न पुर्जों की व्यवस्था किस प्रकार की होनी चाहिए, यह मत का विषय है। यह आवश्यक है कि सभी भाग अधिकार-साम्य के सिद्धांत के अनुकूल हों। जब तक इस सिद्धांत का श्रद्धापूर्ण अनुसरण होता रहेगा तब तक कोई भी तात्विक त्रुटि नहीं हो सकती, और सरकार के उस अंश में की गयी गलती चिरकाल तक टिक नहीं सकती जो मत की प्रभाव-सीमा के भीतर पड़ता है।

मत के सभी विषयों में सामाजिक समझौते या उस सिद्धांत के, जिसके

द्वारा समाज का संघटन होता है, अनुसार बहुमत सबके लिए नियम बन जाता है और अल्पमत उस नियम की व्यावहारिक आज्ञाकारिता स्वीकार कर लेता है। यह बात अधिकार-साम्य सिद्धांत के सर्वथा अनुकूल है; क्योंकि पहली बात तो यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को मत देने का अधिकार है, किन्तु किसी को यह अधिकार नहीं है कि उसका मत शेष लोगों का शासन करे। दूसरी बात यह है कि पहले से यह तय नहीं रहता कि अमुक व्यक्ति का मत अमुक विषय के अमुक पक्ष में होगा; कुछ विषयों पर वह व्यक्ति बहुमत में हो सकता है और कुछ विषयों पर अल्पमत में। अस्तु, जब एक स्थिति में वह अपने प्रति आज्ञाकारिता की आशा रखता है, तो उसी नियम के अनुसार दूसरी स्थिति में उसे अनुवर्तन करना चाहिए।

फ्रांस में क्रान्ति के समय जितने उपद्रव हुए, उन सबका उद्भव अधिकार-साम्य के सिद्धांत के कारण नहीं, वरन् उस सिद्धान्त के उल्लंघन के कारण हुआ। अधिकार-साम्य के सिद्धान्त का बार-बार उल्लंघन किया गया, वह भी बहुमत के द्वारा नहीं अल्पमत के द्वारा; और उस अल्पमत में सम्पत्तिवान तथा सम्पत्तिहीन दोनों प्रकार के मनुष्य सम्मिलित थे। इसलिए अब तक के अनुभव के आधार पर भी सम्पत्ति, अधिकार अथवा चरित्र की कसौटी नहीं हो सकती।

कभी-कभी यह सम्भव है कि अल्पमत ठीक हो और बहुमत गलत; किन्तु ज्योंही अनुभव इसे सिद्ध कर देगा, उसी क्षण अल्पमत बहुमत की ओर बढ़ेगा, और अधिकार-साम्य तथा मत-स्वातंत्र्य की शान्त क्रिया द्वारा वह गलती स्वयं ठीक हो जायगी। इसलिए किसी भी प्रकार से विप्लव का औचित्य सिद्ध नहीं हो सकता, और जहाँ अधिकार-साम्य तथा मत-स्वातन्त्र्य है, वहाँ विप्लव कभी भी आवश्यक नहीं हो सकता है।

इसलिए अधिकार-साम्य के सिद्धान्त को क्रान्ति और तत्परिणामस्वरूप संविधान का आधार मानते हुए, संविधान में सरकार के विभिन्न अवयवों की व्यवस्था किस प्रकार हो यह विषय मत की प्रभाव-सीमा के भीतर पड़ता है।

इस प्रकार के प्रश्न पर कई प्रकार की पद्धतियाँ प्रस्तुत की जा सकती हैं, और यद्यपि सर्वोत्तम पद्धति का निर्णय करने में अनुभव अभी भी अपर्याप्त है; किन्तु मैं सोचता हूँ कि उसने पर्याप्त रूप से यह निश्चित कर दिया है कि सबसे

बुरी पद्धति कौन है। सर्वाधिक बुरी पद्धति वह है, जो अपने विचारों एवं निर्णयों में, एक व्यक्ति के साहस और उत्कट भावों के वशीभूत है। सम्पूर्ण विधान-मण्डल केवल एक सभा में समाविष्ट होता है तो वह समूह के रूप में इकाई है। विचार की सभी स्थितियों में नियन्त्रण रखना आवश्यक है। इसलिए इसकी अपेक्षा कि सभी प्रतिनिधि एक साथ बैठकर किसी विषय पर विवाद करें; अच्छा यह होगा कि प्रतिनिधियों को चिट्ठी डालकर दो भागों में बाँट दिया जाय ताकि वे दोनों एक दूसरे का विचार और संशोधन कर सकें।

प्रतिनिधि-सरकार का स्वरूप विशेष में सीमित होना आवश्यक नहीं है। जिन स्वरूपों के अन्तर्गत इसकी स्थापना हो सकती है उन सबके मूल में एक ही सिद्धान्त है। मनुष्यों का अधिकार-साम्य वह मूल है, जहाँ से सरकार-वृक्ष उत्पन्न होता है। शाखाओं की व्यवस्था वर्तमान मतों अथवा भावी अनुभवों के सर्वोत्तम निर्देश के अनुसार होगी। जहाँ तक ब्रिटेन की 'राज्य-सभा, जिसे चेस्टरफील्ड 'असाध्यों का अस्पताल' कहते है, भ्रष्टाचार से उत्पन्न होने वाली अप्राकृतिक 'मांस-ग्रन्थि' है। जनता के अधिकार से उत्पन्न विधान-मण्डल की शाखाओं में से किसी एक, और उपर्युक्त राज्य-सभा के बीच का सादृश्य, मानव-शरीर के प्राकृतिक अंग और नासूरयुक्त मांस-ग्रन्थि के बीच स्थित सादृश्य की अपेक्षा अधिक नहीं है।

सरकार के कार्यपालिका-विभाग की चर्चा के आरम्भ में ही इस 'कार्यपालिका' (Executive) शब्द का अर्थ निश्चित कर लेना आवश्यक है।

शक्ति को केवल दो वर्गों में रखा जा सकता है, अर्थात् कानून बनाने की शक्ति और उसे निष्पादित करने की शक्ति। प्रथम प्रकार की शक्ति, मनुष्य की उन शक्तियों के तुल्य है जो इस बात पर विचार करती है और निर्णय करती है कि हमें क्या करना है। दूसरे वर्ग की शक्ति मनुष्य की उन ऐन्द्रिक शक्तियों के समान हैं, जो उस निर्णय को निष्पादित करती है।

यदि पहली शक्ति निर्णय करती है और दूसरी उसे निष्पादित नहीं करती तो, यह निर्बलता की स्थिति हुई। यदि दूसरे प्रकार की शक्ति प्रथम प्रकार की शक्ति के पूर्व-निर्णय के बिना ही कार्य करती है तो यह उन्माद की स्थिति होगी। इसलिए कार्यपालिका-विभाग वास्तव में एक कार्यकारी विभाग है तथा विधान-मंडल के आधीन है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार स्वास्थ्य की

स्थिति में शरीर मस्तिष्क क आधीन रहता है, क्योंकि दो-दो सार्वभौम प्रभुत्वों की, एक कानून बनाने वाला और दूसरा कानून का निष्पादन करने वाला, कल्पना करना असम्भव है।

कार्यपालिका-शक्ति को यह निर्णय करने का अधिकार नहीं है कि वह काम करे या न करे; क्योंकि क़ानून जिस काम की आज्ञा देता है वह उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकती है; क़ानून के अनुसार काम करना उसके लिए अनिवार्य है। इस दृष्टिकोण से देखने पर यह स्पष्ट है कि कार्यपालिका-विभाग में शासन-सम्बन्धी वे सभी विभाग सम्मिलित हैं, जो क़ानून का निष्पादन करते हैं और जिनमें न्याय-विभाग (Judiciary) प्रमुख है।

किन्तु मानव-जाति ने 'क़ानूनों' के निष्पादन के अधीक्षण तथा यह देखने के लिए कि क़ानूनों का निष्पादन विश्वासपूर्वक ढंग से हो, एक प्रकार के प्राधिकार को आवश्यक माना है। क़ानूनों के शासकीय निष्पादन के साथ इस अधीक्षण-अधिकार का योग स्थापित करने के कारण हम कार्यपालिका-शक्ति से घबराते हैं। 'संयुक्त राष्ट्र' अमेरिका के सभी शासन-विभाग, जिन्हें कार्यपालिका-विभाग कहा जाता है, क़ानून के निष्पादन का अधीक्षण करनेवाले शासन-विभाग के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है, और वे विधान-मण्डल से इतने अधिक स्वतन्त्र हैं कि वे केवल क़ानूनों के द्वारा उसके विषय का ज्ञान प्राप्त करते हैं तथा विधान-मण्डल के द्वारा अन्य किसी माध्यम से उनका नियन्त्रण अथवा निर्देशन नहीं हो सकता।

तर्कसंगत एवं अनुभवसिद्ध कुछ ऐसी बातें हैं, जो इस विषय का निर्णय करने में हमारा मार्ग-प्रदर्शन करती हैं। पहली बात यह है कि किसी व्यक्ति को असाधारण अधिकार नहीं देना चाहिए; क्योंकि इसके अतिरिक्त कि वह इसके दुरुपयोग के प्रलोभन में पड़ सकता है। इसके द्वारा राष्ट्र भर में संघर्ष और विप्लव को उत्तेजना मिलेगी। दूसरी बात, व्यक्तियों के हाथों में चिरस्थायी अधिकार नहीं देना चाहिए, चाहे उनकी संख्या कुछ भी हो। समय-समय पर किये गये परिवर्तनों के कारण होनेवाली असुविधाएँ, उन व्यक्तियों के चिरकाल तक अधिकार में रहने के कारण उत्पन्न होने वाले संकट की अपेक्षा कम भयकारक है।

स्वतन्त्रता के कुछ रक्षा-साधनों की चर्चा करने के उपरान्त, मैं इस विषय को समाप्त करूँगा; क्योंकि स्वतन्त्रता-प्राप्ति ही आवश्यक नहीं है, उसका रक्षण भी उतना ही आवश्यक है।

सर्वप्रथम स्वातन्त्र्य-स्थापना का मार्ग निर्मित करने के लिए निरंकुश शासन को विनष्ट करने में प्रयुक्त साधनों, और निरंकुश शासन की समाप्ति के बाद उपयोग में लाये जानेवाले साधनों के भेद को जान लेना आवश्यक है।

उपर्युक्त दो प्रकार के साधनों में से प्रथम प्रकार के साधनों का औचित्य आवश्यकता द्वारा सिद्ध होता है। वे साधन सामान्यतः विप्लव हैं; क्योंकि जब तक निरंकुश सरकार किसी देश में स्थापित है तब तक किसी भी अन्य साधन का उपयोग कदाचित् ही सम्भव है। यह भी निश्चित है कि क्रान्ति के आरम्भ में क्रान्तिकारी दल शक्ति का विवेकपूर्ण प्रयोग करता है, जो सिद्धान्त की अपेक्षा, परिस्थितियों द्वारा अधिक संचालित होता है। यदि इस प्रकार का प्रयोग बराबर होता रहेगा तो स्वतन्त्रता की स्थापना कदापि नहीं हो सकती है, और यदि उसकी स्थापना हो भी गयी तो वह शीघ्र ही विनष्ट कर दी जायगी। क्रान्ति के समय इस प्रकार की आशा नहीं करनी चाहिए कि सभी व्यक्ति एक ही समय अपना मत बदल सकते हैं।

अब तक ऐसा कोई सत्य अथवा सिद्धान्त नहीं रहा है, जो इतने निर्विरोधात्मक रूप से स्पष्ट रहा हो कि सभी लोगों ने उसमें एक साथ ही विश्वास कर लिया हो। किसी सिद्धान्त की अंतिम स्थापना के लिए समय और बुद्धि को परस्पर मिलकर कार्य करना चाहिए। इसलिए जो लोग किसी सिद्धान्त या मत की सत्यता में अन्यों की अपेक्षा अधिक शीघ्रता के साथ विश्वास कर लेने में सक्षम हैं, उन्हें चाहिए कि वे उन लोगों को पीड़ित न करें, जिन्हें उस सत्यता को समझने में विलम्ब लगता है। क्रान्तियों का नैतिक सिद्धान्त है समझाना, न कि नष्ट करना।

यदि दो वर्षों पूर्व संविधान बना होता, जैसा कि होना चाहिए था, तो मेरे मतानुसार उन हिंसाओं का निवारण हो पाता, जिन्होंने उस समय फ्रांस को बर्बाद किया और क्रांति के चरित्र को क्षति पहुँचायी है। उस स्थिति में, राष्ट्र एकता के बन्धन में होता और प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्तव्य का ज्ञान होता। किन्तु इसके बदले, एक क्रांतिकारी सरकार की, जिसका न कोई सिद्धांत था

और व अधिकार, स्थापना हुई। सदाचार और अपराध आकस्मिक घटनाओं पर निर्भर थे; और जो कभी देशभक्ति थी, वही बाद में विश्वासघात हो गयी।

संविधान के अभाव के नाते ही यह सब हुआ, क्योंकि संविधान की प्रकृति और इच्छा दलगत शासन को रोकने की होती है। इसी लिए संविधान ऐसे सामान्य सिद्धांत की स्थापना करता है जो दल की प्रवृत्ति और शक्ति को सीमित और नियन्त्रित रखता है, और जो सभी दलों को आदेश देता है—'तुम सब इस सीमा तक जा सकते हो, इससे आगे नहीं, किन्तु संविधान के अभाव में मनुष्य पूर्णतः अपने दल की ओर देखते हैं, और इसके बदले कि सिद्धांत दल का शासन करे, दल स्वयं सिद्धांत का शासन करने लगता है।

दण्ड देने की उत्कट इच्छा स्वतन्त्रता के लिए सर्वदा घातक है। इसके कारण मनुष्य सर्वोत्तम क़ानूनों के अभिप्राय को बढ़ा-चढ़ा कर अथवा गलत ढंग से स्पष्ट करते हैं। जो अपनी स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखना चाहता है, उसे अपने शत्रु को भी अत्याचार से बचाना चाहिए। क्योंकि यदि वह अपने इस कर्तव्य का उल्लंघन करता है, तो वह एक ऐसा पूर्व दृष्टान्त स्थापित करता है जिसका कुपरिणाम उसे ही भोगना पड़ेगा।

पेरिस, जुलाई १७९५ ई०　　　　　　　　　　　　　　　टॉम पेन